आत्मदर्शन

नारायणस्वामी ।

सरस्वती आश्रम ग्रन्थमाला ७९

* ओ३म् *

आत्मदर्शन

जिसमें

आत्मसम्बन्धी पाश्चात्य पौरस्त्य नवीन, प्राचीन,
आस्तिक, नास्तिक सभी विचारों और सिद्धान्तों
का समालोचन तथा विवेचन
किया गया है।

लेखक

श्रीनारायण स्वामी

(भूतपूर्व महात्मा नारायण प्रसादजी मुख्याधि-
ष्ठाता तथा आचार्य गुरुकुल वृन्दावन)

श्री पं० धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि शास्त्री बी. ए.
लिखित 'ग्रन्थपरिचय' सहित।

प्रकाशक

राजपाल—मैनेजर आर्य्य पुस्तकालय,
सरस्वती आश्रम लाहौर।

अमृत प्रेस, अमृतधारा भवन, लाहौर द्वारा मुद्रित।

प्रथम संस्करण   सं० १९७९   (मूल्य १।।)
(सुनहरी जिल्द २।)

आत्मदर्शन

श्रीयुत महात्मा नारायण प्रसाद जी
(वर्तमान, श्री नारायण स्वामी जी)
भू० पू० मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य गुरुकुल वृन्दाबन ।

श्री स्वामी जी का वर्त्तमान समयका फोटो नहीं प्राप्त हो सका इस लिये यह छापना पड़ा ।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत् (कठ)

कोई धीर अन्तरात्माको देखता है ।

परिचय* ।

I
ग्रन्थ–परिचय ।

१९वीं और २०वीं शताब्दीके सन्धिकालमें (१९००) में जिस समय जर्मनीके प्रसिद्ध जीवविद्याशास्त्री अर्नेस्ट हेकल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **संसारकी पहेली** (The Riddle of the universe) प्रकाशितकी, युरोपमें ईसाइमतका विशाल भवन जोकि गत शताब्दिके वैज्ञानिक आन्दोलनसे हिल रहा था, एक प्रकारसे लडखडा कर गिर पडा। १९वीं सदीके प्रकृति-वाद जडवाद अथवा नास्तिकवादका, जो **विकासवाद** के अनेक रूपोंमें प्रकट हुआ, इस पुस्तकमें दार्शनिक विवेचन किया गया था, विज्ञानके शब्दोंमें इस पुस्तकमें अन्तिम घोषणाकी गई कि प्रकृति और प्राकृतिक नियम अपनेमें पर्याप्त, परिपूर्ण और अन्तिम (Self-sufficient & Self-contained) हैं। उनके लिए किसी अप्राकृतिक आत्मशक्तिकी कल्पना करना अनावश्यक ही नहीं

---

* पाठकोंके लिए यह उत्तम होगा कि वे पुस्तकको पढनेसे पहले इस 'परिचय' को पढ लें, इससे न केवल उन्हें ग्रन्थकर्ताके विषयमें कुछ परिचय प्राप्त होगा प्रत्युत ग्रन्थके गम्भीर विषयके प्रवेशमें भी बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

प्रत्युत अयुक्त भी है। इस पुस्तकके छपते ही ५ लाख प्रतियां पढ़ी गईं, युरोपकी लगभग सभी भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया। परन्तु यह एक विचित्र दैवी घटना है कि २०वीं शताब्दीके प्रारम्भ होते ही युरोपमें **'अध्यात्मवाद'** का प्रारम्भ हुआ, युरोप की प्रवृत्ति अध्यात्मवादकी ओर हो गई। यह दूसरा प्रश्न है कि उन्हें कितना बोध है और वे किस रास्ते पर चल रहे हैं। पाठकोंके सामने जो ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है उसमें इसी प्रकृतिवाद और आत्मवादकी तुलनात्मक विवेचना है इसलिए यह आवश्यक है कि पुस्तकके प्रारम्भमें संक्षेपसे विषयकी ओर सङ्केत कर दिया जाय।

साधारणतया मोटे शब्दोंमें प्रकृतिवादका निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है कि **इस सारे विश्वकी चेतन अचेतन सारी रचना प्रकृति और उसके काम करने वाले प्राकृतिक नियमों** (Material Laws) **का परिणाम है, उसके लिए किसी आत्मा या परमात्माकी आवश्यकता नहीं है,** इसे वैज्ञानिक रीति पर समझनेके लिए कुछ व्याख्या अपेक्षित है।

इस विश्वके विकाशमें क्रमशः ३ पद (दर्जे) हैं जिन्हें क्रमशः इस प्रकार कहा जा सकता है।

१–प्राकृतिक विकाश (Cosmic Evolution)

२–जीवनविकाश (Biological Evolution)

३–ज्ञानविकाश (Intellectual Evolution)

देखना यह है कि इन तीनों विकासोंमें किस प्रकार **प्रकृति** स्वयं पूर्ण और कार्यक्षम बनती है और उसके लिए किसी आत्म-शक्तिकी अपेक्षा नहीं होती ।

प्राकृतिक विकाश ।

इस विकाशके अन्तर्गत हम प्रकृतिकी प्रारम्भिक **अवस्था** (जो जगत्‌की मूलकारण थी) से लेकर सृष्ट्युत्पत्ति **अर्थात्** सारे लोकलोकान्तरोंकी रचना पर और उन लोकोंकी प्रारम्भिक अवस्था पर जिसे '**भूगर्भ सम्बन्धी युग**' (Geologcial Pesiod) कहा जाता है विचार करते हैं। आत्मवादी कहते हैं कि प्रकृतिसे परमात्माने सृष्टिको बनाया। प्रकृतिवादी वैज्ञानिकका विचार है कि प्राकृतद्रव्य (Matter) में लगातार परिवर्तन होते २ यह जगत् अपने आप बना है। इस जगत्‌के बननेमें प्राकृत द्रव्य और उसमें होने वाली गतिके अतिरिक्त किसी आत्मशक्तिका हाथ दिखाई नहीं देता। फांसके तत्त्वज्ञ **लाप्लास** ने यह कल्पना की थी कि जगत्‌के मूलद्रव्य, जिसका नाम नेबुला (Nebula) रक्खा गया है उसमें लगातार गति हो रही थी। लगातार गति होते २ ही उस प्राकृत द्रव्यसे क्रमशः तारा, ग्रह, उपग्रह अर्थात् सूर्य पृथिवी और चन्द्र बन गए । जब लाप्लासने अपनी पुस्तक सम्राट् नैपोलियनको भेटकी, तब सम्राट्‌ने उससे कहाकि 'तुमने अपनी पुस्तकमें ईश्वरका वर्णन कहीं नहीं किया'। लाप्लासने उत्तर दिया कि 'महाराज मुझे सृष्टि रचनाकी सारी

प्रक्रियामें कहीं ' ईश्वरकी जरूरत नहीं पड़ी'। इस प्रकार प्राकृतिक विकाशमें ईश्वरकी अपेक्षा नहीं' यह घोषणा लाप्लासने कर दी। इस पर कुछ विचार हम आगे चल कर करेंगे। इस प्रकार प्रकृतिवादके अनुसार सृष्टि रचना—जिससे ईश्वरकी भावना होती है के लिए ईश्वरकी—आवश्यकता न रही।

जीवन-विकाश।

लोकों अर्थात् सूर्य, ग्रह, उपग्रह आदि के बनने और प्राणियों के रहने योग्य होजाने के पश्चात् दूसरी समस्या (१) उनमें जीवन के विकाशकी है इस पृथ्वी पर जीवन कहांसे आया? उसका प्रारम्भ कैसे हुआ? (२) और फिर उसकी प्रारम्भिक अवस्थासे मनुष्य तक किस प्रकार विकाश हुआ यह प्रश्न है? अनेक वैज्ञानिकोंने इस प्रकार विचार किया, अनेक रूपोंमें इसके उत्तर दिये, परन्तु जीवनविकाशके सम्बन्ध में **चार्लस डार्विन** का नाम शिरोभूत है। उसने अपने प्रसिद्ध **'प्राकृतिक चुनाव के नियम'*** [Law of Natural Selection] के आधार पर विकासवाद [Doctrine of Evolution] की स्थापना की, जिसके अनुसार उसने बतलाया कि संसारका सारा जीवित जगत् एक प्रारम्भिक

---

* 'प्राकृतिक चुनावका नियम' डार्विनके शब्दों में

'Struggle for Existence-.
And Survival of the Fittest.'

है, जिसका अर्थ यह है कि जीव जगत्में अपनी हस्ती जारी रखने के लिये घोर संग्राम 'जद्दोजहद' हो रहा है, उसमें जो प्राणी योग्य हैं

अवस्थासे क्रमशः मनुष्य तक विकाशित हुआ है। यह विकाश भी जीवजगत् सम्बन्धी अटल नियमों [Biological Laws] के अनुसार होरहा है। इस प्रकार भिन्न २ प्राणियों को उत्पन्न करनेके लिये भी किसी आत्मशक्ति की अपेक्षा नहीं। परन्तु प्रथम प्रश्न यह है कि 'जीवन आया कहां से ? इस पर टेण्डल, हक्सले, हेकल आदिने अनेक कल्पनायें कर डालीं। उनके अनुसार प्राणि शरीर में जीवनका आधार मौलिक तत्त्व **'प्राटोप्लाज्म'** (Proto plasm) है [इसी का हिन्दी अनुवाद कई प्रकारसे किया जाता है, इस ग्रन्थ के लेखकने 'कललरस' शब्दका प्रयोग किया है] यह प्राटोप्लाज्म या कललरस कतिपय प्राकृततत्त्वों (Elements) के मिश्रण से बना हुआ है, परन्तु वे प्राकृततत्त्व किस प्रकार और किस मात्रा में मिलते हैं जबकि उनमें जीवनका प्रादुर्भाव होता है, यह वैज्ञानिक नहीं बतला सके।

मानसिक विकाश।

डार्विन ने 'जीवन विकाश' की ही बात कही थी। **हर्बर्ट स्पेंसर** आदि कतिपय तत्त्वज्ञोंने एक पग और आगे बढ़ाया। प्रारम्भिक अवस्थासे पशु पक्षि आदि रूपोंमें होते हुये मनुष्य तक

वे ही बचते हैं और कमजोर, निकम्मे और अयोग्य नष्ट होजाते हैं। इस प्रकार प्रकृति क्रमशः योग्य, अधिक योग्य और उनसे अधिक योग्यों को चुनती रहती है अर्थात् केवल उन्हें ही जीवित रखती है और इस रीति पर जीवजगत् लगातार विकाश होता आया है, और होता जा रहा है।

जीवन का विकाश होता है। इसके पश्चात् मनुष्य में जङ्गली अवस्था से लेकर वर्त्तमान सभ्यतापूर्ण अवस्था तक बुद्धिका विकाश कैसे हुआ यह मानसिक विकाश की समस्या है। स्पेंसरने उत्तर दिया जिस प्रकार जीवन का विकाश होता है उसी प्रकार मनुष्य के भीतर क्रमशः बुद्धिका भी विकाश होता है, और यहां भी इस बुद्धि विकाश के लिये किसी आत्मशक्ति की अपेक्षा नहीं।

इस प्रकार क्रमशः तीनों प्रकारके विकाशों की प्रणालीसे संसार का सारा खेल जड़ प्राकृतिक नियमों के प्रभावसे बन गया। उसके लिये किसी चेतन आत्मा की आवश्यकता नहीं। **प्रकृति** और उसमें **गति** [Matter & Energy] यह दो भौतिक तत्त्व हैं यह दोनों ही नियम हैं, इन दोनों की नित्यता के सिद्धान्त को मिलाकर हेकल ने अपने जड़वाद का मौलिक सिद्धान्तः—

प्राकृतद्रव्य-नियम।

LAW OF SUBSTANCE.

निकाला जिसका अर्थ यही है कि प्रकृति और उसकी गति दोनों सदा स्थिर रहनेवाले नित्य हैं*। इस मौलिक नियमसे सृष्टिका सारा काम चल जाता है, अर्थात् 'नेबुला' (Nebula=जगत्का उपादान कारण मौलिक तत्व) की अवस्थासे अत्युच्च सभ्यतापूर्ण मनुष्यके मस्तिष्कके विकाशके होनेके लिये इस मौलिक नियमके सिवाय किसी चेतन आत्मशक्तिकी आवश्यकता नहीं।

---

*Conservation of Energy and Matter.

समीक्षात्मक दृष्टि ।

प्रकृतिवादके अनुसार तीनों प्रकारके विकाश पर पूर्ण समीक्षा इस संक्षिप्त लेखमें नहीं हो सकती, फिर भी प्रस्तुत पुस्तककी भूमिकाके रूपमें कुछ शब्द लिखने आवश्यक हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि २०वीं शताब्दीके प्रारंभसे ही यूरोपमें अध्यात्मवादकी लहर उठी। आधुनिक वैज्ञानिकोंके कतिपय अग्रगन्ता वैज्ञानिक दूसरी ओर जा रहे हैं। वे तीनों प्रकारके विकाशमें आत्मशक्तिकी आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं।

प्राकृतिक विकाश पर समीक्षा ।

प्रारम्भिक मूल अवस्थासे लगातार गति होनेसे यह जगत-लोकान्तर बनते हैं यह ठीक है, परन्तु आल्फ्रेड रसेल वैलेस, आलिवर लाज सदृश वैज्ञानिक कहते हैं कि (१) इस विकाश को **प्रथम प्रेरणा** First Impulse) देनेके लिये किसी चेतनशक्तिकी आवश्यकता है। (२) इसी प्रकार इस विकाश विधिको अथवा उसके आधार रूप प्राकृतिक नियमोंको नियमित करने, धारण करने, और जानने वाले चेतन आत्माकी सत्ता होनी चाहिये। (३) जो आत्मा लगातार होनेवाले विकाश को अन्तिम उद्देश्य (Final Purpose) तक पहुंचा सके* इस का अर्थ यह है कि प्राकृत जगत्में यद्यपि प्राकृतिक नियम काम

* सृष्टि विकाशमें 'ईश्वर रूप' चेतन आत्माका इन तीनों प्रकारोंसे आवश्यकता रसेल वैलेसने अपनी प्रसिद्ध और अन्तिम पुस्तक

कर रहे हैं परन्तु उनके साथ ही एक ऐसी चेतनशक्ति आवश्यक है जो प्राकृतिक नियमोंको नियन्त्रित करनेवाली और धारण करने वाली (Controller and Sustainer of the Laws of Nature) है † इस '**चेतनशक्ति**' के बिना प्राकृतिक विकाश अथवा सृष्टि रचना नहीं हो सकती इसलिये सृष्टि कर्तृत्वके लिये चेतन आत्मा ईश्वर की आवश्यकता है।

जीवन विकाशकी समीक्षा।

प्रारम्भिक प्रथम अवस्थासे मनुष्य तक जीवनका विकास अभी तक निश्चित सिद्धान्त (Established Doctrine) नहीं होसका है किन्तु वह अभी केवल एक 'वाद' (थ्येरी) ही है।

जो १९१२ में प्रकाशित हुई थी—'The world of life' में दिखलायी है। यह विचार वेदान्तके इस विचारसे कि ईश्वर वह है जिससे जगत्की (१) उत्पत्ति (२) स्थिति (३) प्रलय हो कितना मिलता जुलता है:—इस प्रकार वैलेसने आत्मशक्ति ईश्वर को स्वीकार किया है। यहां यह भी याद रखना आवश्यक है कि वैज्ञानिक जगत् में वैलेसका पद बहुत ऊंचा है। उसने 'प्राकृतिक चुनावके नियम' की खोज ठीक उसी समयकी थी जिस समयकि एक दूसरे स्थान पर बैठे हुये डार्विनने की। परन्तु वह नियम इस समय केवल डार्विनके नामसे ही प्रसिद्ध है। वैलेस 'विकाशवाद' के मुख्य प्रवर्त्तकोंमेंसे एक है।

† वेदमें इन प्राकृतिक नियमोंको 'ऋत' (Comic Laws) कहते हैं और ईश्वरको 'ऋतम्भर' (upholder of the comic Laws) कहा गया है, ऋग्वेदमें (१।१।८) में ईश्वरको 'ऋतस्य गोपा' कहा है जिसका अनुवाद ग्रीफिथने 'Guard of the Laws Eternal' किया है अर्थात्‌वह नित्य प्राकृतिक नियमोंका रक्षक है।

विकाशके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न हैं, जिनका अभी तक उत्तर नहीं दिया जा सका है और अभी तो बन्दर और मनुष्यके बीच विकाश शृङ्खलाकी कई कडिएं ही नहीं मिलती, परन्तु जीवन इस भूमण्डल पर कहांसे आया इसका तो कोई सन्तोषजनक उत्तर दिया ही नहीं जा सका । 'जड' से 'चेतन' बननेकी समस्या पर युरोपके वैज्ञानिक बहुत दिन तक लगे रहे परन्तु कोई सफलता नहीं हुई । जीवनके अस्तित्वके लिए 'आत्मा' को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है अन्यथा जीवनकी संसारमें हस्ती ही सिद्ध नहीं होती । प्राकृतिक विकाशमें जड प्रकृतिके अतिरिक्त ईश्वरकी अपेक्षा होती है इस विषयमें इस ग्रन्थमें संक्षेपसे लिखा गया है क्योंकि वह पुस्तकका विषय नहीं परन्तु 'जीवन' की उत्पत्ति 'जड' से नहीं हो सकती इस विषय को इस ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक युक्तियोंके साथ दिखाया गया है और आत्माको न माननेके कारण जीवनके विषयमें हेकल को जो २ कल्पनायें करनी पडीं उनका भी दिग्दर्शन कराया गया है । साथ ही जगत्में भिन्न २ प्राणियोंका अस्तित्व ईश्वरकी रचना का बोधक है यह भी सिद्ध किया गया है । संक्षेपसे यह कहा जा सकता है कि बिना आत्मा और परमात्माको स्वीकार किए केवल जड प्रकृति जीवनकी समस्याको हल करनेमें सर्वथा असमर्थ है ।

मानसिक विकाशकी समीक्षा ।

मानसिक विकाशकी सिद्धि करनेके लिए अभी तक उतना आधार

भी नहीं है जितना कि प्राणिजगत्के विकाशकी कल्पनाके लिए। मानसिक विकाश आधार रहित कल्पना मात्र है। प्राचीन समयसे अब तक क्रमशः ज्ञानका विकाश नहींहुआ है। प्राचीनकाल कतिपय बातोंमें अर्वाचीन कालसे बढ कर था इस विषयमें भी इस ग्रन्थमें बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु मुख्य समस्या यह है कि मनुष्योंमें यदि ज्ञानका विकाश भी माना जावे तो उस ज्ञान का स्रोत क्या है? मनुष्य और पशु जगत्के बीच **ज्ञान** अथवा ज्ञानको धारण करने वाली **व्यक्तभाषा** एक भेदक रेखा (Line of Demarkation) है। मनुष्योंमें वह ज्ञान कहांसे आया? पशु अवस्थासे उसका विकाश वैज्ञानिक रीति पर सिद्ध नहीं होसकता। उस ज्ञानका स्रोत **'ईश्वरीय ज्ञान'** ही हो सकता है जो कि वेदके रूपमें है। इस विषयमें भी इस ग्रन्थमें बहुत प्रकाश डाला गया है।

यहां हमने जडवाद और आत्मवादकी वास्तविक स्थिति और उनके सिद्धान्तोंका संक्षिप्त विवेचन दिया है। इस विषय पर इस ग्रन्थमें विस्तारसे विचार किया गया है। साथ ही इस ग्रन्थकी एक बडी विशेषता यह है कि उसमें आत्म सम्बन्धी लगभग सारे विचार और सिद्धान्त, चाहे वह नवीन हों या प्राचीन चाहे इस देशके (पूर्व) के हों अथवा विदेश (पश्चिम) के, चाहे वे वैदिक धर्मके हों या अन्य धर्मोंके, एकत्रित किए गए हैं जोकि इस विषयकी ज्ञानवृद्धिमें बहुत सहायक होंगे। यह स्पष्ट है कि विषय अति गम्भीर है विशेष कर इस कारण

कि आर्यभाषामें अभी तक ऐसे गहन विषयों पर कुछ भी नहीं लिखा गया है। ऐसी दशामें यदि कहीं पर इस ग्रन्थके विषयको समझनेमें कुछ कठिनता उपस्थित हो तो कोई आश्चर्य नहीं परन्तु यह आशा की जाती है कि द्वितीय या तृतीय वार पढ़ने में यह विषय अधिक रोचक रीतिसे समझा जा सकेगा।

हर्षकी बात है कि इस समय हिन्दी-साहित्योद्यानमें नए २ पुष्पोंका विकाश होरहाहै। हमें आशा है कि इस ग्रन्थसे हिन्दी साहित्य कीशोभा बढ़गी। न केवल धर्मकी दृष्टिसे किन्तु एतद्विषयक विज्ञानकी दृष्टिसे भी यह हिन्दी साहित्यमें सर्वथा अनूठा और नया ग्रन्थ है।

II

ग्रन्थकार-परिचय।

श्रीनारायण स्वामी जी (भूतपूर्व महात्मा नारायण प्रसादजी आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दाबन इस ग्रन्थ के रच-यिता हैं। इन पंक्तियों के लेखक का महात्मा जीसे घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, उसने उन्हीं के चरणों की छाया में (गुरुकुल वृन्दावन में) दीक्षा और शिक्षा पायी है। आर्य जगतके लिये महात्मा जी का परिचय देना अनावश्यक है। उनका नाम आर्यसमाजके क्षेत्र में इस किनारेसे उस किनारे तक विदित है परन्तु दूसरे पाठकों के लिये कुछ परिचय ग्रन्थकार के विषयमें देना आवश्यक है*।

* यह ग्रन्थकार परिचय श्रीस्वामी जी की विना आज्ञा लिये लिखा गया है, वे इसे पसन्द भी न करेंगे परन्तु पुस्तक के प्रकाशक इसे आवश्यक समझते हैं कि पुस्तकके साथ उसके रचयिताका कुछ परिचय प्रस्तुत किया जाय।

युक्तप्रान्त में सामाजिक कार्य ।

युक्त प्रान्त में इस समय जो कुछ आर्यसमाज का वृक्ष फूला फला दीख रहा है उसको सींचने में श्रीनारायण स्वामी जी का बहुत बड़ा हाथ है। ऋषि दयानन्द के पश्चात् युक्त प्रान्त में ऋषि के मिशन की पूर्तिके लिये जिन कतिपय सच्चे भक्तों ने अपने जीवन की आहुति दी महात्मा जी (स्वामी जी) उनमें से एक हैं। आपने पिछली चौथाई शताब्दि के पूरे समय में (२५ वर्ष तक) आर्यसमाज की सेवाकी है। युक्त प्रान्त की आर्यप्रतिनिधिसभा के सबसे बड़े सञ्चालकों में आप रहे हैं। सभा में अन्तरङ्ग सभासद्, उपमन्त्री, मन्त्री, गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य आदि अनेक पदों को सुशोभित करते हुये आपने कार्य किया है। जिस समय आप मन्त्री थे आर्यप्रतिनिधि सभा की बहुत उन्नति हुई। आप प्रायः समाजोंके उत्सवों पर भी जाते थे और प्रचार की वास्तविक अवस्था का निरीक्षण करते थे। उन का मन्त्रित्व केवल 'दफ्तर, और कलम कागज' का ही न था।

वेदप्रचार, गुरुकुल और कालेज का प्रश्न ।

युक्त प्रान्त में जिस समय वह प्रश्न उठाकि पञ्जाबकी तरह यहां भी डी. ए. वी. कालेज खोला जावे, आर्यसामाजिक नेताओं के दो दल होगए। एक कालेजके पक्षमें था दूसरा वेदप्रचार और गुरुकुलके पक्षमें। महात्माजीने सबसे पहले प्रतिनिधिसभामें गुरुकुल खोलनेका प्रस्ताव उपस्थित किया। लोग अपनी अशक्त

को देखते हुए गुरुकुल खोलनेमें कुछ संकोच करते थे परन्तु जिस समय बृहदधिवेशनमें गुरुकुलके पक्षमें आपने अपनी ओजस्विनी वक्तृता दी जिसे सबने स्वीकार किया। प्रश्न केवल धनका रह गया, उसके लिए भी महात्माजीने सारे प्रान्तमें दौरा लगाकर स्वयं धन एकत्रित किया, और उनके उद्योगका फल यह हुआ कि उस समय तो नहीं किन्तु उसके बहुत पश्चात् १९०६ ई० में यु० प्रा० की आर्य प्रतिनिधि सभाने सिकन्दराबादका गुरुकुल अपने हाथमें लिया। १९०७ में गुरुकुल फरुखाबाद चला गया, जहां वह चार साल तक अर्थात् १९११ तक रहा।

वृन्दावन गुरुकुलके आचार्य।

१९११ में कतिपय कारणोंसे सभाने गुरुकुलको फर्रुखाबादसे उठाकर वृन्दावन लाना निश्चय किया। स्वनामधन्य श्रीयुत राजा महेन्द्र प्रतापने उसके लिए भूमि (एक बाग सहित) बिना किसी शर्तके दे दी। सभाने अक्टूबर १९११ में गुरुकुल उठानेका निश्चय किया था और साथ ही यह भी निश्चय हुआ था कि दो मासके पश्चात् होनेवाला गु० कु० का अगला उत्सव भी वृन्दावन किया जाय। इतने थोडे समयमें सारी इमारतोंका बन जाना और नई गुरुकुल भूमिमें उत्सवका होना केवल इसी लिए सम्भव हो सका कि महात्माजी तीन मासकी छुट्टी लेकर वहां पहुंच गये और रात दिन परिश्रम करके उस कार्यको पूरा किया। परन्तु गुरुकुल आने के पश्चात् मुख्याधिष्ठाता पदका बोझ भी आपके कन्धों पर हा

रक्खा गया क्योंकि स्वर्गीय पं० भगवानदीनजी जो उस समय मुख्याधिष्ठाता थे, बीमार होनेके कारण चले गए। आपने सरकारी नौकरीसे छुट्टी ले ली, परन्तु छुट्टी समाप्त होने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आप नौकरी पर जायें या गुरुकुलका काम करें। आपकी पेन्शन होनेमें केवल एक वर्षकी कमी थी, लोगोंने बड़ा ज़ोर देकर आपको सलाह दी कि डाक्टरसे सार्टीफिकेट (Invalid Certificate) दिलाकर पेन्शनका अधिकार प्राप्त कर लीजिए। परन्तु आपने झूठा सार्टीफिकेट प्राप्त करनेसे इन्कार किया, और ऐसे समयमें जबकि आपकी पेन्शनके लिए केवल एक वर्षकी कमी थी, आपने नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। यह घटना है जो आपके 'स्वार्थ त्याग' और 'सत्य निष्ठा' का परिचय देती है और बतलाती है कि उनके अन्दर कितना चारित्र्यबल है।

गुरुकुल वृन्दावन जो इस समय इतनी उन्नत अवस्थामें है यह आपके ही पुरुषार्थका फल है। जिस समय आपने गुरुकुलका चार्ज लिया बड़ी शोचनीय दशा थी। किन्तु आपने रात दिन परिश्रम करके उसे उन्नत अवस्था तक पहुंचाया। वृन्दावनके पुजारियों और पण्डोंका जैसा विरोध था उसका मुकाबिला करना आप जैसे दृढ और तपस्वी पुरुषके लिए ही सम्भव था। आप लगातार ९ वर्ष पर्यन्त गुरुकुलके मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य रहे, आपके ही समयमें गुरुकुल वृन्दावनमें महाविद्यालय बना और वहांसे स्नातक निकलने प्रारम्भ हुए।

गुरुकुलके कार्यसंचालनमें आपको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पडा, उसका अनुमान करना कठिन है। न केवल गुरुकुलके आन्तरिक प्रबन्धको चलाना प्रत्युत उसके लिए धन एकत्रित करना भी आपका ही काम था। अनेक बाधाओं और कठिनाइयोंको देख कर लोग घबड़ा जाते थे परन्तु आपके अदम्य पुरुषार्थके आगे कठिनाइयोंका पहाड शिर झुका देता था।

युक्त प्रान्तकी आर्यसमाजोंकी ओरसे अभिनन्दनपत्र।

सन् १९१९ के अन्तमें आपकी आयु ५० वर्षकी हो गई, आपने अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार सन्यासकी तैयारी करनेके लिए गुरुकुलके कार्यसे छुट्टी ली। उस समय श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभाने सारे युक्त प्रान्तके आर्य भाइयोंकी ओरसे महात्माजीकी सेवामें गुरुकुल वृन्दावनके उत्सवके समय '**अभिनन्दनपत्र**' उपस्थित किया जिसमें उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशितकी गई थी। जिस समय महात्माजी अपने प्यारे गुरुकुलसे विदा होने लगे और ब्रह्मचारियोंने उन्हें आंखोंमें आंसुओंके साथ अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया, वह एक विचित्र दृश्य था, उससे पता चलता था कि गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंके लिए उनका पुत्रसे बढ कर प्रेम था और ब्रह्मचारी पिताके समान उनमें श्रद्धा रखते थे।

'श्रीनारायणाश्रम' (एकान्तवास)

महात्मा जीने गुरुकुल से विदाहोकर नैनीताल के समीप

पहाड़के उच्च शिखर पर सुरम्य सुन्दर भूमिमें अपनी कुटी—'श्री नारायणाश्रम'—बनायी। कुटीभी एक दर्शनीय स्थान है। वह पहाड़ के घने जङ्गलके भीतर एक सुरम्य शान्त स्थान में पहाड़ी नदीके पास बनी हुई है। वहां रह कर महात्माजीने सन्यासाश्रमकी तैयारीकी और आध्यात्मिक चिन्तन तथा स्वाध्याय में एकान्त जीवन व्यतीत किया। वहीं रहते हुए इस ग्रन्थका निर्माण किया जो अब पाठकोंके आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। यह ग्रन्थ जैसाकि पाठकोंको पता चल जायगा दीर्घकालीन स्वाध्यायका फल है।

सन्यासाश्रम और पूर्णाहुति।

इस वर्ष (१९२२) गत जूनमें महात्माजीने सन्यासाश्रम में प्रवेश किया। सन्यासमें प्रवेश करते समय आपने अपनी कुटी और सब धन जो कुछ आपके पास था युक्त प्रान्तकी आर्यप्रतिनिधि सभा को वैदिकधर्मसम्बन्धी साहित्यकी उन्नतिमें लगानेके लिए अर्पण कर दिया। सन्यासमें प्रवेश करनेके पश्चात् से वे आर्य समाजोंमें प्रचारार्थ जाने लगे हैं। इस समय आर्य-समाजको आपसे बड़ी आशायें हैं। जहां आपकी कथायें होती है वहांके आर्य पुरुषोंमें नए जीवन और आस्तिक भावोंका सञ्चार हो जाता है। आपकी कथाएं यद्यपि आध्यात्मिक विषयों पर होती हैं परन्तु लोग बडी प्रीतिसे सुनते हैं।

उपसंहार ।

यह कठिन है कि यहां हम संक्षेपसे भी उनके अद्वितीय चारित्र्यको बनानेवाले गुणों पर दृष्टि डाल सकें, परन्तु इतना कहना आवश्यक है कि उनमें तप, स्वाध्याय, नियम, दृढ़ अध्यवसाय, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता आदि गुण जिस प्रकार पाए जाते हैं उसका उदाहरण बहुत कम जगह मिल सकता है। वे एक आदर्श सन्यासी हैं. आर्य समाजका उनसे गौरव है। आर्य-समाज अपनेको धन्य समझ सकता है जिसमें ऐसे सन्यासी विद्यमान हैं।

गुरुदत्त भवन, लाहौर।
मार्गशीर्ष पूर्णिमा १९७२ वैक्रम } धर्मेन्द्रनाथ

प्रारम्भिक वक्तव्य।

पुस्तकके तय्यार करनेमें सबसे अधिक कठिनता, आंगल भाषाके वैज्ञानिक और दार्शनिक (परिभाषिक) शब्दोंके स्थानमें हिन्दी भाषाके शब्दोंके विषय हुई है। नागरी प्रचारिणी सभाका प्रकाशित वैज्ञानिक कोष अभी बहुत अधूरा है, फिर भी उससे कहीं २ सहायता ली ही गई है। अनेक शब्द ऐसे हैं जिनके स्थानमें हिन्दीके भिन्न २ लेखकोंने भिन्न २ ही शब्दोंका प्रयोग किया है। उदाहरणके लिए **'प्रोटोप्लाज्म'** शब्द ही को ले लीजिए। इसके लिए हिन्दीमें प्रथमकेन, जीववीज, जीवकेन, जीवधातु, आदिपङ्क, नारा, जीवनमूल, जीवनतत्त्वादि शब्द प्रयुक्त हुए हैं; परन्तु मुझको सबसे अधिक उपयोगी शब्द, प० रामचन्द्र शुक्लका प्रयोग किया हुआ, **'कललरस'** प्रतीत हुआ और इसलिए इसीका प्रयोग इस पुस्तकमें जहां तहां किया गया है। इस प्रकारके और भी अनेक शब्द हैं, जिनके स्थान पर उपयोगी शब्दोंका प्रयोग किया गया है। उनमें मतभेद होना स्वाभाविक है, परन्तु यदि उनके प्रयोग करनेमें मुझसे कुछ भूल हुई है तो ज्ञात होने पर दूसरे संस्करणमें शुद्ध करनेका यत्न किया जायगा।

पुस्तकके प्रकारकी दृष्टिसे यह आवश्यक ही था कि उसकी रचनामें अनेक पुस्तकोंसे सहायता ली जाती, तदनुकूल सहायता ली गई है। मैं उन पुस्तकके रचयिताओंका कृतज्ञ हूं जिनके रचे पुस्तकोंसे सहायता ली गई है।

पुस्तकका विषय गहन होने पर भी उसको अधिकसे अधिक सुगम बनानेका यत्न किया गया है जिससे पुस्तक सर्व साधारणके हाथोंमे जानेके भी योग्य हो सके। पुस्तकके अन्तमें असाधारण परिभाषिक शब्दोंकी एक सूची भी लगा दी गई है जिससे अङ्गरेज़ी भाषाभिज्ञ पाठक जान सकें कि पुस्तकमें प्रयुक्त हिन्दीके शब्द किन २ अङ्गरेज़ी शब्दोंके स्थानमें काममें आए हैं। यदि पुस्तकके पाठसे देश वासियोंमें से कुछका भी ध्यानआत्म विषयकी ओर हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

ग्रन्थकर्ता

पुस्तकोंकी सूची।

जिनसे इस ग्रंथकी तय्यारीमें सहायता ली गई है।

१—ऋग्वेद
२—सूर्य्य सिद्धान्त
३—१० उपनिषद्
४—६ दर्शन
५—Last Essays of Prof. Max Muller. Vol. I. & II.
६—सासान १—५ के पत्र [फारसी भाषाकी दसातीरमें]
७—The Doctrine of immortality in Ancient Egypt by Dr. Wiedomann.
८—The Confucianism by Robert K. Douglas.
९—The Taonism by Do.
१०—The Idea of Soul by A.E. Crawley.
११—Tylor's primitive culture Vol. I and II.
१२—Reincarnation by E. D, Walker.
१३—The Belief in personal immortality by E. S. P. Haynes.
१४—Republic by Plato:
१५—The Trial and Death of Socrates.
१६—Greek Thinkers by Dr. Gomperdz. Vol. IV. (English Translation)

१७—History of Ethics. by H. Sidgwick.

१८—अखलाक़ फ़िलासिज़ीर क़लन्दर अली रचित [फ़ारसी]

१९ –रोज़तुल अस्फ़िया [फ़ारसी]

२०—मिफ़ताहुल तवारीख़

२१ –History of Philosophy by Erdmann Vol. I to III.

२२—Spinoza. His belief and Philosophy by Sir Frederick Pollack Bart (2nd Edition)

२३—La Manadologies par Emile Boatroux.

२४—Myths and Dreams by Clodd.

२५—System de-la Nature by Barond Halbach.

२६—A Pluralistic Universe by W. James.

२७—Varieties of Religious Experiences by W. James.

28—Jaimes Book on Human Immortality.

२९—Mechanism in Thought and Morals by O. W. Halms.

३०– Some Dogmas of Religion. by Dr. M. E. Taggart.

३१—Religion and Immortality by G. L. Dickinson.

३२—Psychology by Micharl mehr.

३३—Problems of Philosophy by B. Russal.

३४—Prof. Clifford's Lectures and Essays Vol. I.

३५—Psychology and Physiology by Prof. Munsterberg.

३६—Romano, Mind, Motion and Monism.

३७--First Principles (2nd Edition) by H. Spencer.
३८--Evolution of Mind by Joseph Tyndall.
३९--Lectures and Essays by John Tyndall.
४०-- Do. by T. H. Huxley.
४१--Classification of animals by T. H. Huxley.
४२--Origin of Species by Darwin.
४३--The Voyage by Do.
४४--The Riddle of the Universe. by E. Hackel.
४५--Materialism by Darob Dinsha Kanga.
४६--Theoritical Organic Chemistry by Prof. Cohen.
४७--The Human Personality by Mayers Vol. I and II.
४८--Psychical Research by Prof. Barret.
४९--Survival of Man by Sir Oliver Lodge.
५०--Sermons on Immortality by Dr. Momerie.
५१--Christian Doctrine of Immortality by Dr. Salmond.
५२--An Outline of Christian Theology by Dr. W. N. Clarke.
५३--Christian Truth in an age of Science by Prof. Rice.
५४--Through Science to faith by Newman Smith.
५५--Know Thyself by H. Solly.
५६--The Drama of Life and Death by Edward Carpenter.
५७--Man's place in the Universe by Dr. Wallace.

५८—Ear y History of Mankind by Z. B. Tlyor.
५९—Science and Religion by Seven men of Science.
६०—Life and Matter by Sir OliverLodg.
६१—पाणिनि कृत अष्टाध्यायी
६२—सत्यार्थ प्रकाश स्वामीदयानन्द सरस्वती कृत
६३—सर्वार्थ सिद्धि [तत्वार्थ वृत्ति]
६४—माण्डूक्यकारिका [गौडपादाचार्य्य कृत]
६५—सर्वदर्शनसंग्रह [श्रीमाधवाचार्य्य संगृहीत]
६६—The Terminology of the Vedas by P. Guru-Datt M. A.
६७—Problems of the Future by S. Laing.
६८—Cant's Critique of Pure Reason.
६९—योरूपीयदर्शन पं. रामावतार पाण्डे कृत
७०—पश्चिमी तर्क प्रो. दीवानचन्द्र कृत
७१—गीता रहस्य हिन्दी पं. बालगङ्गाधर तिलक कृत
७२—Religion of Sir Oliver Lodge by J. Mecabe
७३—Evolution of Matter cy Gustave Le Bon.
७४—Beyond the atom by Prof. Cox.
७५—Reason and Belief by Sir Oliver Lodge.
७६—The World of Life by Dr. Wallace.
७७—What is life by F. J. Ailen.
७८—सुश्रुत
७९—The Vedic Magazine for Sept. 1921.
८०—चित्रमय जगत् मास जनवरी सन् १९१८
८१—Social environment and Moral progress by Dr. Wallace.

८२—The Historian's History of the world. Article written by Prof. Adolf Erman.

८३—The Theism. by R. Flint.

८४—Phillip's Teachings of the Vedas.

८५—आइन अकबरी फैजीकृत [अंगरेज़ी अनुवाद]

८६—Encyclopedia (some articles.)

८७—Light of Asia.

८८—The Life and Teachings of Buddha.

८९—गीतामें ईश्वरवाद, पं. ज्वालादत्त जी अनुवादित

९०—विश्वप्रपंच पं. रामचन्द्र शुक्ल अनुवादित

९१—कर्मयोग स्वामी विवेकानन्द कृत

९२—सबूते तनासुख पं. लेखराम कृत

९३—The Sacred Books of the East Vols I. to III

विषय सूची ।

उपोद्घातकी विषय सूची ।

पहला अध्याय

पहला परिच्छेद

दूसरा परिच्छेद

दूसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

विषय ... ... पृष्ठ संख्या

पांचवां परिच्छेद

तीसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

(प्रकृति और जीवात्मा)

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

विषय ... ... पृष्ठ संख्या

चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

(आत्मा सम्बन्धी विविध विषय)

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

विषय ... ... पृष्ठ संख्या

चौथा परिच्छेद

पांचवां परिच्छेद

छठा परिच्छेद

सातवां परिच्छेद

आठवां परिच्छेद

नवां परिच्छेद

विषय ... ... पृष्ठ संख्या

दसवां परिच्छेद

ग्यारहवां परिच्छेद

पुस्तककी विषय सूची।

पहला अध्याय

पहला परिच्छेद

(कतिपय प्राचीन पूर्व जातियोंमें प्रचलित आत्मविचार)

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

पांचवां परिच्छेद

दूसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

(कतिपय प्राचीन पश्चिमी जातियोंमें प्रचलित विचार)

चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

(कतिपय अन्य मत)

दूसरा परिच्छेद

पांचवां अध्याय

पहला परिच्छेद

(यूरोपके मत)

दूसरा परिच्छेद

(यौरुपके वर्तमान युगका प्रारम्भ काल)

तीसरा परिच्छेद

छठा अध्याय

पहला परिच्छेद

(यौरुपकी १९वीं शताब्दी)

दूसरा परिच्छेद

(यौरुपकी १९वीं शताब्दीका विज्ञान और आत्मा सम्बधी विचार)

तीसरा परिच्छेद

सातवां अध्याय

पहला परिच्छेद

(पश्चिमी विज्ञानकी २०वीं शताब्दी)

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

* ओ३म् *

❋ उपोद्घात ❋

प्रथम अध्याय

पहिला परिच्छेद ।

इस समय जब कि देशमें आत्मशक्ति (Soul Force)

प्रारम्भ

का महत्व प्रकट होरहा है और आत्मशक्तिको विकसित करने और उससे काम लेनेके लिए देशवासियोंको उत्तेजित किया जारहा है, आत्मसत्ता और उसकी शक्तियोंका विवरण देशवासियोंके आगे प्रस्तुत करना कदाचित् असामयिक न समझा जायगा। पश्चिमीय सभ्यताके चमकीले प्रकाशके साथ उसकी जड़में छिपा हुआ जड़वादरूपी अंधकार भी देशमें आया और देशवासियोंको उसने अपने मायाजाल में फंसाना चाहा। उसीका परिणाम यह हुआ कि देशवासियों का ध्यान देशकी मुख्य विद्या होते हुए भी, आत्मविद्याकी

ओरसे हट गया; परन्तु काठ की हांडी सदैव नहीं चढ़ा करती है, इसी उक्तिके अनुसार चेतन प्राणियोंमें जडवाद प्रतिष्ठित न होसका। उसकी अप्रतिष्ठाका श्रीगणेश उसकी जन्मभूमि यूरुपमें ही हुआ, अब यूरुप में १९वीं शताब्दीके जडवादका स्थान, २०वीं शताब्दीमें प्रारम्भ हुए आत्मवादने लेना शुरू कर दिया है। इस परिवर्तनके प्रभावसे भारतवर्ष कैसे बच सक्ता था, अतएव यहां भी आत्मवादकी चर्चा फैली, देश में उत्पन्न हुई नवीन जागृतिने उसमें अच्छा योग दिया; फल यह हुआ कि शिक्षितसमाज जडवादके मायाजालसे निकलने का उत्सुक होने लगा और उसमें आत्मविद्याके जानने की रुचि बढने लगी; इसलिए यह उचित समय ही जान कर मैंने इस गहन और गहनतर विषयके स्वाध्यायमें देश-वासियोंकी सहायता करना अपना कर्तव्य ठहराया। आत्मवाद गहन होने पर भी संकुचित विषय नहीं, उसका विस्तार बड़ा और विशाल है, उसके जाननेके लिए भी विशाल हृदय अपेक्षित है।

दूसरा परिच्छेद

ज्ञेय मीमांसा

संसार की सब से पुरानी पुस्तक ऋग्वेद में ज्ञेयमीमांसा करते हुए ईश्वर जीव और

प्रकृतिको ज्ञेय बतला कर तद्विषयक ज्ञानप्राप्तिकी शिक्षा दीगई है* वैदिक कालमें यदि ये विषय विचारणीय समझे गए थे तो वे आज भी उसी प्रकार विचारकी कोटिमें हैं, संसारके उन्नत और अवनत कालमें तत्कालीन परिस्थितिके अनुसार इन पर विचार होता चला आया है; पूर्वीय और पश्चिमीय सभी दर्शनोंमें इनकी मीमांसा की गई है। विचारके परिणाममें अवश्य विभिन्न मत हुए और होते रहेंगे, परन्तु विचारणीय विषय सबने इन्हीं को समझा। सेमुएललेंग ने एक बार कतिपय प्रश्न वैज्ञानिकोंसे पूछे और स्वयंभी उनके उत्तर दिए थे,†उसके प्रश्नोंमें मुख्य प्रश्न इन्हीं तीन विषयोंसे संबंधित थे।

वेदों के ३३ देवता ज्ञेय पदार्थों के रूपान्तर हैं

वेदोंके ३३ देवता संख्याकी दृष्टिसे जगत् प्रसिद्ध है, परन्तु वे क्या हैं इसे बहुत थोड़े पुरुष जानते

---

* द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
ऋग्वेद १।१६४।२०

अर्थ-एक साथ रहने वाले, परस्पर मित्र दो पक्षी (ईश्वर+जीव) समान वृक्ष (प्रकृति) पर आश्रय करते हैं, उन दोनोंमें से एक (जीवात्मा) उस वृक्षके फलोंका भोग करता है, दूसरा (ईश्वर) न भोगता हुआ साक्षी मात्र है।

(†) Problems of the Future by S. Laing, published in R. P. A. Series.

हैं। वेदोंमें अनेक मंत्र आए हैं, जिनमें वैदिक देवताओंकी संख्या ३३ वर्णन कीगई है* देवता किसको कहते हैं?

(*) ऋग्वेदमें निम्न स्थलोंमें देवतागणोंकी संख्या ३३ वर्णन की गई है:---

मण्डल	सूक्त	मंत्र
१	३४	११
१	४५	२
१	१३९	११
३	६	९
८	२८	२
८	३०	२
८	३५	३

इसके सिवाय अथर्ववेद काण्ड १०, सूक्त ७, मंत्र १३, में भी ३३ ही संख्या बतलाई गई है, परन्तु ऋग्वेद ३। ९। ९ और यजुर्वेद अध्याय ३३ मंत्र ७ में यह संख्या ३३ की जगह ३३३९ वर्णित है। यह संख्या भेद क्यों है, इसका कारण याज्ञवल्क्य ने बतलाया है और अंत में उन्होंने कारण बतलाते हुए वास्तविक संख्या ३३ ही ठहराई है। जनककी सभामें "शाकल्यविदग्ध" मुनिने याज्ञवल्क्यसे पूंछा कि देवता कितने हैं? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि "वैश्वदेव" (जिन वेदमंत्रों में देवताओं का विधान है उन्हें वैश्वदेव कहते हैं) संबंधी मंत्रों की "निविदा" (देवता संबंधी मंत्रोंके उपयोगी वाक्यों के संग्रहको "निविद्" अथवा "निविदा" कहते हैं) में ३३, और ३००३ कहे गए हैं। इस उत्तरको स्वीकार करके जब शाकल्य विदग्धने उनके नाम पूंछे तो याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि देवता तो वास्तवमें ३३ ही

वेदके प्रसिद्ध कोषकार यास्कमुनि निरुक्तमें लिखते हैं कि प्रधानतासे जिसका वर्णन हो वह देवता है† अर्थात् देवता ही ज्ञेय हैं, उन ३३ देवताओंका विवरण इस प्रकार है :—
८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य (मास) इन्द्र (अशनि अथवा विद्युत्) और प्रजापति (यज्ञ) । आठ वसु ये हैं:—
(१) अग्नि, (२) वायु, (३) पृथिवी, (४) अन्तरिक्ष, (५) द्यौ, (प्रकाशक लोक) (६) चन्द्रमा, (७) आदित्य और (८) नक्षत्र । वसु बसनेके स्थानोंको कहते हैं; इन्हीं आठ प्रकारके वसुगणोंमें प्राण बस सक्ते हैं, इसलिये वसु कहलाते हैं। ९ रुद्र १० प्राण और ११वां आत्मा । १२ आदित्य वर्ष के १२ मासोंको कहते हैं ।* इस प्रकार ये ३३ देवता हैं ।

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० ने यास्कके मतकी पुष्टि

हैं, ३०३ और ३००३ उनकी महिमा ही है। "महिमान एवैषामेते" देवता और उनकी महिमा दोनोंका योग देनेसे (३३+३०३+३००३ = ३३३९) वही संख्या ३३३९, जो वेद के उपर्युक्त दो स्थलों में आई है, निकल आती है। (देखो बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ३ ब्राह्मण ९ कंडिका १ क, १ ख, २)

(†) प्राधान्यस्तुतिर्देवता (निरुक्त) इसी के आधार पर वेदोंमें वेदमन्त्रोंके साथ लिखे हुए देवताओंका तात्पर्य उस मंत्रके विषयसे है अर्थात् जिस मंत्रका देवता अग्नि अथवा आत्मा है तो उस मंत्रमें अग्नि या आत्माका ही वर्णन है, ऐसा समझना चाहिए ॥

* बृहदारण्यकोपनिषद् ।३।९।३–६

करते हुये कहा है* कि जिन विषयोंका मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है वे ही देवता कहलाते हैं। उन्होंने "वे विषय क्या हैं?" इसपर विचार करते हुये उनके छै वैज्ञानिक विभाग किये हैं:—

(१) समय (२) स्थान (३) शक्ति (४) आत्मा (५) मनके इच्छित कार्य्य (Deliberate activities of Mind) (६) जीवन संबंधी अनिच्छित कार्य्य (Vital Activities of Mind); उनका कथन है कि मनुष्य संसारमें जिन विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सक्ता है, वे सबके सब विषय इन्हीं छै वैज्ञानिक विभागोंके अन्तर्गत होते हैं। अब इन विभागोंका ३३ देवताओंसे मिलान करना चाहिये:—

	वैज्ञानिक विभाग	वैदिक देवता
१	समय	१२ आदित्य (मास)
२	स्थान	८ वसु
३	शक्ति	१० रुद्र
४	आत्मा	११ वां रुद्र
५	मनके विचार पूर्वक कार्य्य	१ यज्ञ (प्रजापति)
६	शरीरमें हुये जीवन संबंधी कार्य्य	१ (विद्युत् । इन्द्र)
योग:—	६ वैज्ञानिक विभाग	३३ देवता

अब इन देवताओंको सूक्ष्म रूपमें करें तो ११ वां रुद्र

* "The Terminology of the Vedas" by Pt. Guru Datt M. A.

आत्मा (ईश्वर+जीव) और शेष ३२ देवता प्रकृति और उसके गुणोंके ही स्थानापन्न हैं। इस प्रकार ज्ञेय पदार्थोंको चाहे ईश्वर जीव, प्रकृति कह दें अथवा ३३ देवता अथवा ६ वैज्ञानिक विभाग, ये सब एक ही आशयको प्रकट करेंगे उनमें अंतर कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की हुई ज्ञेयमीमांसाके बाद ज्ञेयसे संबंधित ज्ञान पर विचार करना होगा।

क्या ज्ञेय अज्ञेय है ?

ज्ञेयसंबंधी ज्ञान क्या है, इसका विचार प्रारंभ करते ही पहला उत्तर यह मिलता है कि ये सबके सब ज्ञेय अज्ञेय हैं। स्पेन्सरका कथन है कि धर्म के परम सिद्धांत (ईश्वरादि) अज्ञेय हैं, और इसी प्रकार दिशा, काल, प्रकृति, शक्ति, ये विज्ञानके अंतिम स्वीकृत मंतव्य भी अज्ञेय हैं,* इसका तात्पर्य्य यह है कि संसारकी मुख्य वस्तुओंका ज्ञान हमको हो ही नहीं सक्ता, परंतु यह विचार अब अप्रतिष्ठित हो रहा है। स्वयं योरुपमें अज्ञेयवादकी चढ़ी हुयी कमान उतर रही है। सेमुयेल लेंगकी भविष्यद्वाणी भी कि संसारका भावी धर्म अज्ञेयवाद होगा,† पूरी होती नहीं दिखाई देती, इसलिये हम भी अज्ञेयवादकी सीमाका उल्लंघन करके ज्ञेयवादकी दुनियामें प्रविष्ट होते हैं।

---

* "The First Principles by H. Spencer"

† "Problems of the Future" by S. Laing p. 90-96

दूसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

ईश्वर सम्बन्धी विचार।

ज्ञेय वस्तुओंमें सबसे पहला स्थान ईश्वरको दिया गया है, इसलिये हम भी अपनी विचारशृंखलाका प्रारंभ ईश्वरसे ही करते हैं। ईश्वर वादसे संबंधित तीन मत है :—

(१) आस्तिक वाद

(२) नास्तिक वाद

(३) अज्ञेय वाद

हम इन तीनों वादोंपर एक दृष्टि डालना चाहते हैं, परंतु विषय का सिलसिला ठीक करनेके लिये विचारक्रम में भेद करना पड़ेगा, और वह भेद इस प्रकार होगा कि प्रथम नास्तिकवाद उसके बाद अज्ञेयवाद और फिर अंतमें आस्तिकवाद पर विचार किया जायगा।

नास्तिकवाद

यद्यपि नास्तिकवाद पश्चिममें उसी प्रकार प्रतिष्ठित है, जिस प्रकार आस्तिकवाद पूर्व में; तो भी नास्तिकवाद के लिये यह नहीं कहा जासक्ता कि उसका जन्म पश्चिममें हुआ। इस वादका भी जन्म भारतवर्षमेंही

हुआ था। चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनमतोंमें उस समयसे, जबकि पश्चिमीय सभ्यताका जन्मभी नहीं हुआ था, नास्तिकताके विचार पाये जातेहैं, वे विचार इस रूपमें हैं कि जो २ स्वाभाविक गुणहैं उस २ से द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बन जातेहैं, जगत्का कर्ता कोई नहीं*। अवश्यही भारतवर्ष धर्मप्रधान देश था इसलिये नास्तिकवाद यहां फलीभूत नहीं हो सका, परंतु पश्चिमी देशों और वहांकी सभ्यतामें उसको उच्चस्थान मिला। कुछ समय पूर्व योरुपमें, अपनेको नास्तिक कहना फ़ैशनका अङ्ग होगया था, अब इस फ़ैशनका उतना मान नहीं रहा जितना १९वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें था। जर्मनीके एक विद्वान् निटशेने तो यहां तक कहनेका साहस किया था कि "इस २०वीं शताब्दीमें ईश्वरकी मृत्यु होगई †" अस्तु हम प्रथम यहां उन समस्त तर्क और युक्तियोंको संक्षेपके साथ अंकित करते हैं जो नास्तिकवादके समर्थनमें पेश की जाती हैं, और फिर पीछेसे क्रमपूर्वक उनपर विचार करेंगे।

नास्तिकवादके समर्थनमें तर्क

(१) जगत् नित्य है, इसी प्रकारसे बना चला आता है और इसी प्रकार से बना

---

* अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वाभावात्तद्व्यवस्थितिः॥ चारवाक

† Nietzsche's Eternal Recurrence Vol. xvi. p. 235—256 तिलक कृतगीतारहस्यमें उद्धृत पृ० २६६।

चला जायगा, वस्तुएं स्वभावतः बनती और बिगड़ती रहती हैं।

(२) ईश्वरके गुण विभु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् न्याय-कर्त्ता, शिक्षक, नियन्ता, जगत्का रचयिता और संहारकर्त्ता इत्यादि प्रकृतिमें घटते हैं, अतः ईश्वर कोई नहीं और ये सब गुण प्रकृतिकेही हैं, और प्रकृतिही सब कुछ है, इसके सिवा परिमित गुणवान् कोई शक्ति अनंत हो ही नहीं सक्ती* ।

(३) जगत्में कोई नियम नहीं दीखता, सब कुछ आकस्मिक घटना प्रतीत होती है,† इसलिये किसी नियन्ताकी आवश्य-कता नहीं ।

(४) ईश्वरकी सत्ता मानना इसलिये भी हानिकारक है कि उससे मनुष्योंकी स्वतंत्रताका नाश होता है और व्यर्थ परतंत्र होना पड़ता है ।

(५) ईश्वरको इन्द्रियातीत बताया जाता है, इसलिये उसका निश्चयात्मक ज्ञान कभी नहीं होसक्ता ।

(६) अध्यात्मग्रंथोंमें ईश्वरको अज्ञेय कहा गया है अतः उसके जाननेका यत्न करना व्यर्थ है ।

(७) ईश्वरको सगुण भी बतलाया जाता है और अनेक

---

* विस्तारके लिये देखो लोकायत दर्शन ।

† "Since impartial study of the evolution of the world teaches us that there is no definite sin and no special purpose to be traced in it, there seems to be no alternative but to leave every thing to "blind chance" (Riddle of the Universe.)

गुण वर्णन किये जाते हैं परंतु, प्रत्येक सगुण वस्तु नाशवान् होती है, इसलिये कोई अविनश्वर ईश्वर नहीं होसक्ता।

मुख्य २ आक्षेप जो ईश्वरकी सत्ताके संबंधमें होसक्ते हैं यही हैं, अब इनपर एक दृष्टि डालनी चाहिये :—

नास्तिकताके समर्थक तर्कपर विचार

(I) जगत् (प्राकृतिक) मिश्रित वस्तुओंके समुदायका नाम है, सूक्ष्मसे सूक्ष्म वस्तु आकाश (ईथर), वायु और अग्नि भी कारणरूप प्रकृतिके कतिपय परिणामों (परिवर्तनों) के बाद प्रचालित रूपमें आये हैं, फिर स्थूलसे स्थूल वस्तुओंके तो मिश्रित और अनेक परिणामोंका फल होनेमें तो कोई ननु नच करही नहीं सकता : जो वस्तुयें परिणामोंका फल अथवा मिश्रित है वे नित्य नहीं होसकतीं। उनके प्रचालित अवस्थामें आनेका प्रारंभ अवश्य एक समयमें हुआ है, चाहे वह समय कितना ही लंबा क्यों न हो, जब उनका प्रारंभ हुआ है, तो उनका अंत भी होना चाहिये, कोई सादि वस्तु-अनंत नहीं हो सकती, अनादि वस्तु ही अनंत हो सकती है,-अतः स्पष्ट है कि जगत् नित्य नहीं हो सकता, अनित्य होने पर वह रचा हुआ माना जायगा, रचनाके लिये रचयिताका होना अनिवार्य्य है। एक ओर यदि सर आइज़क न्यूटन (Sir Isaac Newton) से लेकर लार्ड केलविन (Lord Kalvin) तक प्रायः सभी उच्च कोटिके पाश्चिमीय वैज्ञानिक

स्वीकार करते आये हैं कि, यह जगत्, रचयिताकी बुद्धिपूर्वक रचनाका परिणाम है* तो दूसरी ओर दुनियाका सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद भी यही शिक्षा देता है†

(II) नास्तिकताका आक्षेप दो भागोंमें विभक्त है :–(१) प्रकृतिमें ईश्वरके समस्त गुण पाये जाते हैं (२) परिमित गुण रखनेसे ईश्वर अनंत नहीं हो सकता।

दूसरा परिच्छेद

पहले भाग पर विचार गुण
ईश्वरका विभुत्व गुण

(आक्षेप) विभुत्वसे ईश्वरकी व्यापकता बताई जाती है, व्यापकता विस्तार को कहते हैं, लंबाई चौडाई विस्तारके अङ्ग हैं। विस्तार (देश) जडकी विभूति है, देश सीमारहित है। अतएव देशही विभु (व्यापक सर्वान्तयार्मी) है [लोकायतदर्शन २. १. १०.]

---

* Science and Religion by Seven men of Science p. 32.

† सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथ्वीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः॥ ऋग्वेद १०। १९०। ३ (ईश्वरने सूर्य्य और चन्द्र पृथिवी, द्यौ और अन्तरिक्षादि, पहलेकी तरह, रचे हैं)

(**समाधान**) वस्तुका गुणगान, वस्तुके व्यवच्छेदके लिये किया जाता है, व्यवच्छेद एकसे अधिक वस्तुकी अपेक्षा रखता है। अतः सुगमतासे यह परिणाम निकल आता है कि गुण सापेक्षक होते हैं, अतः ईश्वरके गुण भी सापेक्षक हैं। जब कहते हैं कि ईश्वर विभु है तो इसका तात्पर्य्य यह है कि हम उसका परिच्छिन्न (एक देशी) वस्तुओंसे व्यवच्छेद, करते हैं।

गुण दो प्रकार के होते हैं, एक सत्ताद्योतक दूसरे योग्यता-सूचक, सत्ताद्योतक गुण एकरस रहते हैं, परन्तु योग्यता-सूचक गुण गुणी में उस गुणकी निरन्तर योग्यता रहनेकी सूचना देते हुए भी तिरोभूत और प्रादुर्भूत होते रहते हैं। उदाहरण से इसका स्पष्टीकरण किया जाता है—ईश्वर का विभुत्व गुण सत्ताद्योतक है, इस गुण से यह प्रकट होता है कि ईश्वर की सत्ता ही सर्वदेशी है, उसमें यह सर्वदेशिता, तिरोभूत और प्रादुर्भूत नहीं होती, किन्तु निरन्तर एक जैसी बनी रहती है, परन्तु ईश्वरका न्यायगुण योग्यता सूचक है, इस गुण के रखने और कार्य्य में परिणत करनेकी योग्यता ईश्वरमें अवश्य और निरन्तर रहती है, परन्तु गुण प्रकट उसी समय होता है, जब न्याय की अपेक्षा होती है, अन्यथा अप्रकट रहता है। देश अथवा जड़ वस्तुका विस्तार गुण संकोचकी अपेक्षासे कहा जाता है, वह उस वस्तुमें निरंतर नहीं रह सकता। गर्मी मिलनेसे कोई वस्तु विस्तृत होजाती

है, परन्तु शीत मिलनेसे वह विस्तार जाता रहता है । कहा जा सकता है कि संकोच होनेपर भी कुछ न कुछ विस्तार तो रहता ही है, अतः उसमें विस्तार तो निरंतर ही रहा, परन्तु जड वस्तु परिणामशील होती हैं, परिणाम होने पर वस्तु का नाम और रूप विशेष होजाता है, और उस अवस्था में वस्तु अवस्तु (भिन्न वस्तु) हो जाती है, फिर विस्तार और संकोच गुण किसप्रकार रह सकता है ? उदाहरण के लिये पृथिवी को लो, इसमें इस समय लम्बाई चौड़ाई, संकोच और विस्तार सब कुछ हैं, परन्तु अवांतर अथवा पूर्णप्रलय होनेपर जब पृथिवी इस रूपमें बाकी नहीं रहती, तो उसके गुण लम्बाई चौड़ाई आदि भी शेष नहीं रह सकते । अवश्य वे अणु अथवा परमाणु शेष रहेंगे, जिनसे पृथिवी बनी थी; परन्तु उनका नाम न पृथिवी होगा और न पृथिवी के सदृश लम्बाई चौड़ाई उनमें होगी, यही अवस्था समस्त जड वस्तुओंकी है। परन्तु ईश्वर न जड है, न साकार, किन्तु चेतन, अनादि और अप्राकृतिक है, अतः उसका विभुत्व एकरस बना रहता है, क्योंकि वह उसकी सत्ता है, अतः ईश्वर का विभुत्व, जड वस्तुओं में न है और न हो सकता है ॥

ईश्वर का सर्वज्ञता गुण

(आक्षेप) प्रकृतिके सत्वगुणको जीव कहते हैं, प्रकृतिके परिणाम महत्को बुद्धि, महत् के परिणाम अहंकारको मन, और अहंकारके परिणाम पंचतन्मात्राओंको इन्द्रिय कहते हैं; और ये सब प्राकृतिक हैं ।

यदि जड़को चेतनके विरुद्ध माना जावे तो चेतनको जडका ज्ञान नहीं हो सकता, अतएव सर्वज्ञता भी प्रकृतिका गुण है ज्ञान ज्ञेयानुकूल होनेके कारण वर्तमानकालसे परिमित है, अतएव सर्वज्ञतामें भविष्यज्ञानका समावेश नहीं हो सकता। इसके सिवाय ज्ञेयके परिवर्तनसे ज्ञानमें परिवर्तन होना अपरिहार्य है, अतएव सर्वज्ञ का ज्ञान सदैव परिवर्तित होता रहता है। (लोकायतदर्शन २-१-१७-१९)

(**समाधान**) सत्वगुणको जीव कहना कल्पनामात्र है। बुद्धि, मन आदि अवश्य प्राकृतिक हैं, परंतु चेतना और ज्ञान से शून्य हैं, जब वे चेतन और ज्ञानी जीवकी आभासे युक्त होते हैं तब जैसे गर्मीके प्रवेशसे लोहेका गोला लाल और गर्म होजाता है, इनमें भी बोधगुण होनेकी प्रतीति होने लगती है, यह बोधगुण इनमें केवल जीवके निमित्तसे आता और निमित्त के अभाव से नष्ट होजाता है; अतः प्रकृति अथवा उसके कार्य्य बुद्धि मन आदि जड हैं, चेतना शून्य हैं और सर्वज्ञताकी तो कथाही क्या, अल्पज्ञतासे भी रहित हैं। यह बात भी अयुक्त है कि "ज्ञान ज्ञेयानुकूल होनेके कारण वर्तमानकालसे परिमित है":— एक तक्षकने १०० फीट लंबे शहतीरको २० फीट रंदा करके साफ कर लिया है, २० फीटकी सफ़ाई आज कररहा है, बाकी ६० फीटकी सफ़ाई आगामी तीन दिनोंमें करेगा, तो इस शहतीरकी सफ़ाईका ज्ञान, ज्ञेयानुकूल होनेसे, भूतका ज्ञान भी है, वर्तमान और भविष्यत्का भी। यह वर्तमानकालसे

परिमित कहां हुआ? इसके सिवाय कालके विभाग (भूतादि) तो हमारी अपेक्षासे हैं, क्योंकि हम कालसे अवच्छिन्न हैं; परंतु काल ईश्वरके लिये अवच्छेदक नहीं "स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" (योगसूत्र २६ समाधिपाद) अतः सर्वज्ञ (ईश्वर) का ज्ञान तीनोंकालोंसे संबंधित है, देश और काल उसके ज्ञानके बाधक नहीं और न हो सकते हैं। तीसरी बात यहकि 'ज्ञेयके परिवर्तनसे ज्ञान परिवर्तित होता रहेगा' इससे भी सर्वज्ञकी सर्वज्ञताको कुछ भी बाधा नहीं पहुंच सकती, जैसा भी ज्ञेय जब होगा तब तदनुकूलही ज्ञान होना यथार्थ ज्ञान कहला सकता है।

ईश्वरका ज्ञानदातृत्वगुण

(**आक्षेप**) जो प्रत्येक देशमें, प्रत्येक समय में प्रत्येक प्राणीको उपदेश दे, वही परम पुरोहित (शिक्षक) है। ये गुण संसारहीमें घटते हैं, अतएव संसारही परमाचार्य्य है।

(**समाधान**) संसार जड होनेसे सदैव ज्ञेयकी सीमासे बंद्ध रहेगा, शिक्षा देना अथवा उस (संसार) से शिक्षा लेना सदैव चेतन हीके आधीन रहेगा। यदि जड वस्तु शिक्षा देनेका कार्य्य कर सके तो लाखों रुपये जो प्रति वर्ष छोटे बड़े अध्यापक और प्रोफ़ेसरोंको, वेतन रूपमें देने पड़ते हैं, बच जावें; परंतु दुख यही हैकि जड़ संसार शिक्षा देनेका कार्य्य कर नहीं सकता। ईश्वरके ज्ञानदातृत्वगुणका तात्पर्य्य केवल इतनाही है कि वह

आदि शिक्षक है, अर्थात् जगत्के प्रारंभमें ज्ञान दे देता है, उसके बाद उस शिक्षाका विस्तार मनुष्योंके अधीन होजाता है।

ईश्वरका कर्म फलदातृत्वगुण

(**आक्षेप**) ईश्वरको न्यायी (फलदाता) कहनेका अभिप्राय यह है कि प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोका सुखदु:खरूप फल देता है। अनुकूल अथवा प्रतिकूल स्थितियोंके अनुभवोंको सुखदु:ख कहते हैं और स्थितिपरिवर्तन प्राणियोंके प्रयत्नोंका फल है, अत: प्रकृतिही साक्षात् न्यायकर्त्री है। (लो० २-१-४५)

(**समाधान**)—प्रकृतिके न्यायकर्त्री होनेका परिणाम उससे पहले प्रश्नमें दिये हुए विवरणसे नहीं निकल सकता दर्शनकारने अनुचित परिणाम निकाला है। वास्तवमें प्राणियोंके प्रयत्नोंका ही फल स्थितिपरिवर्तन अथवा दु:ख सुख होते हैं और ये ही ईश्वरकी न्यायव्यवस्थासे उसे प्राप्त होते हैं। ईश्वर अपनी ओरसे (फलरूप) दु:ख सुख किसीको नहीं देता।

नोट—उपर्युक्त दर्शनके भाष्यकारने इस संबंधमें कुछ प्रश्न और उत्पन्न किये हैं, उनको हम उत्तरोंके साथ नीचे लिखते हैं:—

प्रश्न—शरीररूपी बंधनमें आनेसे पूर्व हम क्या कुकर्म करते हैं जिससे बंधनमें आते हैं?

उत्तर—मनुष्यका योनियोंमें आना जाना प्रवाहसे अनादि है, अतएव योनियोंमें आनेसे पूर्वकी खोज व्यर्थ है।

प्रश्न–सर्वत्र गुरुकी शिक्षा मिलनेके बाद जीव क्यों कुकर्म करता है?

उत्तर–इसलिये कि जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र है। सत्संग और कुसंगके प्रभावसे मनुष्यकी इच्छायें सदैव परिवर्तित होती रहती हैं और उन्हीं इच्छाओंके अनुकूल वह कर्म करता रहता है।

प्रश्न–क्या ईश्वरके (फल देनेके) नियमोंका प्रत्येक प्राणीको ज्ञान है?

उत्तर–कमसे कम इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी रखताही है कि अच्छे कर्मोंका अच्छा, और बुरे कर्मोंका बुरा, फल मिलता है।

प्रश्न–सर्वज्ञदत्त दंडसे पीड़ित प्राणियोंकोसहायता क्यों दी जाती है?

उत्तर–यह सहायता देना पृथक् कर्म है, इसका उस कर्म या फलसे कुछ सम्बन्ध नहीं है, जो पीड़ित प्राणीकी पीड़ा के हेतु हुये थे। इस प्रकार पीडित प्राणियोंको सहायता देना मनुष्यत्व और ईश्वरीय आज्ञाओंके अनुकूल है, इस लिये देनी चाहिये।

प्रश्न–एक प्राणी दूसरे प्राणी को हनन करता है, हन्ता फल पावेगा, परन्तु हत प्राणी व्यर्थ क्यों मारा गया?

उत्तर–हन्ताका कुकर्म तो यही था कि उसने व्यर्थ एक दूसरे प्राणीका वध किया इसीलिये तो वह दंड पाता है।

"ईश्वरका सर्वशक्तिमान् होना"

(आक्षेप) शक्ति जड़की विभूति है। जलानेकी शक्ति, बुझानेकी शक्ति, ये सब जड़ क्रियायें हैं, (लो० २–१–४९)

ये सब शक्तियां परिमित हैं; क्रिया और समयके संबंधरुपी मान-दण्डसे प्रत्येक शक्ति नापी जाती है, अतएव व्यापक ईश्वर की शक्तियां परिमित हैं। (लो० २-१-५०) क्रियाओं के होने से शक्तियों की परिवृत्ति निरंतर होती रहती है, (अतः शक्तिमान् भी एक रस नहीं होसकता। भाष्यकार) (लो० २-१-५१)

(समाधान) शक्ति अवश्य जड़ है और जड़ (वस्तु) की भी वह विभूति (शक्ति) होसकती है, परंतु इसका परिणाम उचित रीतिसे यह नहीं निकाला जासकता कि वह चेतन शक्तिमान्का गुण नहीं होसक्ती, अथवा जिसका वे गुण हों उसे जड़ही समझा जावे। इसके विरुद्ध नियम तो यह है कि जड़ शक्तियां सदैव चेतनके आधीन रहती हैं और रही यह बात कि शक्तियां परिमित होती हैं, क्योंकि क्रिया और समयके पैमानेसे नापी जाती हैं। किसी अंशमें तो यह कल्पना ठीक मानी जासक्ती हैं, परंतु सर्वांशमें नहीं। क्योंकि क्रियायें (जलना, बुझना आदि) सदैव शक्तिके आधीन रहती हैं, अथवा क्रियायें [गतिशक्ति=Energy] ही शक्ति हैं, तो फिर क्रियाओंकी अपेक्षासे शक्तिको किस प्रकार परिमित कह सक्ते हैं। यही बात समयसे भी संबंधित हैं। समय की गणना (नाप) जिन सूर्य्यादि नक्षत्रोंसे कीजाती है वे भी तो (ईश्वरकी सृष्टि कर्तृत्व) शक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, तो फिर शक्ति समयकी नापसे सीमित कहां हुई। क्रियाओंके होनेसे शक्ति की परिवृत्ति नहीं होती, किंतु शक्तिसेही क्रियायें उत्पन्न होकर परिवृत्तिमें रहती हैं।

ईश्वरका नियन्ता होना।

(**आक्षेप**) संसारमें संसरणकी दशा उद्भव और लयकी ओर होती है। संसरणके वेग तथा मार्गका आधार शक्ति है, जिसका द्रव्य प्रकृति है; अतः संसारका नियमन प्रकृतिपर अवलंबित है (लो. २५-१-५१)

(**समाधान**) शक्तिका द्रव्य किसी अंशमें प्रकृति भी होसक्ता है, परंतु जड़ होनेसे सर्वांशमें नहीं। वास्तविक द्रव्यशक्तिका शक्तिमान् चेतन ईश्वर ही है और इसी लिये यही नियंता भी है।

"ईश्वरका करुणामय (दयालु) होना"

(**आक्षेप**) देश तथा ऋतुओंके अनुसार प्रकाश, वायु, ताप, जल, फलादि देने रूप दया करनेवाली प्रकृति ही है। (लो० २-१-६०) ईश्वर क्षमापुञ्ज होनेसे किस प्रकार (न्याय विधानानुसार दंड) देसक्ता है? (भाष्यकार)

(**समाधान**) प्रकृति जड़ है, उसको प्रकाश (अग्नि) वायु, जलादि रूपमें परिवर्तित करनेवाला जगत्का रचयिता ईश्वर ही है। कोई जड़ वस्तु बिना (चेतन द्वारा) गति पहुंचाये, स्वयमेव कुछ नहीं कर सकती।

भाष्यकारने "दया और न्याय दो विरोधी गुण ईश्वरमें किस प्रकार रह सकते हैं?" यह मनोरंजक प्रश्न उठाया है। हर्बर्ट स्पेंसरने भी अपने अज्ञेयवादकी शिक्षा देते हुये कतिपय अन्य बातोंके साथ, उपर्युक्त प्रश्नको भी समाधानरहित ठहराकर, ईश्वरको अज्ञेय सिद्ध करनेका यत्न किया है। परंतु बड़ी भूल,

जो भाष्यकार अथवा स्पेंसरने की है, अथवा अन्य भी (इस प्रश्नके उठानेवाले) करते है, यह है कि वे दया और न्यायकी सीमा नहीं समझते। दया और न्याय परस्पर विरोधी गुण नहीं, किंतु एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। दया, दयालुका वह गुण है, जो बिना कर्मकी अपेक्षाके दयालु अपनी ओरसे करता है, परंतु न्यायके लिये कर्म अपेक्षित हैं। बिना कर्मके न्यायकारी फलाफल नहीं दे सकता, परंतु दयालु बिना कर्मके दया कर सकता है। इस प्रकार इनमें कोई विरोध नहीं। अपराधोंका क्षमा करना दया नहीं, किंतु अन्याय है। उसको दया समझने से ही लोग भ्रान्त होजाते हैं।

ईश्वर सृष्टिका रचयिता और संहारकर्ता है।

(आक्षेप)ये परस्पर विरुद्ध शक्तियां एक ईश्वरमें कैसे रह सकती हैं? (भाष्यकार)

(**समाधान**) परस्पर विरुद्ध गुण एक व्यक्तिमें नहीं रह सकते, यह कोई नियम नहीं। एक कुम्हार एक सुराही बनाता है, परंतु ठीक न बननेपर फिर बिगाड़कर बनाना प्रारंभ करता है। पाठशालामें हम विद्यार्थियोंको मिट्टीके खिलौने आदि बनाते और बिगाड़ते नित्य प्रति देखते हैं। जब मनुष्योंमें ये परस्पर विरुद्ध गुण रह सकते हैं तब ईश्वरमें क्यों नहीं रह सकते?

तीसरा परिच्छेद

प्रश्नका दूसरा भाग।

परिमित गुण रखनेसे ईश्वर अनंत नहीं हो सकता। (लो० २–१–३) गुण परिमित क्यों है ? दर्शनकारका कहना है कि गुण गणनामें परिमित है अतः परिच्छिन्न अंकोंका योग अनंत नहीं होसकता। इस सिद्धांतमें कि "सीमित अंकोंका योग असीम नहीं होता" किसीको आपत्ति नहीं होसकती, परंतु ईश्वरके गुण परिच्छिन्न अंकवत् है, यही कल्पना विवादास्पद है, ईश्वरकी सत्ता मानने वाले इसे स्वीकार नहीं कर सकते। उदाहरणके लिये ईश्वरके "विभुत्व"को ही लीजिये ? ईश्वरके विभुत्वका तात्पर्य्य यह है कि वह समस्त ब्रह्माण्डमें परिपूर्ण है, अथवा आकाशवत् ब्रह्माण्डमें परिपूर्णत्वके साथही ब्रह्माण्डका आधार भी है। अब "विभुत्व" गुणको परिच्छिन्न सिद्ध करनेके लिये ब्रह्माण्डकी सीमा खोजनी पड़ेगी। परंतु संसारके ज्योतिषी ब्रह्माण्डकी सीमा पानेमें असमर्थ हैं। हमारे सूर्य्यके सदृश संसारमें असंख्य सूर्य्य हैं। एक ज्योतिर्विद्का कथन है कि अपने इस लोक (सूर्य्यमंडल Solar System) से कमसे कम, दो हजार छै सौ शंख ७४ पद्म और ८० नील मीलके भीतर कोई लोक नहीं है* और लोक असंख्य हैं, तो

* (१) देखो "चित्रमय जगत्" मासिकपत्र पूना मास जनवरी १९१८ ई०।

किस प्रकार ब्रह्माण्डकी सीमा खोजी जासकती है। और जब ब्रह्माण्ड ही मानवी गणनाकी सीमासे बाहर है, तो फिर विभुत्व गुणको परिच्छिन्न किस प्रकार ठहराया जासकता है। अतएव न गुण गणनामें परिमित हैं, और न गुणी ईश्वर।

(३) तीसरा आक्षेप यह है कि "जगत्‌में कोई नियम अथवा उद्देश्य नहीं दीखता, सब कुछ आकस्मिक घटना प्रतीत होती है"। प्रोफैसर हेकलने इस आक्षेपका समर्थन बहुत बल देकर किया है, परंतु स्वयं उनके बाद (२० वीं शताब्दी) के वैज्ञानिक इसका विरोध करते हैं। डाक्टर फ्लेमिंग (Dr. J. A. Fleming) ने जो इंगलैंडके एक वैज्ञानिक हैं, लिखा है कि जगत् में उद्देश्य, नियम, स्थिरता, निर्देशक शक्तिकी सत्ता, बोधगम्यता आदि सब गुण पाये जाते है। उन्होंने नियम पाये जाने का एक उदाहरण दिया है कि सूर्य्य मंडलमें एक उत्कृष्ट नियम पाया जाता है—अर्थात् प्रत्येक ग्रह का अंतर सूर्य्य से एक दूसरेकी अपेक्षा बराबर लगभग द्विगुणके होता चला गया है। यदि पृथिवीका सूर्य्य से अंतर १०० मील कल्पना किया जावे तो सूर्य्यसे संबंधित मुख्य ग्रहोंकी सूर्य्यसे दूरी इसप्रकार होगी:—

(१) बुध ३९ (२) शुक्र ७२ (३) पृथ्वी १०० (४) मंगल १५० (५) बृहस्पति ५२० (६) शनिश्चर ९५० मील (७) अरुण (यूरैनस) १९२० (८) वरुण (नेपचून) ३००० । ये अंक लगभग द्विगुण होते गये हैं, यह आकस्मिक घटना नहींहै किन्तु इससे नियंताका नियम, जो सृष्टि रचनामें

पाया जाता है, प्रकाशित होरहा है।* इस प्रकार जगत्का उद्देश्य प्राणियोंका कल्याण करना है, उनको अंधकारसे निकाल कर प्रकाशमें लाना है, यही काम बराबर होता हुआ देखा भी जाता है।

(४) चौथा आक्षेप यह है कि ईश्वरके माननेसे मनुष्य को परतंत्र होकर दुःखित होना पड़ता है, परन्तु बात ऐसी नहीं प्रत्युत इसके सर्वथा विरुद्ध है। मुक्ति जो आस्तिकताका अंतिम फल है वह परम स्वतंत्रता ही है, जहां स्वतंत्रताकी पराकाष्ठा होजावे और उससे अधिक स्वतंत्रताकी संभावना न रहे, उसी को मुक्ति कहते हैं, फिर परतंत्रता कैसी? आस्तिकोंका कहना है कि श्रद्धाके साथ ईश्वरकी भक्ति करनेसे ही प्राणियोंके हृदय प्रेम और आल्हादसे पूरित होते हैं। उपनिषदों और योग दर्शनकी रचना ही इसी प्रेमको जागृत करनेके वास्ते हुई है। योगके अंतिम अंग समाधिका उद्देश्य ही यह है कि प्रेमी प्रेमपात्रके प्रेममें इसप्रकार लवलीन हो कि अपनी सुधबुध विसारके प्रेमपात्रका तद्रूप होजावे। आस्तिकोंके हृदय ही प्राणियोंके प्रेमसे परिपूर्ण होते हैं और जहां नास्तिकताका प्रभाव बढ़ता है, वहां सदैव निर्बलोंपर अत्याचार होते हैं। भारतवर्ष धर्म प्रधान और उसके विरुद्ध योरुप नास्तिकता प्रधान देशहैं, दोनों में जो कुछ अंतर है, देखा जासकताहै। भारतवासी तुच्छ से तुच्छ

* Science and Religion by seven Men of Science P. 31—56.

चींटी और मछलीआदिकी भी परवाह करते हैं, और उन्हें भोजन देतेहुये दिखलाई देते हैं, परन्तु योरुपमें पशु और पक्षियों की तो कथा ही क्या है, निर्बलमनुष्यों तककी भी परवाह नहीं की जाती। उनपर धनवान लोग तरह२ के अत्याचार करते हैं इसीलिये निर्बलोंपर अत्याचार करना वहांकी सभ्यताका एक अंग बना हुआ है। वहां यह कहावत प्रसिद्ध है कि "निर्बलों को रसातलमें चला जाना चाहिये"(The weakest must go down..)

(५) पांचवां आक्षेप यह है कि "ईश्वरको इन्द्रियातीत बतलाया जाताहै, इसलिये उसका निश्चयात्मक ज्ञान कभी नहीं होसकता"। यह आक्षेप भी भ्रान्तिपूर्ण है, नियम यह है कि संसारका प्रत्येक द्रव्य (प्राकृतिक और अप्राकृतिक) अप्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष केवल गुणोंका होताहै। उदाहरणके लिये एक पुस्तक हाथमें लेकर देखें तो पता चलेगा कि हम पुस्तकका रंगरूप और लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि देखते हैं, इसके सिवा और कुछ नहीं देखते; और इस प्रकार जो कुछ देखते हैं वह पुस्तक नहीं किंतु पुस्तकके गुण ही हैं, और उन्हींके देखनेसे पुस्तक प्रत्यक्ष हुआ समझा जाताहै; इसीप्रकार ईश्वरके गुण सृष्टिकर्तृत्वादिको देखकर उसे भी प्रत्यक्ष हुआ समझना चाहिये। आकाश (ईथर), वायु, अणु, परमाणु और विद्युत्कणादि सभी इन्द्रियातीत हैं, परन्तु इनका हमें निश्चयात्मक ज्ञान होसकता है, और उसके इस ज्ञानप्राप्तिके साधन इन्द्रिय नहीं, अपितु

जीवात्मा है। अध्यात्मशास्त्रमें वर्णित विधियों (योगाभ्यासादि) से आत्मा उसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया करताहै ।

(६) छठा आक्षेप यह है कि "अध्यात्मग्रन्थोंमें उसे अज्ञेय कहा गया है, इसलिये उसके जाननेका यत्न वृथा है"। इस प्रकार के आक्षेपोंके आधार उपनिषद्के कुछेक वाक्य समझे जाते हैं। यथा :—

"न विद्मो न विजानीमः"।

"तद्विदितादथोअविदितादधि"॥ केनोपनिषद्)

अथवा बृहदारण्यकोपनिषदमें आये हुये "नेति नेति" शब्द। परन्तु इन वाक्योंका तात्पर्य्य यह कदापि नहीं है कि ईश्वर अज्ञेय है। यह बात पूरा प्रकरण देखने से स्पष्ट होजाती है, केनोपनिषद्का पूरा वाक्य इसप्रकार है :—

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो।
"न विद्मो न विजानीमः... तद्विदितादथो अविदितादधि"

(अर्थ)—"न वहां (ब्रह्मतक) आंखें पहुंचती हैं, न वाणी और न मन (इसलिये इन इन्द्रियों द्वारा नहीं) उसको जानते हैं और न जान सकते हैं। वह (इन्द्रियोंद्वारा जो कुछ जाना जा चुका है उस) जाने हुये से परे है, और न जाने हुये (जो नहीं जाना गयाहै, परन्तु इन्द्रिय द्वारा भविष्यत्में जाना जासकता है उस) से भी पृथक है"। पूरा वाक्य पढ़लेनेसे स्पष्ट होजाता है कि ईश्वरका न जानना अथवा न जानसकना जो उपर्युक्त वाक्यमें कहागया है वह इन्द्रियोंकी अपेक्षासे है। इस

उपनिषद्का विषय भी यही प्रकट करता है कि ईश्वर इन्द्रियोंका विषय नहीं और इसीलिये इन्द्रियोंसे जाना नहीं जासकता। इसीप्रकार "नेति नेति" शब्दोंको प्रकरणके साथ देखें तो प्रकट होगा कि बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय २ ब्राह्मण ३)में वर्णित है कि जगत्के दो रूप हैं (१) **मूर्त** (२) **अमूर्त**। इनमें से मूर्त अग्नि, जल, और पृथिवीको कहा गयाहै। और (२) अमूर्त शब्द आकाश और वायुके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसके बाद ब्रह्मको "नेति नेति" कहा गया है। "नेति नेति" का शब्दार्थ है "न ऐसा न ऐसा" जिसका तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्म न "मूर्त" (अग्नि, जल और पृथ्वी) है, और न अमूर्त (आकाश वायु) है, अर्थात् प्राकृतिक नहीं, किन्तु अप्राकृतिक है। इन वाक्यों में अज्ञेयवादकी गंध भी नहीं।

(७) सातवां आक्षेप यह है कि "ईश्वरको सगुण भी बतलाया जाता है, और सगुण वस्तु नाशवान् होती है, अतः कोई अविनश्वर ईश्वर नहीं हो सकता" यह कोई नियम नहीं है, ईश्वर विधायक (न्यायकारी, दयालु आदि) गुणोंके रखनेसे सगुण और निषेधक (अजर, अमरादि) गुणोंके रखनेसे निर्गुण कहलाता है। सत्त्व, राजस् और तामस् गुण रखनेवाली प्रकृति ही जब नाशवान् नहीं, तो ईश्वर सगुण होनेसे नाशवान् क्योंकर हो सकता है?

चौथा परिच्छेद

अज्ञेयवाद

१९ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें योरुपमें अपनेको अज्ञेयवादी कहना फैशनमें सम्मिलित था, वहांके निवासियोंको नास्तिक कहलानेमें, संकोच होने लगा था। इस लिये उसके स्थान में अज्ञेयवादकी रचना हुई, इंगलैण्ड में हर्बट स्पेंसर और जर्मनी में डयू-बोइस रेमौंड (Du-Bois Reymond) इस मतके आचार्य्य समझे जाते थे, स्पेंसरने इतना कहनेपर ही संतोष किया था कि "हम ईश्वरको नहीं जानते" परन्तु रेमौंडने एक पग और आगे बढ़ाया और "हम (ईश्वरको) नहीं जानते" (Ignoramus=we do not know) इससे बढ़कर उसने कहाकि "हम उसको जानेंगे भी नहीं" (Ignorabimus=we shall never know) कुछ लेखकोंने अज्ञेय वादका प्रारम्भ भारतवर्षमें ही होना ठहराया था, और सांख्यदर्शन के रचयिता* कपिल और उपनिषत्कारोंको इसका जन्मदाता बतलाया; परन्तु यह सर्वथा निर्मूल है, जैसाकि पहले पृष्ठोंमें कहा जाचुका है। अज्ञेयवादकी आयु बहुत थोड़ी निकली और यह वाद अब योरुपमें भी प्रायः ढीला पड़ गया है। इन पश्चिमीय अज्ञेयवादी वैज्ञानिकोंका स्थान या तो जडवादियों ने अथवा आस्तिक वैज्ञानिकोंने लेलिया। रेमौंड के स्थानापन्न हैकलने

---

* देखो पुस्तकमें कपिल का मत।

जड़ाद्वैतवाद (Materialistic Monism) की नींव रक्खी, और इधर इंगलेंडमें स्पेंसर और टिंडल आदिका स्थान क्रक्स, लाज और वालेस आदि अध्यात्मवादी वैज्ञानिकोंने लिया। यहां पर टिंडल और क्रक्स दो वैज्ञानिकोंके मत उद्धृत करते हैं, उन्हीं से यह बात अच्छी तरह प्रकट होजायगी कि अब यूरुपका विचार-प्रवाह किधर है। सर विलियम क्रक्स (Sir William Crooks) ने १८९७ ई० में "ब्रिटिश ऐसोसिएशन" के सभापतिकी स्थितिसे अपने भाषणमें कहा:—२३ वर्ष हुए कि इसी पद की स्थितिसे एक प्रमुख विज्ञानवेत्ता (प्रोफैसर टिंडल) ने एक घोषणा की थी, जिसमें मानसिक आवश्यकतासे विवशहो उन्होंने परीक्षात्मक साक्ष्यकी सीमाका लङ्घन करते हुए प्रकट किया था कि "प्रकृति में ऐसी अव्यक्त शक्तियां हैं, जिन से हम अबतक अनभिज्ञ थे, जो लौकिक जीवन के उत्पन्न करने की योग्यता रखती हैं।" परन्तु मैं इस कथन को उलट देना उचित समझता हूं और मैं जीवन में प्रकृति की समस्त शक्तियों की योग्यता पाता हूं," क्रक्स के असली शब्द इस प्रकार हैं:—"An eminent predecessor in this chair declared that by an intellectual necessity he crossed the boundary of experimental evidence, and discovered in that matter which in our ignorance of its latent power and notwithstanding our professrd reverence for its Creater has hitherto been covered with

opprobrium, the potencey and promise of all terrestrial life. I should prefer to reverse the apothegm and to say that in life I see the promise and potency of all forms of matter." * ?

पांचवां परिच्छेद

आस्तिक वाद

दारा शिकोह और शोपनहार के प्रियतम ग्रंथ उपनिषदोंने ईश्वरको किस प्रकार मानना चाहिये, इस पर बहुत गहरा विचार किया है, उनकी शिक्षा यह है कि "न तो हम यह मानते हैं कि ईश्वरको अच्छी तरह (पूर्णतया) जानते हैं और न यह कि जानते ही नहीं; ईश्वर का जानना यह है कि उसको जानते भी हैं और नहीं भी जानते।† इसका तात्पर्य्य यह है कि हम ईश्वरको उस सीमा तक जानते और जान सकते हैं कि जहां तकका ज्ञान होनेसे हम सांसारिक दुःखोंसे छूटकर आनंद (मुक्ति के सुख) को प्राप्त कर सकें; परन्तु इससे बढ़कर और हम ईश्वरके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते, इसी शिक्षाको लक्ष्यमें रखकर उपनिषदोंमें कहा गया है कि "ईश्वर एक है, समस्त विश्व (जीव+प्रकृति) को वश में रखने वाला है, संपूर्ण प्राणी और अप्राणियों के भीतर

* Materialism by Darale Dinsha Kanga.

† तलवकारोपनिषद् २।२

ओत प्रोत हो रहा है, और एक प्रकृतिको अनेक रूपोंमें परिवर्तित कर देता है, उस परमात्मामें स्थित (आत्मा की आत्मा) ईश्वरको ज्ञानीपुरुष (आत्मा से) प्रत्यक्ष करते हैं, उन्हींको वास्तविक और चिरस्थायी आनंद प्राप्त हो सकता है, अन्योंको नहीं" उस ईश्वरको किस प्रकार प्रत्यक्ष कर सकते हैं, इसके क्रियात्मक साधन **योगदर्शन** में बतलाए गये हैं जिन में से कुछ यहां उदाहरणके तौर पर, अंकित किये जाते हैं।

(१) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह (मौत से भी न डरना), शौच (शारिरिक+मानसिक शुद्धता), संतोष (उद्योग करनेसे जो फल प्राप्त हो उससे अधिककी इच्छा न करना, तप, (इन्द्रिय निग्रह, शीतोष्णता और भूख-प्यासको सह लेना आदि) स्वाध्याय और ईश्वरभक्तिको हृदयमें धारण करना।

(२) प्राणायामके द्वारा शारिरिक और मानसिक उन्नति करना।

(३) चित्तको एकाग्र करनेके अभ्यासों द्वारा आत्मिक बल बढ़ाना।

(४) फलकी इच्छा छोड़कर (निष्काम) कर्म करना और ज्ञानकी उत्तरोत्तर वृद्धि करना।

(५) इस प्रकार उन्नत किये हुये आत्माको ईश्वरके प्रेम में लगाना और जगत्के समस्त प्राणियोंको आत्मवत् समझना।

* कठोपनिषद् ५।१२

(६) प्रेमकी पराकाष्ठा प्राप्त करना जिससे प्रेमी प्रेमपात्र के तद्रूप होकर एकत्वका अनुभव करने लगे । तब वह समस्त मोह और शोकसे छूटकर ब्रह्मानंदके विशाल पथका पथिक बन जाता है । यही अष्टांगयोगका अंतिम परिणाम है, यही कैवल्य समाधि है और इसीको असम्प्रज्ञात योग कहते हैं ।

तीसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

प्रकृति और जीव ।

प्रकृति

तीन ज्ञेय वस्तुओंमें से एक प्रकृति है उसका अति संक्षिप्त विवरण देनेके बाद तीसरे ज्ञेय जीवात्माका वर्णन किया जायगा जो कि ग्रंथका मुख्य विषय है । प्रकृति जगत्का कारण है, इसको दोनों प्रकारकके जडवादी और अध्यात्म-वादी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं, यही सिद्धान्त भारत वर्षके प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेदमें वर्णित है । प्रकृति जब दिन-रूप "सृष्टि" अवस्थामें होती तब काम करती और जब प्रलया-वस्थामें होती तब आराम करती है । प्रलयावस्थामें प्रकृतिके तीनों गुण (विभाग) साम्यावस्थामें होते हैं । जब प्रलय समाप्त होती और जगत्की रचनाका कार्य्य प्रारम्भ होता है, तब गति प्रथम विस्तृत परमाणुओंमें उत्पन्न होती है । यह गति जगत्के रचयिताके ईक्षण (तप=इच्छा) से उत्पन्न होती है । इस गतिके परिणामसे परमाणुओं में हलचल पैदा होजाती है और इस प्रकार प्रकृति अपनी प्रल-यावस्थामें प्राप्त समताको छोड विषमताको प्राप्त कर विकृत अव-स्थामें होकर, सूक्ष्मसे स्थूल होना शुरू होती है:—

पहले	परिणामको	महत् तत्त्व कहते हैं	इन्हींके समुदायसे सूक्ष्म शरीर बनता है।
दूसरे	,,	अहंकार	
तीसरे	,,	५ तन्मात्रा (सूक्ष्मभूत)	
चौथे	,,	१० इन्द्रिय और मन	
पांचवें	,,	५ स्थूल भूत। इनसे स्थूल शरीर बनता है।	

इन्हीं ५ स्थूल भूतों आकाश, (ईथर), वायु, अग्नि, जल और पृथिवीसे समस्त जगत्, और उसके अंतर्गत वस्तु और प्राणियोंके शरीर इत्यादि बनते हैं। प्रकृति जड है, ज्ञानशून्य है, और जब तक चेतन द्रव्य ईश्वर द्वारा इसमें गति न उत्पन्न की जावे, स्वयमेव कुछ भी करनेमें असमर्थ है—

दूसरा परिच्छेद

जीवात्मा

जीवात्मा नित्य है, उसके स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं। यह बात कही जा चुकी है। ऋग्वेदमें इसके संबंधमें इस प्रकार वर्णित है:—"श्वास लेता हुआ, गतिमान्, शीघ्रगामी, जीवन (चेतना) युक्त, शरीरोंके मध्यमें स्थिरतासे निवास करता है। मृतप्राणीका वह अमर जीव अनित्य प्राकृतिक भावों (कर्म+वासना) के साथ अन्य योनियोंमें आता जाता है।*

---

* अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥

ऋ० १। १६४। ३०

अर्थः—(अनत्) श्वास लेता हुआ, (एजत्) गतिमान्, (तुर-

जीवके सम्बन्धमें मुख्यतया दो प्रकारके मत और भी पाये जाते हैं (१) एक पक्ष तो यह कहता है कि जीवकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, किन्तु अविद्याग्रस्त ब्रह्म ही जीव होजाता है। इस पक्षको चेतनाद्वैत अथवा मायावाद कहते हैं। इस वाद के समर्थकोंमें मुख्य श्री शंकराचार्य्य हैं। (२) दूसरे पक्षका कहना यह है कि जीव शरीरके मेल ही का परिणाम है। यह पक्ष जड़ाद्वैतवाद (Materialistic Monism) कहा जाता है. इसके मुख्य समर्थक टिंडल, हक्सले और हेकल आदि प्रसिद्ध पश्चिमी वैज्ञानिक हैं। हम संक्षिप्त रीतिसे इन पक्षोंपर एक दृष्टि डालना चाहते हैं।

क्या जीव और ब्रह्म एक हैं चेतनाद्वैतवाद पर विचार।

चेतनाद्वैत अथवा मायावादके समर्थक कहते हैं कि ईश्वर निर्गुण और अव्यक्त है, मनुष्य मोह या अज्ञानसे उसे सगुण अथवा व्यक्त मानते हैं, (२) प्रकृति अथवा समस्त ब्रह्मांड ईश्वरकी माया है (३) और जीवात्मा, परमेश्वररूपी परमेश्वर के समान ही निर्गुण, और अकर्त्ता है अज्ञान से उसे कर्त्ता मानते हैं।

यातु) शीघ्रगामी, (जीवम्) जीवन (चेतना) युक्त (आपस्त्यानाम्) शरीरोंके (मध्ये) बीचमें (ध्रुवं) स्थिरतासे (शये) निवास करता है (मृतस्य) मृतप्राणीका (अमर्त्यो जीवो) वह अमर जीव (मर्त्येनास्वधाभि) अनित्य प्रकृतिभावों कर्म+वासना) के साथ (सयोनिः चरति) अन्य योनियों (शरीरोंके) के साथ विचरता है।

माया क्या है ?

मायाके अर्थ समझनेमें इस वाद के समर्थकोंमें मतभेद है । वेदान्त शास्त्र के भाष्य में अनेक स्थानोंपर शंकराचार्य्यने माया शब्द अविद्या, अज्ञान अथवा मोहके लिये प्रयुक्त किया है, और वे इन सब शब्दोंको समानार्थक ही मानते हैं । स्वामी विवेकानन्दने देश, काल और परिणामके समुदायको माया ठहराया है । पंचदशी (उत्तरकालीन मायावादके एक ग्रंथ) में मायाके भेद किये गये हैं । (१) **माया** (२) **अविद्या** और इन दोनोंके दो काम बतलाये हैं । पंचदशीके लेखानुसार जब परमेश्वर मायामें, जिसे प्रकृतिके तीन गुणोंमें से केवल सत्त्वगुणका उत्कर्ष बतलाया गया है, प्रतिबिंबित होता है, तब वह सगुण और व्यक्त ईश्वर कहलाता है; परंतु जब अविद्यामें, जिसे उसी सत्त्वगुणका अशुद्ध रूप बतलाया है, प्रतिबिंबित होता है, तब उसकी जीवात्मा संज्ञा होजाती है । पंचदशीकारने माया और अविद्यामें इस प्रकारका भेद किया है, परंतु अधिकांश मायावादी माया और अविद्या आदिको शंकर के मतानुसार एकार्थक ही समझते हैं ।

निर्गुण ब्रह्मसे जगत् और जीव किस प्रकार बने ?

अस्तु हमने देखलिया कि माया वादमें केवल एक तत्त्व जिसे निर्गुण और अव्यक्त ब्रह्म कहते हैं, माना जाता है और कहा जाता है कि दृश्यजगत् और जीव उसी एक तत्त्व निर्गुण ब्रह्मसे प्रादुर्भूत हुएहैं । तब यह प्रश्न उत्पन्न होताहै कि किस प्रकार निर्गुण ब्रह्मसे यह विस्तृत और

दृश्यमान जगत् और उसके साथ ही जीव भी, उत्पन्न होगये ? इसी प्रश्नका उत्तर मायावाद है।

यही प्रश्न मायावाद का मूल प्रश्न है। प्रश्न और भी गहन हो जाता है जब हम देखते हैं कि सांख्य के सदृश मायावाद भी "कारणाभावात् कार्य्याभावः" का नियम स्वीकार करता है। जब ब्रह्म निर्गुण है और इसी लिये निराकार अप्राकृतिक है, तो उससे प्राकृतिक जगत् किस प्रकार उत्पन्न होगया, क्योंकि जगत रूपी कार्य्य के लिये प्रकृति रूपी कारण की आवश्यकता थी, और ब्रह्म में इस कारण का अभाव था।

मायावाद का उत्तर

मायावाद में इस प्रश्न के उत्तर देने के लिये मिट्टी और घड़ा, सोना और अलंकार (ज़ेवर) तथा समुद्र और लहर, के उदाहरण दिये जाते हैं, इनमें से एक उदाहरण का स्पष्टीकरण किया जाता है। १५ तोले सोना है-प्रथम उस के कड़े बनाये गये, तब इसके रूप और नाम को जान कर लोग उसे कड़ा कहने लगे, अब वही कड़ा गलाकर उस की हंसली बना ली गई, तब उसके रूप और नाम का ज्ञान होनेसे वही सोना हंसली कहा जाने लगा, इसी प्रकार तीसरी बार माला कही जाने लगी, परन्तु वास्तवमें वह १५ तोला सोना एकही तत्व था, नाम और रूपके भेदसे वह कभी कड़ा कहलाया, कभी हंसली, कभी माला, इस उदाहरणसे माया-वादमें यह परिणाम निकालाजाता है कि जिस प्रकार सोना एक

तत्व होनेसे नाम और रूपके भेदसे अनेक होगया, इसीप्रकार जगत् में एकही तत्त्वहै, परन्तु नाम और रूपके भेदसे यह सारा दृश्यमान जगत उसी तत्त्वसे प्रादुर्भूत होरहा है। यहां एक बात हृदय पर अङ्कित कर लेना चाहिये कि नाम रूपके साथ वस्तु का तोलभी वस्तु के साथही रहता है। यद्यपि मायावादी कहते हैं कि वस्तुकी तोल और जड़ता आदि गुणोंका समावेश नाम और रूपमें ही होजाताहै, परन्तु कमसे कम तोलका समावेश नाम और रूपमें नहीं होसकता। मायावादकी परिभाषा में वह नित्य तत्त्व जो प्रत्येक वस्तुमें रहता है "सत्तासामान्य" कहलाताहै। प्रसिद्ध दार्शनिक कान्टने दृश्य जगत्का विवेचन करते हुए वस्तुके बाहरी आकारको दृश्य "एरशायनुंग" Erscheinung-Appearance) बतलाया है, और न दिखाई देने वाले वस्तु के भीतरीभाग (तोल आदि) को "डिंगआन्सिच" Dingan-Sich-Thing in Itself) अर्थात् वस्तुत्व कहा है।* परन्तु मायावादमें नामरूपात्मक द्रव्य जगत्को मिथ्या और वस्तुतत्त्वको सत्य कहते हैं, वही वस्तुतत्त्व जो सत्यहै, मायावादियोंका निर्गुण ब्रह्म है; परन्तु मायावाद में इसबातका कुछ उत्तर नहीं दिया गया कि वस्तुतत्त्वमें जो तोल थी वह कहांसे आई। इस प्रश्न को नाम रूपके ही अंतर्गत कहकर टालदिया जाताहै, जब मायावादमें ब्रह्मको जगत्का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" कहा जाता है, तो समझमें नहीं आता कि निर्गुण और अप्राकृतिक

* Kant's Critique of Pure Reason.

ब्रह्म, सगुण और प्राकृतिक जगत् का उपादान कारण कैसे हो सकता है? मायावादमें समस्त दृश्य जगतको, जिसमें मनुष्य, हाथी, घोड़े, बैल, वृक्ष, सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र आदि सभी प्राणी और अप्राणी सम्मिलित हैं, ज्ञान, जीवात्मा को ज्ञाता और वस्तुतत्व (ब्रह्म), को ज्ञेय बतलाया जाता है* । इस प्रकार समस्त जगत्को ज्ञेयसे ज्ञानकी कोटिमें ठहराना भी एक प्रकारका हेत्वाभास ही है । ज्ञाता और ज्ञेयका विवेचन करते हुये मायावाद, ज्ञेय ब्रह्मके स्वरूपके सम्बन्धमें, उपनिषदोंमें बतलाये हुये ब्रह्मके स्वरूप "प्रज्ञान स्वरूप ब्रह्म" (ऐ० ३—३), "विज्ञान स्वरूप ब्रह्म" (तै० ३—५) अथवा सच्चिदानंद स्वरूप, अथवा ओंकारको नाम रूपकी ही श्रेणीमें ठहरा कर अपना मत यह देता है कि ब्रह्मका स्वरूप सबमें श्रेष्ठ होना चाहिये । और क्योंकि गीता अ० ३ श्लो० ४२ में जो आत्मा (जीवात्मा) को, आशा, स्मृति, वासना, धृति (मनके धर्म्म), मन और बुद्धिसे श्रेष्ठ कहा गया है, अतः ब्रह्म भी आत्म स्वरूप ही है । परंतु आत्मा क्यों नाम और रूपसे पृथक् समझा जाता है, जब "ओंकार" नाम और रूपके अंतर्गत कहा जाता है? जगत्

* कैंट वस्तुतत्वको अज्ञेय कहता है, परन्तु उसका तात्पर्य्य वस्तुतत्व से ब्रह्म नहीं किन्तु प्राकृतिक द्रव्य है:परन्तु योगाचार (बौद्धों के एक पंथ के अनुयायी) ज्ञाता और ज्ञेय दोनोंका एक प्रकारका ज्ञान बतलाकर एक ही वस्तु ज्ञानको मानते । हैं यही उनका विज्ञानवाद है ।

तो मिथ्या है, और उसे ज्ञानकी कोटिमें ठहराकर उसके ज्ञेयत्वकी तो मायावादने समाप्ति कर दी; अब जीवका पर्याय आया:—जीव पर विचार करते हुये, मायावाद कहता है कि जीव और ब्रह्म एक ही मेलके द्रव्य हैं, अर्थात् दोनों अमर और अव्यय हैं, और जो तत्त्व ब्रह्माण्डमें है वही पिंड (मनुष्यके शरीर) में भी है। अतएव जीव और ब्रह्म पृथक नहीं किंतु एक ही हैं। केवल माया अथवा अज्ञानसे जीव अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझता है, परंतु जब जीव योगशास्त्रमें वर्णित उपायों अथवा अन्य अनेक उपायों मेंसे किसी एकका अवलंबन करके, माया (अज्ञान) को दूर कर देता है, तब अपनेको ब्रह्मही समझने लगता है। ब्रह्मका स्वरूप निश्चय करते हुये तो उसे आत्मस्वरूप ठहराया था, अब जब आत्मा भी ब्रह्म ही ठहराया गया तो फिर वही प्रश्न सन्मुख आ जाता है कि फिर ब्रह्म क्या है। इसका अंतिम उत्तर माया-वादकी ओरसे यह दिया जाता है कि परब्रह्मका अंतिम (निर-पेक्ष और नित्य) स्वरूप निर्गुण तो है ही, पर अनिर्वाच्य भी है। जगत्में एक तो तत्त्व ब्रह्मकी कल्पना मायावादने की थी और अंतमें उसको भी अनिर्वाच्य ठहरा दिया। जगत्में जो कुछ दिखलाई दे, वह तो इसलिये मिथ्या है कि नाम और रूपकी कोटिमें है और उनके भीतर जो सत्य ब्रह्मतत्त्व (ब्रह्म) है वह अनिर्वचनीय है; फिर मायावादका सिद्धान्त कोई समझे तो किस प्रकार समझे ? स्वयं मायावादके अनुयायी विद्वान् भी मायावादकी इस निर्बलताको, कि किस प्रकार निर्गुण और

अव्यक्त ब्रह्मसे सगुण और व्यक्त जगत् उत्पन्न हो गया, स्वीकार करते हैं। लोकमान्य तिलकने इसी बातको इन शब्दोंमें लिखा है—"(निर्गुणसे सगुणकी उत्पत्ति) सच्चा पेच है, ऐसी वैसी उलझन नहीं है, और तो क्या, कुछ लोगों की समझमें अद्वैत (मायावाद) सिद्धान्तके माननेमें यही ऐसी अड़चन है, जो सबसे मुख्य, पेचीदा और कठिन है। इसी अड़चनसे छडक कर वे द्वैतको अंगीकार कर लेते हैं"* पुरुष (जीव+ईश्वर) के समान ही सांख्यने प्रकृति (जगत्‌के कारण) को नित्य मान कर, समस्त जगत्‌को उसी (कारण) का कार्य्य ठहराया है। यही सांख्यका "परिणाम अथवा सत्कार्यवाद" है। न्यायदर्शनमें परमाणुओंसे जगत्‌की उत्पत्ति मानकर, कारण और कार्य्य दोनों को सत्य ठहराया है। यही न्यायका "आरम्भवाद" है; परंतु मायावाद इस प्रकारके किसी कारणको स्वीकार न करनेके कारण ही उलझनमें पड़ा हुआ है। मायावाद कहता है कि ब्रह्म तो निर्गुण है, पर मनुष्यके इन्द्रिय भ्रमके कारण उसीमें सगुणत्व की झलक उत्पन्न होजाती है। यही मायावादका "विवर्तवाद" है। इन्द्रियोंमें सगुणत्वकी झलक किस प्रकार उत्पन्न होती है, इसका समाधान नवनिप्रकाशमें, इस प्रकार किया जाता है, कि कानसे सुनाई देने वाला शब्द या तो वायु (ईथर) की तरंग है या गति; और इसी प्रकार आंखों से दिखाई

*गीता रहस्य हिन्दी पृष्ठ २३७।

देने वाले रंग भी सूर्य्यके प्रकाशके विकार हैं, और प्रकाश भी एक प्रकारकी गति ही है। इस प्रकार गतिके एक होने पर भी कानमें वह शब्दका रूप ग्रहण कर लेती है, और आंखमें रंग का। इस उदाहरणके आधारपर यह कहा जाता है कि अविनाशी वस्तु (निर्गुण ब्रह्म) पर मनुष्यकी भिन्न २ इन्द्रियां अपनी ओरसे शब्दरूपादि अनेक नामरूपात्मक गुणोंका अध्यारोप करके नाना प्रकारके दृश्य उत्पन्न कर लिया करती हैं। परन्तु इस समाधानका कितना मूल्य है, यह केवल इस बातपर ध्यान देनेसे प्रकट होजावेगा:—कि जो शब्द सुनाई देते अथवा जो रंग दिखाई देते हैं उनका हेतु तो गति है, परन्तु निर्गुण ब्रह्म में गतिस्थानी कौनसी वस्तु है, जिससे इन्द्रियां नानाप्रकारके दृश्य उत्पन्न कर लिय करती हैं? यदि ब्रह्म में इस प्रकारकी गतिके सदृश किसी वस्तुकी कल्पना कीजावे तो उसका निर्गुणत्व नहीं रह सकता। यदि कोई वस्तु कल्पना न कीजावे तो उदाहरण देकर जो सिद्धान्त स्थिर किया गया है, उसकी संमति मायावादसे कैसे लग सकती है? इसके सिवा इन्द्रियोंमें यह गुण कहांसे आया कि अवस्तु में अपनी ओर से नाम रूपकी कल्पना कर लेवें। इस प्रकार की अनेक उलझने हैं, जिनका सुलझाना मायावादके लिये कठिन होरहा है। इसी के साथ एक और उलझन भी है, कि इन्द्रियोंकी अपेक्षा न करके बतलाना चाहिये कि जगत्की वास्तविक सत्ता कुछ है या नहीं। प्रश्नको और भी परिमित रूपमें कर दियाजाता है:—

कल्पना करो कि पृथ्वी जिसपर हम सब रहते हैं, और जिसका व्यास ८००० मीलके लगभग बतलाया जाता है, और जिसपर सभी प्राणी और अप्राणि बसते हैं, और जिसपर नदियां भी हैं, समुद्रभी हैं, हिमालय जैसे बड़े २ पर्वतभी हैं, लोहे, कोइले, सोने, चांदी, आदि २ की खाने भी हैं, इन्द्रियों की अपेक्षा नकरके बतलाया जाय कि यह पृथ्वी वास्तव में कुछ है या केवल भ्रम ही भ्रम हैं। माया वाद का उत्तर यही हो सक्ता है कि निर्गुण ब्रह्मके सिवा इसकी सत्ता और कुछ भी नही है, जो कुछ दिखलाई देता है, भ्रममात्र है। अच्छा भ्रमही सही, परन्तु यदि कोई सौ दो सौ मनका पत्थर किसी पहाड़से किसी पुरुषपर गिर पड़े तो वह दबकर कुचला तो न जावेगा ? यदि कहो कि कुचल तो जावेगा तो क्यों ? क्या भ्रम भी बोझीला होता है ?

अस्तु यहां अब अधिक कुछ कहनेकी जरुरत नहीं । हम ने देख लिया कि मायावाद केवल एक तत्त्व निर्गुण ब्रह्मके स्वीकार करने और जीव और जगत्के कारणकी स्वतन्त्र सत्ता न स्वीकार करनेसे, कितने उलझनोंमें पड़ा हुआ है ?

अस्तु जीव को स्वतन्त्र स्वीकार न करने और उसे ब्रह्म का ही प्रकाश बतलानेसे काम नहीं चल सक्ता। अच्छा तो क्या जीवात्मा शरीरके मेलका परिणाम है ?

तीसरा परिच्छेद ।

क्या जीव प्राकृतिक है ?

यह कहा जाचुका है कि जीवके प्राकृतिक होनेकी कल्पनाका जन्म पश्चिमी सभ्यताके जन्मसे पहले हो चुका था और यह भी कि इस कल्पना की जन्मभूमि भी भारतवर्ष ही है। चारवाकने इस कल्पनाका प्रचार कि "जीव शरीरके साथ उत्पन्न होकर उसीके साथ नष्ट होजाता है" भारतवर्षमें उस समय किया था, जब योरुपकी जातियां सभ्यतारहित थीं। परंतु योरुपमें इस कल्पनाका जन्मदाता यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक "डिमोक्रेटस" (Democretus) को समझना चाहिये।

डिमोक्रेटस।

यही दार्शनिक "परमाणुवाद" का भी जन्मदाता समझा जाता है।

डिमोक्रेटसने इस परमाणुवादके संबंधमें कुछेक नियम बनाये हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) अभावसे अभाव ही निकल सकता है। भावका अभाव नहीं हो सकता। वस्तुओंके परिवर्तनका हेतु अणुओंका संयोग और वियोग है।

(२) अचानक (बिना कारणके) कोई घटना घटित नहीं होती। प्रत्येक कार्य्य (घटना) का कारण होता है, और उसी कारणका आवश्यक परिणाम वह कार्य्य हुआ करता है।

(३) संसारमें स्थित पदार्थ केवल परमाणु और आकाश

(अवकाश) हैं । अन्य वस्तुओंकी सत्ताका प्रकटीकरण, सम्मति मात्र है—

(४) परमाणु संख्या और रूप-विभिन्नतामें असीम हैं। उनके परस्पर संघर्षणसे गति और भ्रमण उत्पन्न होकर जगत् की उत्पत्तिका कारण होते हैं।

नोट—परन्तु वह गति जिससे परमाणुओं में संघर्षण होने लगता है, कहां से आती है, यदि डिमोक्रेटस इसपर विचार करता तो उसका ध्यान जगत्कर्ताकी सत्ताकी ओर जाता, और तब वह इससे अधिक तत्त्वों के मानने के लिये विवश होता !

(५) वस्तुओं की संख्या, आकार और राशियों की भिन्नता परमाणुओंकी संख्या आकार और राशियोंकी विभिन्नता पर निर्भर है।

(६) जीवात्मा सूक्ष्म, चिकने और गोल परमाणुओंसे बनते हैं, वे अग्निके परमाणु जैसे होते हैं। ये परमाणु सब परमाणुओं से अधिक गतिमान् होते हैं और समस्त शरीरमें व्यापक होते हैं, इन्हींकी गति से जीवनका कार्य्य प्रकट होता है—

इन नियमोंमें से छठा नियम है जिससे जीवके प्राकृतिक होने की कल्पनाका प्रादुर्भाव योरुपमें हुआ। परमाणुओंकी गति से चेतनाकी उत्पत्तिकी कल्पना स्वयं इन्हीं नियमोंमें से नियम सं० १ और २ के विरुद्ध है। परमाणुओंमें चेतनाका अभाव होता है, तो इन परमाणुओंके संयोग, वियोग और गति आदि से भी जो दृश्य प्रकट हों उन में भी नियम सं० १ के अनुसार चेतनाका अभाव ही रहना चाहिये। यदि चेतनाका भाव हो

सकता है, तो इसका तात्पर्य्य यह होगा कि नियम सं० १ के सर्वथा विरुद्ध (चेतनाके) अभावसे (चेतनाके) भावकी उत्पत्ति होसकती है । इस लिये डिमोक्रेटसका छठा नियम न तो ठीक ही था, और न उसके अपने ही नियमोंके अनुकूल । अस्तु जीवके प्राकृतिक होनेका बीज इस प्रकार डिमोक्रेटसने बोया था ।

इम्पीडोकिल्स । डिमोक्रेटसके थोड़ेही कालके बाद यूनानके एक दूसरे दार्शनिक "इम्पोडोक्लेस" (Empodocles) ने उसके परमाणुवादके नियमोंमें दो और नियमोंकी वृद्धि की ।

(१) परमाणुओंमें इच्छा द्वेष है । (२) परमाणुओंमें "समर्थावशेष" की योग्यता है* ।

इम्पीडोक्लेसने डिमोक्रेटसके छठे नियमकी त्रुटि पूरा करनेके लिये यह कल्पना की कि परमाणुओंमें इच्छा और द्वेषके विचार होते हैं,परन्तु यह कल्पना कल्पना मात्र रही । इम्पीडोकिल्स के पश्चात्कालीन वैज्ञानिकोंमें से जिनमें हक्सले और हैकल जैसे जडाद्वैतवादी वैज्ञानिक भी सम्मिलित हैं, किसीने इस कल्पनाकी पुष्टि नहींकी कि परमाणुओं में इच्छाद्वेष के विचार हैं । सभी ने

---

* "इम्पीडोक्लेस" का "समर्थावशेष" (Survival of the fittest) वाला नियम ही डार्विनके समर्थावशेष वाले नियमका पूर्व रूप था ।

एक स्वर से उन्हें जड़ और विचार और चेतनाशून्य माना है। इस लिये इम्पीडोकिल्स की इस कल्पना से भी जीवके प्राकृतिक होने के बादकी स्थापना नहीं होसकी। इम्पीडोकिल्सके बाद यूनानमें इस श्रेणीके दो और भी दार्शनिकोंका प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने डिमोक्रिटसकी पुष्टिमें बहुत उत्साह दिखलाया। वे इपीक्यूरस (Epicures) और लुक्रेटियस (Lucretius) थे।

इपीक्यूरस और लुक्रेटियस

इपीक्यूरसने जगतकर्ताकी आवश्यकता न प्रकट करते हुए, अपनी सम्मति दी कि वह नास्तिक नहीं, जो देवताओं की सत्ता अस्वीकार करता है, किन्तु नास्तिक वह है, जो उनकी सत्ता स्वीकार करता है। लुक्रेटियसने अपना मत दिया कि "यदि तुम इन नियमोंको समझो, और मस्तिष्कमें रक्खोगे, तो देख सकोगे कि बिना देवताओंके माध्यमके, सृष्टिनियम स्वतः ही समस्त जगत् रचनाका कार्य्य कितनी उत्तमता और शीघ्रतासे समाप्त करते हैं।

इन जड़वादी दार्शनिकोंके विचार यूनानमें इनके बाद हुए दार्शनिकोंकी शिक्षाओंसे पुष्ट न होसके। सुकरात, अफलातून, अरस्तू, पाइथागोरस आदि प्रायः सभी दार्शनिक जीवकी स्वतंत्र और नित्य सत्ता स्वीकार करते रहे।

योरुपके मध्यकालीन युगमें "मज़हब" के नामसे जब वैज्ञानिकों पर अत्याचार हुए और उन्हें जीता ही भस्मीभूत तक किया

और अन्य भी तरह २ से कष्ट दियेगये*, तब वैज्ञानिकोंमें मजहब के विरोधका संकल्प जागृत हुआ, और इस प्रकार इस विरोध का परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिकों का ध्यान जीव और ईश्वरकी सत्तासे हटा और उन्होंने सब काम प्रकृतिक परमाणुओंसे ही चलानेका उद्योग किया। परिणाम इस संघर्षणका यह हुआ कि फिर जड़वादकी जागृति हुई और यह विचार विशेष रीतिसे वैज्ञानिकोंमें बढ़ने लगा, और विज्ञानका एक अंग समझा जाने लगा। वैज्ञानिकों की खोज और अन्वेषणा भी जड़वादकी सहायक हुई, उदाहरणकी रीतिपर एक अन्वेषणा का उल्लेख किया जाता है।

१९ वीं शताब्दीके प्रारम्भ में "यूरिया" (Urea) जो एक अत्यन्त स्वच्छ मिश्रित वस्तुहै, और जिसमें जीवन सम्बन्धी कुछ क्रियाओंका होना कल्पित किया जाता है, स्वस्थ प्राणियोंके मूत्रमें पाई जाती है। यह प्राणियोंसे ही प्राप्त वस्तु समझी जाती थी और प्राकृतिक साधनोंसे उसका बनाया जाना असंभव समझा जाताथा; परन्तु "वुहलर" (Wohler) ने जब उसे प्राकृतिक

* जब इटली के वैज्ञानिक ब्रूनो (Giordano Bruno) ने प्रचार करना प्रारम्भ किया कि समस्त स्थिर ग्रह (Fixed Stars) हमारे सूर्य्य की भांति, सूर्य्य ही हैं, और ग्रह उपग्रह इनके चारों ओर घूमतेहैं, क्योंकि यह शिक्षा बाईबलके विरुद्ध थी, अतः पादरियों ने उसे कैद किया, और अन्त में १९ फरवरी १६०० ई० को उसे ज़िन्दा जला दिया।

साधनोंमें रसायनशालामें बनादिया, तब यह समझा जाने लगा कि जीवनसम्बन्धी अन्य बातें भी प्राकृतिक आधार रखती हैं, और कललरस आदि भी इसी प्रकार बनाये जा सकते हैं। परन्तु यह भ्रम ही भ्रम सिद्धहुआ। यूरिया और चेतना दो पृथक् २ वस्तु हैं, एक दूसरेसे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। जो कुछ हो, उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें यूरोपके वैज्ञानिकोंमें यह विचार बढ़ता गया कि जीवनका आधार प्राकृतिक है। यहां इस प्रकार के विचार रखने वाले वैज्ञानिकोंमें से हम दोका उल्लेख करेंगे, जो जड़ाद्वैतवादी वैज्ञानिकोंके मुकुट समझे जाते हैं:—

(१) हक्सले (२) हैकल।

हक्सले।

हक्सलेने अपने प्रसिद्ध व्याख्यान "जीवनके प्राकृतिक आधार"में कललरसकी बनावटपर विचार करते हुये कहा था कि सब प्रकारके कलल रसोंमें, जो अब तक जांचे गये हैं, चार मूल तत्त्व पाये जाते हैं। (१) कार्बन (२) हाइड्रोजन (३) औक्सिजन और (४) नाइट्रोजन। इनका सम्मेलन इतना गूढ़ है कि अब तक यह नहीं जाना जासका है कि यह तत्त्व किस २ मात्रा में मिलाये जाने चाहियें जिससे कलल रस बनसके*

(१) कललरस के अवयव इन चार तत्त्वों को बतलाते हैं परन्तु अपने बतलाये हुये मूलभूत अवयवों से कललरस बना नहीं सकते, और न बना सकने से एकही परिणाम निकाला जासकता है कि इनको अभी तक पूरा २ ज्ञान चेतना की तो कथा ही क्या है कललरस का भी नहीं है।

हक्सलेने इन तत्वोंको निर्जीव बतलाया है, परन्तु इनका निर्जीव होना स्वीकार करते हुए भी लिखा है कि इन चार तत्वोंमें से जब कार्बन और आक्सिजन विशेषमात्रामें और विशेष अवस्थामें मिलते हैं, तो कार्बोनिकएसिड उत्पन्न करते हैं। आक्सिजन और हाइड्रोजनसे जल बनता है, और नाइट्रोजन और कुछ अन्य मूलभूत (जो अबतक अज्ञात हैं) जब मिलते हैं तो "नाइट्रोजनस साल्ट" पैदा करतेहैं। हक्सले को स्वीकार है कि कि यह तीनों मिश्रित वस्तुएं भी निर्जीव हैं, परन्तु वह कहता है कि जब यही तीनों मिश्रित वस्तुयें किसी विशेष रीतिसे (यह रीति भी अज्ञात है) मिलते हैं, तो अपनेसे भी अधिक दुर्बोध वस्तु कललरसको उत्पन्न करदेते हैं, और इसी रससे जीवनके दृश्य प्रकट होते हैं।

हक्सलेका यह बाद कितना अधूरा है, यह इससे ही प्रकट है कि वह यह नहीं जानता कि नाइट्रोजनस साल्ट के निर्माण के लिये नाइट्रोजनके साथ दूसरा मूलभूत कौनसा मिलता है, वह यह भी नहीं जानता कि वह "विशेष रीति क्या है जिससे यह तीनों मिश्रित वस्तुयें मिलती हैं"। यह तो प्रश्न ही अभी पृथक् है कि कललरसमें चेतना है या नहीं। हैकलने स्वीकार किया है कि कललरस भी निर्जीव ही है, परन्तु यहां तो हक्सले तथा अन्य वैज्ञानिकोंको जिनमें हैकल भी सम्मिलित है, यह भी ज्ञात नहीं कि कललरस किस प्रकार बनता है, और वह उसके बनाने में अब तक सर्वथा असमर्थ हैं। हक्सले को अपने इस बादकी

निर्बलता स्वयं भी ज्ञात होगई थी, ऐसा प्रतीत होता है, इसी लिये उसने अपने एक दूसरे पुस्तककी भूमिका में जो उपर्युक्त व्याख्यानके बाद उसने लिखी थी, और जो पशुओंके वर्गीकरण से संबंधित थी, लिखा है कि "जीव शरीरकी रचना की हेतु है, परिणाम नहीं"। उसके शब्द यह हैं "Life is the cause and not the consequence of organisation" उसने इस वादका -"उत्तमतया स्थापित वाद" कहकर लिखा है और इसी सम्बन्ध में जान हंटरका भी उल्लेख करते हुये लिखा है कि उन्होंने इसका बहुधा समर्थन किया है। ऐसी दशामें जब हक्सले को अन्तमे यह स्वीकार करलेना पड़ा कि जीव शरीरसे स्वतन्त्र कोई वस्तु है, और यह कि वह शरीरके संगटनका परिणाम नहीं, किन्तु शरीरके संघटनका कारण है, तब जीवन का प्राकृतिक आधार कहां रहा? इस प्रकारकी सम्मति देनेके बाद हक्सलेको जडाद्वैतवादी नहीं कह सकते।

चौथा परिच्छेद

हैकल

हक्सलेकी अपेक्षा हैकलने जीवनके प्राकृतिक आधार की कल्पनाको अधिक श्रृंखलाबद्ध रूपमे प्रकट किया है, परन्तु चेतनाका कार्य्य जड प्रकृतिसे किस प्रकार चल सकता था, इसलिये जडप्रकृतिसे चेतनाकी उत्पत्ति सिद्ध करने के लिये उसे अनेक--कमसेकम सत्तरह (१७)—

कल्पनायें करनी पडी हैं। उसका सविस्तर श्रृंखलाबद्ध वर्णन पुस्तकमें यथास्थान अंकित हुआ है। यहां संक्षेपसे उसका उल्लेख उसकी कल्पनाओंके प्रदर्शित करनेके उद्देश्यसे किया जाता है।

शरीरनिर्माण

प्राणियोंके शरीर घटकोंसे बने हैं। प्रत्येक घटक के दो मुख्य भाग होते हैं (१) कललरस (२) केन्द्र। समस्त घटकोंमें कललरस भरा रहता है। केन्द्र कुछ ठोस होताहै, और कललरस से कुछ अधिकधुन्धला। हैकलने कललरस के सिवा एकमनोरसकी भी कल्पना की है। उसका कहना है कि शरीरके स्थूलभाग कललरससे और सूक्ष्मभाग, जिनके द्वारा मानसिक व्यपार होते हैं, मनोरस से, निर्मित होते हैं। शरीर का निर्माण गर्भ की स्थापना द्वारा होता है, इसलिये हैकलने वहींसे अपना कथन प्रारंभ किया है।

गर्भ

प्रथम पुरुष (वीर्य्य) घटक और स्त्री (रज) घटक अपने केन्द्रोंसहित गर्भाशयमें मिलनेको उद्यत होते हैं, और एक अद्भुतशक्ति द्वारा, जिस का ज्ञान हैकल को नहीं था और इसीलिये उसने इसअद्भुतशक्तिको "अलौकिकशक्ति" बतलाया है, वे दोनों घटक एक दूसरेकी ओर वेगसे आकर्षित होकर मिल जाते हैं। जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने वालोंका कथन है कि विना जीवकेगर्भाशयमें प्रवेश किये गर्भकी स्थापना नहीं हो सक्ती। हैकल को जीवात्माकी स्वतन्त्रसत्ता स्वीकृत नहीं थी, अतः उसे इस अद्भुतशक्तिकी कल्पना करनी पड़ी। इस शक्तिको

उसने एक प्रकार की रासायनिक प्रवृत्ति प्राणसे मिलती जुलती बतलाया है, यह हैकलकी **पहली कल्पना** है, जो जडाद्वैतवादी होनेसे उसे कहनी पड़ी। इसके पश्चात् हैकल कहता है कि इस प्रकार पुरुष और स्त्री के "संवेदनात्मक अनुभव" द्वारा जो "एक प्रकारके रासायनिक प्रेमाकर्षण" (Erotic Chemical trapism) के अनुसार होता है, एक नवीन "अङ्कुरघटक" उपत्न्न हो जाता है, जिसमें माता और पिता दोनोंके गुणोंका समावेश होता है। गर्भकी स्थापना, जिसे हैकलने अंकुरघटककी उत्पत्तिका नाम दिया है, जीवात्माके गर्भमे आए बिना नहीं हो सक्ती थी, अतः हैकलको एक प्रकारके रासायनिक प्रेमाकर्षण" और जडघटक (अंकुरघटक) में माता पिताके गुणोंके (जो किसी चैतन्य वस्तुमें ही आसकते थे, आनेको **दूसरी कल्पना** करनी पड़ी * फिर हैकल कहता है कि "इस अंकुर (मूल) घटक के उत्तरोत्तर विभाग द्वारा बीज कलाओंकी रचना, द्विकल घटककी उत्पत्ति तथा अन्य अंगावयवोंका विधान होता है, और इसप्रकार भ्रूण पिण्ड क्रमशः बढ़ते २ बालकके रूपमें होजाता है। हैकल कहता है कि अबतक भी बालकमें चेतना नहीं होती, और उस समय

---

* माता पिता के शारीरिक गुण दोष बालक के शरीर में आते हैं परन्तु मानसिक गुण दोष आत्मामें ही आ सकतेहैं अतः उनके अंकुर घटक में आने की कल्पना, कल्पना मात्र है, क्योंकि अंकुरघटक चेतना शून्य, जड घटकों का भी समुदायअथवा इतर रूप है ॥

तक भी चेतना बालकमें नहीं होती, जबतक यह बोलने नहीं लगता। बहुत अच्छा तो इस हिसाबसे गूंगा आदमी तो सदैव चेतना रहितही रहेगा, क्योंकि न वह कभी बोलेगा और न कभी उसमें चेतना का विकास होगा। चेतना का विकास किस प्रकार होता है, यह कथा भी सुनने योग्य है।

मनोव्यापार

"स्त्री पुरुष घटकों में केवल केन्द्र ही नहीं होता है किन्तु उनमें एक २ घटकात्मा भी होती है इन घटकात्माओं में एक विशेष प्रकार की संवेदना और गति होती है गर्भ विधानके समय दोनों घटकोंके कललरस और बीज (केन्द्र) ही मिलकर एक नहीं होजाते, बल्कि उनकी घटकात्मायें भी परस्पर मिल जाती हैं। अर्थात् दोनोंमें जो निहित या अव्यक्त गति शक्तियां होती हैं। वे भी एक नवीन शक्तिकी योजनाके लिये मिलकर एक होजाती हैं, अंकुर घटककी यह नवयोजित शक्ति ही बीजात्मा है"। इस कथनमें भी हैकलने कल्पनायें की हैं अर्थात् घटक कललरससे बनते हैं, कललरस कतिपय मूलभूतों (अक्सीजन) आदिका कार्य्य है। उपादानमें जो गुण होतेहैं, वही उससे निर्मित वस्तुमें आते हैं। आक्सिजन आदिमें न तो कोई विशेष प्रकार की संवेदना और गति होती हैं, न कोई निहित या अव्यक्त गति शक्तियाँ। उनके जो कुछ भी गुण और कार्य्य हैं, रसायन शास्त्र में वर्णित हैं। जब उनमें एक विशेष प्रकारकी संवेदना आदि नहीं है, तो उनसे बने हुये पदार्थों कललरस आदिमें भी यह

गुण नहीं होसकते। यह हैकल की **तीसरी कल्पना** है, जो उसे जीवात्माकी सत्ता न माननेसे करनी पड़ी। फिर हैकल लिखता है कि "सम्पूर्ण मनोव्यापार कललरसमें होनेवाले परिवर्तनोंके अनुसार होते हैं। कललरसके उस अंगका नाम जो मनोव्यापारोंका आधारस्वरूप प्रतीत होता है, मनोरस है। मनोरसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आत्मा या मनको हम कललरसमें हुये अन्तर्व्यापारोंकी समष्टिमात्र समझते हैं। इसी समष्टिको मनोरस कहते हैं। आत्मा अथवा मनोरसकी क्रियायें शरीरके द्रव्य वैकृत्यधर्म* से संबद्ध हैं। जीवात्माका कार्य मनोरसकी कुछेक रासायनिक योजना और कुछेक "भौतिक क्रिया हुए बिना नहीं हो सकता"।

कललरसके कार्य्योंका नाम आत्मा रखनेमें हैकलने कतिपय कल्पनायें की हैं:—

पहली कल्पना—"कललरसके एक अंशका, मनोव्यापारों का आधारस्वरूप प्रतीत होना"। यदि हैकलने किसी परीक्षणसे "कललरसका मनोव्यापारोंका आधारस्वरूप होना" जाना होता, तो उसका उल्लेख वह अपने पुस्तकमें करता, परंतु समस्त पुस्तक (Riddle of the Universe) के पृष्ठ लौट जाने पर भी

---

* घटकों या तंतुओंकी वह क्रिया जिसके अनुसार वे रक्त द्वारा प्राप्त पोषक द्रव्यको अपने अनुरूप रस या धातुमें परिवर्तित कर लेते हैं या घटकस्थ कललरस विश्लिष्ट करके द्रव्योंमें परिणत करते हैं, जो पाचनरस बनाने और मल निकालने के काम आते हैं।

(विश्वप्रपंच)

किसी ऐसे परीक्षणके किये जानेका उल्लेख नहीं मिलता। इसके सिवा उसका "आधार स्वरूप" शब्दोंके साथ "प्रतीत होना" (which seems) इन शब्दोंका प्रयोग स्पष्ट कर देता है कि यह किसी परीक्षणका परिणाम नहीं, किंतु कल्पना मात्र है।

दूसरी कल्पना—आत्माके कार्य्यके लिये "कुछेक रासायनिक योजना" और कुछेक भौतिक क्रियाका होना आवश्यक है। वे कुछेक रासायनिक योजना और क्रियायेंक्या हैं? कुछेक शब्द के प्रयोग से ही स्पष्ट है कि हैकलको ज्ञात नहीं था, तो इसको कल्पनाके सिवाय क्या कहा जा सकता है?

यह **चौथी और पांचवीं कल्पनायें हैं** जो हैकलको आत्मा की स्वतंत्र सत्ता न माननेसे करनी पड़ी हैं।

इंद्रिय और अन्तःकरण।

हकलका कथन है कि "समस्त जीव संवेदनग्राही हैं, और अपने चारों ओर स्थित पदार्थोंका प्रभाव ग्रहण करते हैं, और शरीरकी स्थितिके कुछ परिवर्तनोंद्वारा उन पदार्थों पर भी प्रभाव डालते हैं। प्रकाश, ताप, आकर्षण, बिद्युदाकर्षण, रासायनिक क्रियायें और भौतिक व्यापार सबके सब संवेदनात्मक मनोरसमें क्षोभ या उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। मनोरसके संवेदनकी ५ अवस्थायें हैं:—

(१) जीवविधानकी प्रारंभिक अवस्थामें समस्त मनोरस, संवेदनग्राही होता है, और बाहरके पदार्थोंसे उत्तेजना ग्रहण करके कार्य्य करता है। क्षुद्र कोटिके जीव और पौधे इसी अवस्थामें रहते हैं।

नोट—हैकलके मतानुसार इन क्षुद्र जन्तुओंमें चेतना नहीं होती। परंतु देखा यह जाता है कि क्षुद्रसे क्षुद्र जन्तु भी "आहार निद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्" के प्रसिद्ध नियमानुसार अपनी रक्षा और आहार आदिकी चिंता रखते हैं। विज्ञानरत्न सर जगदीशचन्द्र वसुके अन्वेषण और परीक्षणानुसार तो पौधोंमें भी ये गुण पाये जाते हैं तो फिर यह ज्ञान इन जंतुओंमें आत्माकी सत्ता के बिना कहांसे आया? क्योंकि स्वयं हैकलके मतानुसार कललरस अथवा उसका विशेषांश मनोरस दोनों ज्ञानशून्य हैं। इस प्रश्नका उत्तर हैकलने कुछ नहीं दिया। बात तो यह है कि उसने इनमें इस प्रकारके ज्ञान होने की कल्पना ही नहीं की।

(२) दूसरी अवस्थामें शरीर पर विषय विवेक रहित, इन्द्रियों के पूर्वरूप, कललरस के सुतड़ों और बिंदियों के रूप (In the form of protoplasmic filaments and pigment spots) में प्रकट होते हैं। ये चक्षु और स्पर्शेन्द्रिय के पूर्वरूप होते हैं, और उन्नत अणु जीव आदिमें पाये जाते हैं।

(३) इन ही मूल विधानोंसे विभक्त होकर इन्द्रियां उत्पन्न होतीहैं।

(४) चौथी अवस्थामें समस्त संवेदना विधानों (इन्द्रिय व्यापारों) का एक स्थानपर समाहार होता है। इस समाहारसे अचेतन अंतःसंस्कार उत्पन्न (अर्थात् इन्द्रिय संवेदनके स्वरूप अंकित) होते हैं।

(५) अंकित इन्द्रियसंवेदनाका प्रतिबिंब संवेदनासूत्रजालके केन्द्रस्थलमें पड़ता है, जिससे अंतःसाक्ष्य या स्वान्तर्वृत्ति बोध (Conscious Perception) पैदा होता है, जो मनुष्यों और उच्च कोटिके पशुओंमें पाया जाता है।

नोट—उपर्युक्त कार्य्य, प्राणियोंके शरीरमें होते हैं, यह तो निर्विवाद है, अंतर केवल यह है कि आत्मवादी इन कार्य्योंका होना आत्माकी सत्ता शरीरमें होनेसे, मानते हैं; परन्तु हैकल बिना किसी चेतनशक्तिकी उपस्थितिके इनका होना मानता है, क्योंकि उसको जीवात्मा और परमात्मा दोनोंकी सत्तासे इन्कार है। ज्ञान और चेतनाहीन कललरस (अथवा मनोरस) में नियम पूर्वक कार्य्य करनेकी शक्तिको स्वीकार कर लेना कल्पनामात्र है, और "वृत्ति-बोध" तो सर्वथा असंभव है। सबसे प्रथम किसी वस्तुके बोध प्राप्त करनेका विचार शरीरमें उपस्थित चेतना शक्ति (आत्मा) में उत्पन्न होना चाहिये, तब उसीकी प्रेरणासे मनोवृत्ति इन्द्रियोंके माध्यमसे उस वस्तु तक पहुंच और तद्रूप होकर मन (अथवा चित्त) में लौटती है, और "स्फटिक" के सदृश मनको तद्रूप बना देती है, तब आत्माको उसका ज्ञान होता है, और उसी ज्ञानकी वस्तु (अथवा वृत्ति) बोध (Conscious Preception) कहते हैं, परन्तु यहां हैकलने चेतनारहित शरीरमें ज्ञानशून्य अंतःकरण द्वारा वृत्तिबोध की कल्पना करली, यह छठी कल्पना है जो हैकलको आत्माकी सत्ता स्वीकार न करनेसे करनी पड़ी।

गति हैकल महोदय कहते हैं कि समस्त जीवों में एक "स्वतः प्रवृत्तगति" की भी शक्ति होती है।

नोट—प्रश्न यह है कि यह स्वतःप्रवृत्तगति कहांसे आई? कल्लरस अथवा मनोरस अथवा उनके उपादान आक्सिजन आदियोंमें तो इस गतिका चिन्ह भी नहीं पाया जाता, क्या किसी जीवात्मा रहित शरीरका परीक्षण करके इस गतिका पता लगाया गया है? यदि ऐसा है, तो क्यों नहीं उस परीक्षणका भी यहां उल्लेख करदिया गया? परन्तु बात यह है कि न तो कल्लरस आदि में ज्ञान है, और न इस प्रकारकी कोई गति। अवश्य ज्ञान और गति (प्रयत्न) जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं, और जीवात्मा के साथही इनकी सत्ता शरीर में भी रहती है। हैकल जीवात्मा को नहीं मानता, इसलिये अचेतन शरीरोंमें ही उस जीवके गुण प्रयत्नकी कल्पना करनी पड़ी, क्योंकि ज्ञान और प्रयत्नके बिना शरीर और अंतःकरणका कार्य्य चल ही नहीं सकता था। यह **सातवीं कल्पना** है, जो हैकल को अनात्मवादी होनेसे करनीपड़ी। अच्छा और आगे चलिये। "सजीव मनोरसमें **कुछ ऐसे आंतरिक कारण** होते हैं, जिन से उसके अणु अपना स्थान बदलते हैं। ये कारण अपनी सत्ता मनोरसके रासायनिक संयोगमें ही रखते हैं। मनोरस की इन स्वतः प्रवृत्तगतियोंका कुछ तो ज्ञान परीक्षणोंसे हुआ है, (परीक्षणोंका उल्लेख नहीं किया गया, न उनका संक्षिप्त विवरण

ही दिया गया है) और कुछ उनके कार्य्यों को देखकर अनुमान किये गये हैं"।

नोट—यहां भी "कुछ ऐसे आंतरिक कारण होते हैं" यह शब्द कहकर हैकलने अपनी अनभिज्ञता प्रकटकी है। बतलाना चाहिये था कि मनोरसका वह कौनसा और किस प्रकार का रसायनिक संयोग है जिससे मनोरसके भीतर स्वतः प्रवृत्तगति उत्पन्न होती रहती है। अवश्य कार्य्योंको देखकर भीतरी शक्ति का अनुमान किया जासकता है, परन्तु वह भी भीतरी शक्ति हैकल के मनोरसमें कल्पित भीतरी कारण नहीं है, किन्तु जीवात्मा है, जिसके गुण प्रयत्नानुसार ये सब कार्य्य होते हैं। यह हैकल की **आठवीं कल्पना** है॥

प्रतिक्रिया

हैकल प्रतिक्रिया को जीवन का कारण समझता है। उसका कथन है कि जीवन संवेदन और गतिसे पैदा होता है। संवेदन और गतिके संयोगसे जो मूल या आदिम मनो-व्यापार उत्पन्न होते हैं उन्हींको प्रतिक्रिया कहते हैं। प्रतिक्रिया की ७ सात अवस्थायें देखी जाती हैं:—

(१) क्षुद्र अणु जीवोंमें वाह्यजगत् की उत्तेजना (ताप, प्रकाशादि) से केवल वह गति उत्पन्न होती है, जिसे अंगवृद्धि और पोषण कहतेहैं॥

(२) डोलने फिरने वाले अणु जीवोंमें वाहरकी उत्तेजना शरीरतलके प्रत्येक स्थानपर गति पैदा करतीहै, जिससे आकृति बदलती रहतीहै।

(३) उन्नत कोटिके अणु जीवोंमें दो अत्यन्त सादे अवयव, एक स्पर्शेन्द्रिय, दूसरी गतिकी, इन्द्रिय देखी जाती हैं, यह दोनों इन्द्रिय कललरस के बाहर निकले हुए अंकुर मात्र हैं, स्पर्शेन्द्रिय पर पड़ीहुई उत्तेजना घटकस्थ मनोरसद्वारा गतिको इन्द्रियतक पहुंचाती है, और उसे आंकुचित करती है।

(४) मूंगे आदि अनेक घटक जीवोंका प्रत्येक संवेदन सूत्रात्मक और पेशीतंतु युक्त घटक, प्रतिक्रियाका एक २ करण है। इसके ऊपर एक मर्मस्थल और भीतर एक गत्यात्मक पेशीतंतु है। मर्मस्थल छूतेही पेशीतन्तु सिकुड जाती है।

(५) समुद्र में तैरने वाले कीटोंमें बाहर संवेदना ग्राहक घटक और चमड़ेके भीतर पेशीघटक होता है। इनके बीचमें एक मिलाने वाला मनोरस निर्मित सूत्र है, जो उत्तेजना एक घटकसे दूसरे घटक तक पहुंचाताहै।

(६) विना रीढ़वाले जन्तुओंमें दो २ के स्थानमें तीन २ घटक मिलते हैं। तीसरा स्वतन्त्रघटक सम्बन्धकारक सूत्रके स्थान में है उसे मनोघटक या संवेदनग्रन्थिघटक कहतेहैं। इसीके साथ अचेतन अन्तःसंस्कार उस घटक ही से पैदा होतेहैं। उत्तेजना पहले संवेदनग्राही घटकसे मध्यस्थ मनोघटकमें पहुंचती है, जहां से क्रियोत्पादक पेशी घटकमें पहुंचकर गतिको प्रेरणा करती है।

(७) रीढ़ वाले जंतुओंमें तीनके स्थानमें चतुर्थ घटकात्मक कारण पाया जाता है।

संवेदनघटक और क्रियोत्पादक पेशीघटकके बीचमें दो

मनोघटक मिलते हैं। बाहरी उत्तेजना पहले संवेदनग्राही मनोघटक, फिर संकल्पात्मक घटक और फिर अन्तमें आकुंचनशील पेशी-घटकमें जाकर गति उत्पन्न करती है। ऐसे अनेक चतुर्घटात्मक करणों और नये २ मनोघटकों के संयोगसे जटिल चेतन अन्तःकरण" पैदा होता है। "प्रतिक्रिया के उपर्युक्त विवरणोंसे (हैकल कहता है) स्पष्ट होगया कि वही आदिम मनोव्यापार है। प्रति-क्रियामें चेतनाका अभाव होताहै। उत्तेजना पहुंचनेसे गति (बारूदके सदृश) उत्पन्न होजाती है। चेतना केवल मनुष्यों और उन्नत जीवोंमें मानी जासकती है। उद्भिदों क्षुद्रजीवोंमें नहीं। इनमें उत्तेजना पाकर जो गति उत्पन्न होती है, वह प्रतिक्रिया (Instinct सहज ज्ञान) मात्र है, अर्थात् संकल्पित अथवा अंतः-करण की प्रेरित क्रिया नहीं है।

नोट—आत्मवादियोंका मन्तव्य है कि शरीरकी भीतरसे वृद्धि (विकास) केवल उस अवस्थामें होती है, जब उसमें जीव होता है। इसीलिये निर्जीव पदार्थ (पहाड़ आदि) भीतरसे नहीं किन्तु बाहरसे बढ़ते हैं। प्रतिक्रियाकी पहली अवस्थामें हैकलने बाह्यजगत्की उत्तेजना (ताप, प्रकाशआदि) से क्षुद्र अणु जीवों की अंग वृद्धि करने वाली गतिका उत्पन्न होना प्रकट कियाहै। इसपर हमारा कहना यह है कि यदि जीवात्मा के अभावमें भी ताप, प्रकाशादिसे प्राप्त उत्तेजनाके द्वारा अंगवृद्धि और पोषणरूप गति उत्पन्न होजाती है तो निर्जीव (जड़) पदार्थ पहाड़ आदिमें उसी उत्तेजनासे यह गति क्यों नहीं पैदा हो-

जाती ? निर्जीव पदार्थोंमें जब यह उत्तेजना अंगवृद्धिकी गति उत्पन्न नहीं कर सकती, तो क्षुद्रजन्तुओंको भी इस उत्तेजनासे (अथवा उससे उत्पन्न गतिसे) अङ्गवृद्धि नहीं होसकती। हैकल की यह कल्पनामात्र है इसी प्रकार प्रतिक्रिया की छठी अवस्था तक भी तो कार्य बाहरी उत्तेजना से हो बतलाये गये हैं। वेभी कल्पनामात्र हैं। बिना शरीरमें जीवके विद्यमान हुए यह कार्य नहीं होसकते। यह हैकलकी **नवीं कल्पना** है। प्रतिक्रिया की सातवीं अवस्थामें प्रतिक्रियाके द्वारा हुए वर्णित कार्य्यों के लौट फेर से जो चेतना (संकल्प या इच्छा) की उत्पत्ति बतलाई गई है, यह हैकलने बड़े साहसका काम किया है।

चतुर्घटात्मक करण, मनोघटक, जीवघटक, अथवा संकल्पघटक, कुछ ही नाम क्यों न रखलिये जावें, ये सबके सब, अबतक के दिये हुए इनकी उत्पत्तिआदि सम्बन्धी विवरणोंसे स्पष्ट है कि, अचेतन हैं। इनमें न ज्ञान है न ज्ञानपूर्वक क्रिया। "फिर इस प्रकारके अनेक घटकोंके मिलनेसे भी चेतना किस प्रकार उत्पन्न होगई" यही मुख्य प्रश्न है, जिस पर प्रकाश पड़ना चाहिये। अनेक जड़ावयव मिलकर भी चेतनाशून्य ही रहेंगे। हैकल स्वयं भी इस कठिनताका अनुभव करताथा, इसीलिये उसने चेतन अंतःकरण के साथ जटिल (Intricate) शब्दका विशेषण लगाया है। प्रति क्रिया की जो अवस्थाएं ऊपर वर्णित हैं और उनमें जो कुछ कार्य्य प्रतिक्रिया का बाह्य उत्तेजना प्राप्त होने पर दिखलाया गया है, यदि वह सब का सब उसी तौरसे स्वीकार कर लिया जावे

तो उसका परिणाम केवल रेंगनेके सदृश एक गतिका उत्पन्न हो जाना होसकता है। वह गति भी ज्ञान रहित होगी, उसमें चेतनामय इच्छा या संकल्पका अभाव होगा। इससे बढ़कर प्रतिक्रियाका और कुछ भी परिणाम नहीं स्वीकार किया जासकता। हम आगे के पृष्ठोंमें अन्य प्रसिद्ध २ वैज्ञानिकोंके मतोंको भी दिखलानेका यत्न करेंगे, जिससे इस विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा। अस्तु जड़ावयवोंसे चेतना (इच्छा या संकल्प) की उत्पत्तिका बतलाना हैकल की यह **दसवीं डबल कल्पना** है :

अंत:संस्कार

हैकल का कथन है कि "इन्द्रियोंकी क्रियासे प्राप्त वाह्य विषयका जो प्रतिरूप भीतर अंकित होता है, उसे अंत:संस्कार या भावना कहते हैं"। अंत:संस्कार चार रूप में देखा जाता है:—

(१) घटक गत अंत:संस्कार। क्षुद्र एकघटक अणुजीवों में "अन्त:संस्कार समस्त मनोरस का सामान्यगुण" होता है। एक प्रकारके अत्यंत सूक्ष्म गोल सामुद्र अणुजीव होते हैं, जिनके ऊपर आवरणके रूपमें एक पतली चित्र विचित्र खोपड़ी होती है। इस खोपड़ी की चित्रकारी सब में एकसी नहीं होती भिन्न २ होती है, खोपडी की रचना और चित्रकारीके विचारसे इस जीवके हज़ारों उपभेद दिखाई पडते हैं। किसी एक विशेष चित्र कारी वाले जीवसे विभाग द्वारा जो अन्य एकघटक जीव उत्पन्न होते हैं, उन में ही वही चित्रकारी बनी मिलती है। इसका कारण

केवल यही बतलाया जा सकता है कि "निर्माणकर्ता कललरस में अन्तःसंस्कारकी वृत्ति होती है और परत्व, अपरत्व संस्कार और उसके पुनरुद्भावनकी शक्ति होतीहै"।

नोट—हैकलमें यह बड़ी योग्यताकी बात थी कि जो प्रश्न आत्मा अथवा परमात्मसत्ताके माने बिना हल नहीं होसकते वह उनको केवल जड़प्रकृति ही के द्वारा हल करदेता था। उसकी हल करनेकी विधि भी बड़ी सुगम थी वह सुगम विधि केवल यह थी कि आत्मा अथवा परमात्माके उस गुणकी, जिससे वह कार्य्य होता है, कललरस (प्रकृति) में होनेकी कल्पना कर लेता था। यही योग्यता उसने यहां भी खर्च की है। उसकी योग्यता देखिये:—

हैकलने इससे पूर्व (गत पृष्ठों में) स्वयं बतलाया है कि एकघटक जीवोंमें इन्द्रियां और उनसे बने अन्तःसंस्कार नहीं होते। परन्तु यहां जब इन क्षुद्रजीवों की उत्पत्तिका प्रश्न कलल में की हुई अबतककी कल्पानाओंसे हल न होसका, तो फिर नई कल्पनायें करलीं जो ये हैं:—(पहली कल्पना) "एकघटक अणुजीवोंमें अन्तःसंस्कार समस्त मनोरसका सामान्यगुण है"।

नोट—अन्तःसंस्कारको कललरसका सामान्य गुण मान भी ले तो प्रश्न यह है कि इन क्षुद्र जंतुओंके ही मनोरसका यह सामान्य गुण है अथवा उन्नत जीवों मनुष्यादिके भी मनोरसोंका सामान्य गुण है? यदि कहो कि नहीं; तो क्या मनोरसभी अनेक प्रकारके होते हैं? यदि उनका भी सामान्यगुण है; तो फिर उनमें इन्द्रियोंकी

उत्पत्तिसे पहले अन्तः संस्कार क्यों नहीं काम देते और क्यों उनमें इन्द्रियोंकी उत्पत्तिके बाद उन अन्तःसंस्कारोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है? साफ़ बात यह है कि हैकलको अनात्मवादी होनेसे इतनी कल्पनायें करनी पड़ी हैं, कि उसे पूर्वापरका ज्ञान भी नहीं रहा। आगे चलिये। (दूसरी कल्पना) जब विभागद्वारा उत्पन्न हुये क्षुद्र जन्तुओंमें चित्रकारी होनेका कारण समझमें नहीं आया तो कितने विवशतापूर्ण शब्दोंमें कहा कि "इसका कारण यही बतलाया जासकता है कि निर्माणकर्ता कललरसमें अन्तः-संस्कारकी वृत्ति होती है, और परत्व अपरत्व संस्कार और उसके पुनरुद्भावनकी शक्ति होती है"। हैकलके असली शब्द ये हैं (The construction.. ...is only intelligible when we attribute the faculty of presentation and indeed of a special reproduction of the plastic "feeling of distance" to the construction protoplasm.) कललरस और हैकलके काल्पित मनोरसमें हैकलने एक २ करके उन समस्त गुणोंकी कल्पनायें करली है, जो चेतन शक्तियों (आत्मा और परमात्मा) में होती हैं। कुछ भी हो उसको कल्पनायें चाहे कितनी ही करनी पड़ें, परन्तु आत्मवादी होना स्वीकृत नहीं है। एक और अनोखापन उसकी कल्पनाओंमें यह है कि जहां जिस जंतुका प्रश्न सामने होता है और यदि कोई बात उसकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें समझमें नहीं आई, तो उसी जंतुके निर्माता कललरसमें वह नई २ कल्पनायें करलेता है। समस्त कललरससे उन कल्पनाओंका सम्बन्ध नहीं होता।

क्या इस विभागद्वारा उत्पत्ति करनेवाले जंतुओंके निर्माता कलल के उपादान और अन्य कललरसोंके उपादानोंमें कुछभेद है? यदि नहीं तो उनके गुण और शक्तियोंमें भेद कैसा? अस्तु, ये **ग्यारहवीं और बारहवीं कल्पनायें हैं**, जो हैकलको अनात्मवादी होनेसे करनी पड़ीं।

(२) तन्तुजालगत अन्तःसंस्कार समूह पिंड बनाकर रहनेवाले एकघटक अणुजीवों और स्पंज आदि संवेदनसूत्ररहित क्षुद्र अनेकघटक अणु जीवों तथा पौधोंके तन्तुजालमें हमें अंतःसंस्कारकी दूसरी श्रेणी मिलती है, इसमें बहुत से परस्पर संबद्ध घटकोंका एक सामान्य मनोव्यापार देखा जाता है। इन जीवोंमें किसी एक इन्द्रियकी उत्तेजनासे प्रतिक्रियामात्र उत्पन्न होकर नहीं रह जाती प्रत्युत तन्तुघटकोंके मनोरसमें संस्कार भी अंकित होते हैं।

(३) संवेदनसूत्रग्रन्थिगत अचेतन अंतःसंस्कार–यह उन्नत कोटिका अंतःसंस्कार अनेक छोटे जंतुओं में देखा जाताहै; उसका व्यापार मनोघटकमें ही होता है।

(४) मस्तिष्कघटकगत चेतन अंतःसंस्कारः—उन्नत जीवोंमें अन्तर्बोध या चेतना मिलने लगती है, वह संवेदनसूत्रजालके मध्यभागके एक "विशिष्ट कारणकी एक विशेष वृत्ति" है।........ चेतन अंतःसंस्कारकी योजना के लिये मस्तिष्कके विशेष २ अवयव स्फुरित होते हैं। तब अंतःसंस्कार उन वृत्तियों या व्यापारों के योग्य होजाता है; जिन्हें विचार, चिंतन, बुद्धि, और तर्क कहते हैं।

नोट—प्राणियोंके शरीर सम्बन्धी विकासमें जिसका चेतनासे सम्बन्ध नहीं है किसी अधिक विवादकी ज़रूरत नहीं। परन्तु जहां जडसे चेतनाकी उत्पत्ति बतलाई जातीहै वही स्थान विवादास्पद है और उसीमें हैकल भी कुछ न कुछ मनमानी स्वच्छन्द कल्पना किये बिना नहीं रहता। यहां भी चेतन अन्तः संस्कार (चेतना अथवा अन्तर्बोध) का वर्णन करते हुये हैकल कहता है कि "वह संवेदनसूत्रजालके मध्यभागके एक बिशिष्ट कारणकी एक विशेष वृत्ति है"(A special function of a certain central organ of the Nervous System) आखिर वह कौनसा विशेष कारण है जिसकी विशेष वृत्ति चेतना है? प्रत्येक शिक्षित पुरुष जानता है कि किसी वस्तुके अनिश्चित होने ही पर उसके लिये "एक खास" (A certain) शब्दका प्रयोग हुआ करता है। हैकलको चेतनाका वास्तविक ज्ञान नहीं है कि वह किस कारणका गुण अथवा वृत्ति है, परन्तु अनात्मवादी होनेसे उसे चेतनाका पता देना चाहिये कि वह कहांसे आई? इसपर उसका उत्तर यह है कि वह "एक विशेष कारण की विशेष वृत्ति है" परन्तु यह कोई उत्तर नहीं है चेतनाका कारण, जो आत्मवादियोंके मतानुसार जीवात्मा है, न जानने पर भी उसके मस्तिष्कमे होनेकी कल्पनामात्र है। यह हैकल की **तेरहवीं कल्पना** है।

स्मृति

स्मृति अंतः संस्कारों से संबद्ध है, जिस पर सारे उन्नत मनोव्यापार अवलम्बित हैं। बाह्य विषयोंके इन्द्रियोंपर

जो प्रभाव पड़ते हैं, वे मनोरसमें अंतःसंस्कारके रूपमें जाकर ठहर जाते हैं, और स्मृतिद्वारा पुनरुद्धृत होते हैं। स्मृतिकी भी चार श्रेणियां हैं:-

(१) घटकगत स्मृतिः—"स्मृति सजीव द्रव्यका एक सामान्य गुण है"........(अर्थात्) अचेतन स्मृति कललाणु की एक सामान्य और व्यापक वृत्ति है,........और क्रियावान् कललरसके इन मूल कललाणुओं में........रहती है, निर्जीव द्रव्यके अणुओंमें नहीं। यहीं सजीव और निर्जीव सृष्टिमें अन्तर है। वंशपरंपरा ही कललाणुकी धारणा या स्मृति है।

(२) तन्तुगतस्मृतिः-घटकोंके समान घटकजालमें भी अचेतन स्मृति पायी जाती है॥

(३) उन्नत जीवोंकी चेतनारहित स्मृति है, जिनमें संवेदनसूत्रजाल रहते हैं।

(४) चेतन स्मृतिका व्यापार मनुष्यादि उन्नत प्राणियों के कुछ मस्तिष्क घटकोंमें अन्तःसंस्कारोंके प्रतिबिंब पड़नेसे होता है। क्षुद्र पूर्वज जीवोंमें स्मृतिके जो व्यापार अचेतन रहते हैं, वे ही उन्नत अन्तःकरणवाले जीवोंमें चेतन होजाते हैं।

नोट—**कललरस**, कहा जाचुका है कि, एक चिपचिपा दानेदार पदार्थ है, और बहुतसी सूक्ष्म कणिकाओंके योगसे संघटित है। ये कणिकायें कई आकार प्रकारकी होती हैं। इनमें जो विधान करनेवाली क्रियमाण मूल कणिकायें कही जाती हैं, उन्हीं

कललाणुओंकी, हैकलके मतानुसार, स्मृति एक सामान्य और व्यापक वृत्ति है। आत्मवादी आत्माके साथ ज्ञानरूपमें चित्तके आश्रय उसका रहना बतलाते हैं, और आत्माके साथ ही वह दूसरे शरीरोंमें जाती है। आत्मा चेतनता और स्वतंत्रतासे जैसा कर्म करता है, तदनुसार उसका स्मरण भी रखता है। यही स्मृति है। परंतु अनात्मवादी स्मृतिकी सत्ता स्थापना किस प्रकार करें! उनके लिये एकमात्र उपाय यही था कि वे इसको भी प्राकृतिक अणुओंका गुण मान लेते। तदनुसार ही हैकलने स्मृतिको कललाणुओंकी मान्य और अत्यन्त आवश्यक वृत्ति होनेकी कल्पना कर ली; परंतु प्रश्न तो यह है कि कललाणुओंमें वह गुण अथवा वृत्ति कहांसे आई? उन अणुओंके उपदान मौलिकोंमें तो उसका अभाव है। यह हैकलकी **चौदहवीं कल्पना** है।

अंतः संस्कारोंकी शृङ्खला वा भाव योजना

यह (शृंखला) प्रारंभमें अचेतन रहती है, और **प्रवृत्ति** (Instinct) कहलाती है; फिर क्रमशः उन्नत जीवोंमें चेतन होकर बुद्धि कहलाती है, और जिस प्रकार शुद्ध बुद्धिकी **विवेचना**से यह योजना व्यवस्थित होती जाती है, उसी हिसाबसे अंतःकरण की वृत्ति पूर्णताको पहुंचती जाती है। स्वप्नमें यह विवेचना नहीं रहती।

नोट—स्वप्नमें यह विवेचना क्यों नहीं रहती? आत्मवादी तो इसका समाधान यह करते हैं कि आत्मा शरीर और इन्द्रियों को आराम देनेकी दृष्टिसे उनसे काम लेना बंद कर देता है, इस

लिये स्वप्न और सुषुप्त अवस्था प्राप्त हुआ करती हैं। अनात्मवादी इसका समाधान क्या कर सकते हैं? हैकल इस विषयमें चुप है। कदाचित् उसका ध्यान इस ओर न गया होगा, अन्यथा इसे भी वह मनोरसकी अत्यन्त आवश्यक और विशेष वृत्ति बतला देता।

भाषा

वाणीकी योजना भी न्यूनाधिक क्रमसे जीवोंमें पाई जाती है। यह नहीं है कि एक मात्र मनुष्य को ही प्राप्त हो। यह पूर्ण रूपसे सिद्ध होगया है कि जितनी समृद्ध भाषायें हैं, सबकी सब सीधी सादी कुछेक आदिम भाषाओंसे धीरे धीरे उन्नति करते हुये बनी हैं।

नोट—अच्छा तो वह आदिम भाषा या भाषायें कहांसे आईं? यह प्रश्न है जहां जड़वादियोंकी गाड़ी अटकती है। प्लेटोने भाषा को नित्य बतलाया है। प्रो० मैक्समूलर भी इसकी पुष्टि करते है। महाभाष्यकार महामुनि पतञ्जलि और पूर्वमीमांसाकार जैमिनि मुनिको भी भाषाकी नित्यता स्वीकृत है। अतः मानना पड़ेगा कि आदिम भाषा नित्य है, और अन्य भाषायें उसका रूपान्तर हैं, अर्थात् उसीके लौट फेरसे बनी हैं।

अन्तःकरणके व्यापार

अंतःकरणके व्यापारोंके द्वारा, जो उद्वेग कहलाते हैं, मस्तिष्कके व्यापारों और शरीरके अन्य व्यापारों (हृदयकी धड़कनआदि) इन्द्रियों के क्षोभ और पेशियोंकी गतिके बीचका सम्बन्ध अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। समस्त उद्वेग इन्द्रियसंवेदन और गति इन्हीं दो मूल व्यापारोंके योगसे प्रतिक्रिया और अन्तःसंस्कारोंद्वारा बने

हैं। राग और द्वेषका अनुभव इन्द्रिय संवेदनके अंतर्गत और उनकी प्राप्ति और अप्राप्तिका उद्योग गतिके अंतर्भूत है। आकर्षण और विसर्जन इन्हीं दोनों क्रियाओंके द्वारा संकल्पकी सृष्टि होती है, जो व्यक्तिका प्रधान लक्षण है। मनोवेग भी उद्वेग का विस्तार मात्र है।

नोट—"रागद्वेषका अनुभव संवेदनाके अंतर्गत और उनके अनुकूल उद्देश्य करना यह गति की सीमामें है, और यह संवेदन और गति कललरस का धर्म है"। इसका तात्पर्य्य यह है कि हैकल रागद्वेष को प्राकृतिक अणुओंके अन्तर्गत मानता है, जैसाकि ग्रीस का एक प्राचीन जड़ाद्वैतवादी दार्शनिक "इम्पीडोक्लस" मानता था। अब जोजेफ मैकेब को बतलाना चाहिये कि क्या समझकर उसने यह दावा किया था कि हैकल अणुओंमें इच्छाद्वेष नहीं मानता था। (Religion of Sir Oliver Lodge by J. Mecobe. P. 91).

परन्तु हमारा आक्षेप तो यह है कि जब कललरसके उपादान मौलिकोंमें इच्छाद्वेष नहीं है, तो उनके कार्य्य कललरसादिमें भी कहां से आसकते हैं। रागद्वेष यान्त्रिक कर्म नहीं हैं, किन्तु सुबोध प्राणीके भीतर विचारका परिणाम हैं। और इस विचारके लिये चेतनाका होना अनिवार्य है। तो जबतक परीक्षा करके यह न दिखला दिया जावे कि अमुक मौलिक अथवा कतिपय मौलिकोंके संघातमें सज्ञान और विचारकी योग्यता है, उस समयतक रागद्वेषोंको कललरस अथवा उसके भी कार्य्यरूप किसी वस्तुमें होनेका दावा,

दावा मात्र है। यह हैकल की पन्द्रहवीं कल्पना है।

संकल्प

" संकल्प, मनोरसका एक व्यापकगुण है"। जिन जिन जीवोंमें प्रतिक्रियाका त्रिधात्मक करण (मनोघटक) होता है उन्हींमें संकल्प नामक व्यापार देखाजाता है। क्षुद्रजीवों में यह संकल्प अचेतन रूपमें रहता है। जिन जीवोंमें चेतना होती है अर्थात् इन्द्रियोंकी क्रियाओंका प्रतिबिम्ब अन्तःकरणमें पड़ता है उन्हींमें संकल्प उस कोटिका देखा जाता है, जिसमें स्वतन्त्रताका आभास जान पड़ता है।

नोट आकर्षण और विसर्जनके द्वारा संकल्पकी उत्पत्ति हैकल के मतानुसार होती है। परन्तु वह संकल्पको मनोरसका एक व्यापक गुण भी बतलाता है। उसके शब्द (हैकलकी पुस्तक के अङ्गरेजी अनुवादके) ये हैं :—

"It is a Universal property of living psychoplasm" जब संकल्प मनोरसका व्यापकगुण है तो "गुण गुणी से पृथक् नहीं होता" इस सिद्धान्तके अनुसार जहां भी मनोरस हो, वहां उसमें संकल्प (उसका व्यापकगुण) भी होना चाहिये। और मनोरससे शून्य तो क्षुद्र एकाणु जंतु भी नहीं, इसलिये संकल्प की सत्ता उसमें भी होनी चाहिये। इस कठिनाईसे बचनेके लिये हैकलने दूसरा पैन्तरा बदला। उसने कहा कि क्षुद्र जन्तुओंमें संकल्प अचेतन रूपमें रहता है! प्रश्न यह है कि अचेतन रूपमें क्यों रहता है? जिस संकल्पको मनोरसका व्यापक गुण बतलाया जाता है, वह संकल्प चेतन है या अचेतन? यदि कहो कि

अचेतन, तो उन्नत जीवोंमें एक तीसरे कल्पित मनो घटकके उत्पन्न होनेसे वह चेतन कैसे होसकता है? मनोघट भी तो अचेतन ही है, जब यहां सभी अवयवों में चेतनाका अभाव है, तो अवयवी में चेतनाका भाव कहां से आसक्ता है? यदि कहो कि (वह व्यापकगुण रूप संकल्प) चेतन है, तो फिर क्षुद्रजन्तुओं में अचेतन रूपमें कैसे रह सकता है?

इस प्रकार के तर्कके सन्मुख न ठहरनेवाली कल्पनाओं से एकाणुवादकी स्थापना नहीं होसकती। कललरस अथवा मनोरस जडप्रकृतिका कार्य्य न हुआ अपितु वह एक "भानमती का पिटारा" है कि जिसमें से सब कुछ (जड हो या चेतन) आवश्यकतानुसार निकल सकता है। अतः संकल्प न मनोरसका व्यापक गुण है और न आकर्षण और विसर्जनसे पैदा होता है, किन्तु जीवात्मा की सज्ञान और स्वतन्त्रतापूर्ण क्रिया है, जिस को जीवात्मा विचारपूर्वक जहां चाहता है, काममें लाता और लासकता है। जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार किये विना संकल्प का प्रश्न एकाणुवादसे हल नहीं होसकता। संकल्पके मनोरस के व्यापक गुण होनेकी **सोलहवीं कल्पना** है, जो हैकल को अनात्मवादी होनेसे करनी पड़ी।

मनोव्यापार

मनुष्यादि समुन्नत जीवोंके मनोव्यापार एक मानसिक यन्त्र या करण द्वारा होते हैं। इस यंत्र के तीन मुख्यभाग हैं।

(१) **बाह्यकरण**—(इन्द्रियां) जिनसे संवेदन होता है।

(२) पेशियां—जिनसे गति होती है।

(३) संवेदनसूत्र—जो इन दोनोंके बीच मस्तिष्करूपी प्रधानकरणके द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं। मनोव्यापार के साधन, इस आन्तरिक यन्त्रकी उपमा, तारसे दीजाया करती है। संवेदनसूत्र तार हैं, इन्द्रियां छोटे स्टेशन हैं, मस्तिष्क सदर स्टेशन हैं, गतिवाहक सूत्र संकल्पके आदेशको सूत्रकेन्द्र या मस्तिष्क बहिर्मुखद्वारा पेशियोंतक पहुंचाते हैं, जिनके आकुंचन से अंगोंमें गति होती है। संवेदन वाहकसूत्र इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त संवेदनाको अन्तर्मुख गतिसे मस्तिष्कमें पहुंचाते हैं। मस्तिष्क या अन्तःकरणःरूपी मनोव्यापारकेन्द्र ग्रन्थिमय होता है। इन सूत्रग्रन्थियोंके घटक सजीव द्रव्यके सबसे समुन्नत अंग हैं। इनके द्वारा इन्द्रियों और पेशियोंके बीच व्यापारसम्बन्ध तो चलता ही है, इसके अतिरिक्त भावग्रहण, और विवेचन आदि अनेक मनोव्यापार होते हैं।

नोट—मनोव्यापारका उपर्युक्त विवरण जहांतक यान्त्रिक है निर्विवाद है। आत्मवादी और अनात्मवादी दोनों को एक जैसा स्वीकृत है। परन्तु उपर्युक्त तारघर और स्टेशन बिना स्टेशन मास्टरके ही वर्णित हुआ है। स्टेशनमास्टर का स्थान रिक्त है, जिसकी आज्ञासे यह समस्त यान्त्रिक कार्य होता है। हेकल उत्तर देसकता है कि संकल्पके आदेशसे ये सब काम होते हैं अतः यही स्टेशनमास्टर है। परन्तु संकल्पसे अपनी सत्ता की दृष्टिसे

स्वयंजड़ अथवा यंत्रवत् है। संकल्पकी डोरीके लिये हिलानेवाले की जरूरत है। यदि कहो कि संकल्प स्वयं अपनी डोरी हिलाता है, तो अबतकके सारे वर्णनमें यह बात नहीं बतलाई गई कि "अमुक काम करना चाहिये अमुक नहीं" यह ज्ञान कहांसे और किस प्रकारसे संकल्पमें आता है। मुख्य प्रश्न यही है जो पहले नोटोंमें भी बतलाया जाचुका है। इसका उत्तर हैकलके समस्त ग्रन्थके पढ़जानेसे भी नहीं मिलता।

चेतना

चेतना एक प्रकारकी अन्तर्दृष्टि है, वह दो प्रकार की होती है (१) अन्तर्मुख (२, बहिर्मुख। अन्तर्मुख चेतनाका क्षेत्र संकुचित होता है, उसमें हमारे इन्द्रियानुभव, संस्कार और संकल्प, प्रतिबिम्बित होते हैं। चेतनाका परिज्ञान हमें चेतनाके ही द्वारा हो सकता है। उसकी वैज्ञानिक परीक्षामें यही बड़ी भारी अड़चन है। परीक्षक भी वही परीक्ष्य भी वही। द्रष्टा अपना ही प्रतिबिम्ब अपनी अंतः प्रकृतिमें डालकर निरीक्षणमें प्रवृत्त होता है अतः हमें दूसरोंकी चेतनाका परीक्षात्मक बोध पूरा २ कभी नहीं होसकता। चेतना सम्बन्धी दो प्रकारके वाद हैं (१) "सर्वातिरिक्त" अथवा आत्माका शरीरसे भिन्न स्वतन्त्र सत्तावाला होना (२) "शरीरधर्मवाद" अथवा शरीरके मेलका परिणाम। जड़ाद्वैतवाद दूसरे वादका पोषक है। चेतनाका अधिष्ठान मस्तिष्कके भूरे रंगवाले मज्जापटलका एक विशेष भाग है।

नोट—चेतनाके उपर्युक्त विवरणों के साथ ही हैकलका दार्शनिक (जडाद्वैत) वाद, जहांतक उसका सम्बन्ध शरीरसे है,

समाप्त होता है। हैकल को जड़ाद्वैतवादका भारी भवन बनाने के बाद पता चला कि यह भवन निराधार है। इसकी बुनियाद कुछ नहीं, अपितु पृथिवीसे चार इंचकी ऊंचाई पर इस भवन की बुनियाद है जिससे यह ठहर नहीं सकता और इसका गिरना अनिवार्य्य है। इस सूत्रकी व्याख्या यह है कि चेतनाका विवरण देते हुए हैकलने दो बातें स्वीकार की हैं:—

(१) अपनेसे भिन्न प्राणियोंकी चेतनाका परीक्षात्मक बोध पूरा २ कभी नहीं होसकता। *

(२) अपनी चेतना के सम्बन्धमें वह (हैकल) कहता है कि चेतनाका परिज्ञान हमें चेतना के ही द्वारा होसकता है। यही उसकी वैज्ञानिक परीक्षामें बड़ी भारी अड़चन है †

जब न अन्योंकी चेतनाकी परीक्षा होसकती है और न अपनी चेतनाकी, तो फिर हमे चेतनाका परीक्षात्मक बोध हो ही नहीं सकता, यह स्वीकार करनेके बाद हैकलकी इस शिक्षाका

---

* (१) अंगरेजी भाषाके शब्द जो हैकल के जर्मन शब्दोंका अनुवाद हैं, ये हैं:—

"Thus we can never have a complete objective certainity of the consciousness of others.

† The only source of our knowledge of consciousness, is that faculty itself; that is the chief cause of the extra ordinary difficulty of subjecting it to scintific research. (Riddle of the Universe by Ernest Haeckel, p. 14 & 15.

कि आत्मा (चेतना) शरीर के मेलका परिणाम है, क्या मूल्य शेष रह जाता है ? आत्मवाद और अनात्म (जड़ाद्वैत) वादमें अंतर तो केवल इतना ही है कि प्रथमवाद आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है, जब कि द्वितीयवाद उसे प्राणियोंके शरीरके मेलका परिणाम बतलाता है । और इन दोनों वादोंके निर्णयका मूलाधार आत्मा (चेतना) का परीक्षात्मक बोध होना है । जड़ा-द्वैतवादका आचार्य्य (हैकल) स्वीकार करता है कि मनुष्यको (चेतनाका) बोध नहीं होसकता, तो बोध न होने पर भी (चेतना के सम्बन्ध में) किस प्रकार कोई सम्मति दी जासकती है ? ऐसी अवस्थामें हैकलका यह कहना कि आत्मा (चेतना) शरीरके मेलका परिणाम है, कल्पनामात्र है, और यह हैकलकी सत्तरहवीं कल्पना है ॥

चौथा अध्याय

पहिला परिच्छेद

आत्म सम्बन्धी विविध विषय ॥

एकाणुवाद

प्रो० हैकलने रोबर्ट मेयर (Robert Mayer) के आविष्कृत "प्रकृति स्थिति नियम" और लावाइज़ियर (Lovoisier) के अन्वेषित "शक्ति स्थिति नियम" को मिलाकर उसका नाम "द्रव्य नियम" रक्खा। यही "द्रव्य नियम" हैकलके मतानुसार समस्त जड और चेतन जगतका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। सांख्याचार्य्य कपिल मुनिने जगत् में दो सत्तायें देखीं थीं, पुरुष और प्रकृति। उनकी सम्मति में इन्हीं दो की सत्ता से समस्त जगत् बनता और काम करता है। इन दोनों सत्ताओं को महामुनि कपिल ने नित्य बतलाया था, सांख्य दर्शन के प्रचलित होने के बाद तीन प्रकार से तीन भागों मे होकर कपिल का दर्शन प्रचलित हुआ।

(१) पहले समुदाय-मे तो वे ही पुरुष हैं जो सांख्य के आदर्शानुसार पुरुष और प्रकृति दोनों को नित्य जानते और मानते रहे।

(२) दूसरे समुदाय में वे पुरुष हुए जिन्हों ने प्रकृति को

उपेक्षा करके केवल पुरुष की एक सत्ता को नित्य ठहराया और पुरुष ही को समस्त जगत्का अभिन्निमित्तोपादन कारण बतलाया, मधुसूदन स्वामी, गौडपादाचार्य्य और शंकराचार्य्य प्रभृति तथा कतिपय पश्चिमी दार्शनिक इसी पक्षके पोषक थे।

(३) तीसरे समुदाय में वह पुरुष हुये जिन्होंने पुरुषको अवहेलना करके केवल प्रकृति ही को नित्य ठहराया और उसी का समस्त चेतन और जड़ जगत्का अभिन्निमित्तोपादान कारण माना। प्रो० हैकल इसी तीसरे समुदाय के अनुयायी हैं, प्रोफेसर हैकल का यही एक द्रव्यवाद है जिसके वह प्रचारक थे, हैकल ने इस एक द्रव्य (प्रकृति) को नित्य माना है और द्रव्य और शक्ति दोनों को उसका गुण ठहराकर बतलाया है कि यह द्रव्य अनादि कालसे काम कर रहा है जीवनसे मृत्यु, विकाससे ह्रास उसमें समय २ पर हुये परिणामों के फल हैं।

अणुवाद की समीक्षा

इसपर थोड़ा विचार करना होगा। हैकल का एक द्रव्य, प्रकृति और शक्ति दोनों का संघात है, देखना यह है कि प्रकृति और शक्ति की सीमायें क्या हैं, और उनकी स्थितियों के तात्पर्य्य क्या हैं।

प्रकृति स्थिति

पहले "प्रकृति स्थिति" ही को लीजिये। प्रकृति स्थिति का तात्पर्य्य यह है कि भौतिक, रासायनिक अथवा यान्त्रिक किसी भी व्यवहार में प्रकृति के अणुतोल के हिसाब से जिस मात्रा में काम में आते हैं वह मात्रा (तोल के

हिसाबसे) ज्यों की त्यों बनी रहती है, न्यूनाधिक नहीं होती, रूप परिवर्तन अवश्य होजाया करता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे यही शक्ति स्थितिका तात्पर्य्य है। प्राकृतिक अणुओंके सम्बन्धमें जो नई २ खोजें हुई हैं, उनसे प्रकट होता है कि परमाणु प्रकृति का सब से अधिक सूक्ष्मांश नहीं है, जैसा कि अबतक वैज्ञानिक समझते थे। वह विद्युतकणों का समुदाय हैं। उनके भीतर एक केन्द्र होता है और विद्युत्कण उसके चारों ओर उसी प्रकार नियम पूर्वक परिभ्रमण करते हैं, जिस प्रकार पृथिवी आदि ग्रह सूर्य्य के चारों ओर घूमते हैं। सर अलिवर लाजका कथन है कि सूर्य्य मण्डलका अत्यन्त सूक्ष्मरूप परमाणु हैं, उनके भीतर समस्त कार्य्य उसी प्रकार होते हैं, जिस प्रकार सूर्य्यमण्डलके अन्तर्गत।* नवीन खोजोंमें प्रकृति दो भागोंमें विभक्त हुई हैः— व्यक्त, अव्यक्त। व्यक्त प्रकृतिका सबसे अधिक सूक्ष्म अंश विद्युत्कण हैं † परन्तु प्रोफैसर वौटमले विद्युत्कणको भी आकाश का परिणाम समझते हैं। ‡ परन्तु इस आकाश के सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंको बहुत थोडा ज्ञान है, इस बातको खुले तौर से वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। § कल तक जो द्रव्य मौलिक

*Science and Religion by Seven men of Science. P. 18.

† Do. P. 76.

‡ Do. P. 63.

§ Evolution of Matter. by Gustove Le Bon

समझे जाते थे, और जिनकी संख्या लगभग ८० के पहुंच चुकी थी, अब वह सब विद्युत्कण का समुदाय समझे जाने लगे हैं। वैज्ञानिकोंका कथन है कि हाइड्रोजनके एक परमाणुका एक हजारवां भाग विद्युत्कणकी मात्रा समझी जाती है। * इस प्रकार व्यक्त प्रकृति, जिसको "कपिल" ने (व्यक्त) "विकृति" नाम दिया था, प्रचलित विज्ञानमें, कतिपय श्रेणियोंमें विभक्त हैं, सबसे सूक्ष्म भाग आकाश (ईथर) है, आकाश से विद्युत्कण, विद्युत्कणसे परमाणु, परमाणुसे अणु और अणुओं से पञ्च भूतों की रचना होती है। अभी प्रचलित विज्ञानने प्रकृतिके सम्बन्ध में उतना ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। जितनेका वर्णन कपिल सहस्रों वर्ष पूर्व कर चुका है। वह अव्यक्त प्रकृतिको अभी कुछ नहीं जानते, उन्हें पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय, मन, अहंकार और महत्तत्व का ज्ञान प्राप्त करना शेष है।

गति शक्ति स्थिति

प्रकृति की बात हुई, अब गति शक्तिपर विचार आवश्यक है :—

प्रकाश, ताप, ध्वनि, भ्रमण, कम्पन, लचदार आकर्षण, ज्याकर्षण पार्थक्य, विद्युत्, प्रवाह, रासायनिक स्नेहाकर्षण, शक्तियां, गति शक्तिमें समाविष्ट समझीजाती है † वैज्ञानिकों में से एकने यह प्रश्न उठाया था कि क्या जीवन गतिशक्ति

---

* Beyond the Atom by Proof Cox.

† Life & the after by Sir Oliver Lorge p. 10

के अन्तर्गत है। लाजका उत्तर है कि कदापि नहीं उनके शब्द ये है "I should give the answer decidedly No'* अभी कुछ पूर्व जबतक गतिशक्तिमें ताप सम्मिलित नहीं समझा जाता था "गति शक्ति" की सीमा तापशून्य ही थी। संभव है इसी तापकी भांति किसी और शक्तिका ज्ञान वैज्ञानिकोंको हो जावे अथवा क्लिष्ट कल्पना ही के तौरपर कल्पना कर लीजिये कि जीवन भी गतिशक्तिके अंतर्गत समझा जाने लगे, तो ऐसी अवस्थामें गतिशक्तिका ज्ञान भी प्रकृतिकी भांति अभी तक अधूरा ही है, ऐसी अवस्थामें हैकलका इन दोनो शक्तियोंको पूर्ण समझ कर उन्हें मिलाकर एक द्रव्यवादका नया पंथ खड़ा करना और उसे नित्य ठहराना वैज्ञानिक दृष्टिसे कहां तक उचित और युक्ति-युक्त समझा जासकता है, इसका अनुमान इसी एक उदाहरण से किया जासकता है कि प्रोफेसर बोटमर्लीने उसे (हैकलको) असामयिक (out of date) कहा है। †

प्रकृति और शक्तिसे आत्मा पृथक है।

गतिशक्तिके संबंधमें कुछेक पुरुष यह भूल करते है कि यह शक्ति, अधिष्ठातृत्वनिर्देशक शक्ति और नियन्त्रणशक्तियोंके होनेकी संभावनाकी बोधक है। सर आलिवरलाजका कथन

---

* Life & the After by Sir Oliver Lodge p. 11

†Science & Relligion by Seven men of Soeince p. 26.

है * कि गति शक्तिका इस विषयसे कुछ भी संबंध नहीं है। गतिशक्तिका सम्बन्ध केवल मात्रासे है। "जीवन" प्रकृति और गतिशक्तिकी सीमामें नहीं है, और इसीलिये विज्ञानको उसका कुछ ज्ञान भी नहीं है † ।

इसी प्रश्नके उत्तरमें कि जीवनका ज्ञान विज्ञानको है या नहीं, सर आलिवरलाज कहते हैं कि "विज्ञानका उत्तर वही है जो ड्य. बोइस, रेमौंड (Du. Bois Raymoud) ने दिया था कि "**हम कुछ नहीं जानते**" (Ignoramous) परंतु रेमौंड का अगला वाक्य कि "**हम कभी जानेंगे भी नहीं**" (Ignorabimus) स्वीकार करने योग्य नहीं है ‡ यह बात स्वयं हैकल को भी स्वीकार है कि जीवन विज्ञानका विषय नहीं है, फिर भी उसने विज्ञान ही के नामसे उसके कृतिजन्य होनेके सिद्ध करने का साहस किया है। उसके शब्द ये हैं:—"The freedom of the will is not an object for critical Scientific

---

* Life & Matter by Sir Oliver Lodge p.11&12. लाज महोदयके शब्द ये हैं:—"Really it has nothing to say on these topics, it relates to amount alone."

† प्रकृति और जीवन के सम्बन्धमें एक मनोरंजक प्रश्नोत्तर नीचे दिया जाता है :—

"What is matter? No mind. What is mind? No matter."

‡ Life and matter by Sir O. Lodge p. 12.

inquiry at all * अर्थात् इच्छाशक्ति (जीव) की स्वतंत्रता, कदापि विवेचनात्मक वैज्ञानिक परीक्षाका विषय नहीं है" जब किसी विषयके लिये कहा जाता है कि विज्ञानकी सीमामें है या नहीं, तो स्वाभाविक रीतिसे यह प्रश्न उठता है कि विज्ञानकी सीमा क्या है ?

विज्ञानकी सीमा

सर आलिवर इस प्रश्नका उत्तर यह देते हैं कि "दृश्य वस्तुओंका प्रकटीकरण ही विज्ञानका आधार है, परन्तु वह (प्रकटीकरण) प्रकृति और गतिशक्तिकी सीमामें रहते हुये करना चाहिये ।" और यह भी कि "विज्ञानका काम केवल यह है कि जो कुछ हुआ है उसे बतलाये। निषेध करना उसका काम नहीं है" †

डिक्शनरियोंमें विज्ञानको व्यवस्थित ज्ञान (Systematized knowledge) कहा जाता है। हक्सलेके मतानुसार कृतपरिचय और व्यवस्थित विवेकका नाम (Trained & Organized common sense) है । प्रोफेसर जेम्ज़ आर्थर की सम्मति है कि विज्ञानका मुख्योद्देश्य यह है कि "ज्ञातव्य-जगत्का संक्षिप्त विवरण देवे । जगत्में घटित घटनाओंसे जानकारी प्राप्त करके अन्वेषक उन्हें क्रमबद्ध करता है, और उनमें सामान्यनिर्देशक (Common denominator) का पता

* Riddle of the Universe by Earnest Haeckle p. 13.

† Life and matter by Sir. O. Lodge p. 31-32.

लग जाता है और फिर उन घटनाओंके घटित होनेकी अव-स्थाओंपर विचार करके उन्हें "यथासंभव सुगम रीतिसे प्रकट करके उनसे सामान्य नियमोंकी स्थापना करता है और अंतको उन्हींका नाम प्राकृतिक नियम रखता है।* इस सबका परिणाम "बौटमली" की सम्मति अनुसार यह है कि विज्ञान निर्देशक नियमोंका नाम है। विज्ञान हमको "**कैसे**" का उत्तर देता है "**क्यों**" का नहीं, अर्थात् जगतकी किसी घटनाके संबंधमें यह ज्ञान देगा कि किस प्रकार यह घटित हुई। यह क्यों घटित हुई, इसका उत्तर देना विज्ञानकी सीम से बाहर है। **क्यों** का उत्तर देना "मज़हब" का काम है। **लाज, हक्सले,** और **बौटमली** सबकी सम्मतियोंको एकत्र करनेसे विज्ञानकी सीमा यह निर्धा-रित होती है कि "वह अपनेको प्रकृति और गतिशक्तिकी सीमा में रखते हुये विश्वमें घटित घटनाओंको बतला देवे कि किस नियमसे और किस प्रकारसे घटित हुई।"

हैकलका एक द्रव्यवाद विज्ञानकी सीमासे बाहर है

अब विज्ञानकी इसी निश्चित सीमाके भीतर देखना चाहिये कि हैकलका द्रव्य-वाद कौनसा स्थान रखता है अथवा सर्वथा इस सीमाके बाहर है। हैकलने अपने वादके प्रकाशमें कुछेक सिद्धांत स्थिर किये हैं वे ये हैं:—† (१) यह जगत

* Sceince and Religion by Seven Men of Sceince p. 60.

† Riddle of Universe by Ernest Haeckle, p. 11

नित्य और असीम है। (२) जगत्का द्रव्य (यही हैकलका एक द्रव्य) अपने दो गुणों प्रकृति और गतिशक्तिके साथ नित्य है और अनादिकालसे गतिमें हैं। (३) यह गति अखंडशः काम के असीम कालसे काम कर रही है। सामयिक परिवर्तन (जीवन, मरण, विकास ह्रास) इसके द्वारा हुआ करते हैं। (४) समस्त प्राणी अप्राणी जो विश्वमें फैले हुये हैं, सभी एकद्रव्यवादसे शासित और उसीके आधीन हैं।

(५) हमारा सूर्य्य असंख्य नष्ट होने वाले पिण्डोंमें से एक है और हमारी पृथिवी भी ऐसे ही छोटे छोटे पिंडों (नष्ट होनेवालों) में से है, जो सूर्य्यके चारों ओर परिभ्रमण करते हैं। (६) हमारी पृथिवी चिरकाल तक ठंढी होती रहती है और तब उस पर जलका प्रादुर्भाव हुआ। (७) एक प्रकारके मूल जीवसे क्रमशः असंख्य योनियोंके उत्पन्न होनेमें करोड़ों वर्ष लगे हैं। (८) इस जीवोत्पत्ति परंपराके पिछले खंडमें जितने जीव उत्पन्न हुये, रीढवाले प्राणी गुणोत्कर्षद्वारा सबसे बढ़ गये। (९) इन रीढ़वाले प्राणियोंकी सबसे प्रधान शाखा दूध पिलाने वाले जीव जलचरों और सरीसृपोंसे उत्पन्न हुये। (१०) इन दूध पिलानेवाले जीवोंमें सबसे उन्नत और पूर्णता प्राप्त किंपुरुष (Order of primates), जो लगभग ३० लाख वर्षके हुये होंगे, कुछ जरायुज जंतुओंसे उत्पन्न हुये। (११) इस किंपुरुष शाखाका सबसे नया और पूर्ण कल्ला मनुष्य है जो कई लाख वर्ष हुये कुछ बनमानसोंसे निकला था। हैकलने इन सिद्ध-

मोंका वर्णन करते हुये रेमौंडके जगत् सम्बन्धी सात प्रश्नों* में से ६ का हल अपने एकद्रव्यवादसे बतलाया है। वे सात प्रश्न ये थे :—(१) द्रव्य और शक्तिका वास्तविक तत्त्व। (२) गति का मूल कारण। (३) जीवनका मूल कारण। (४) सृष्टि का इस कौशलके साथ क्रम विधान। (५) संवेदना और चेतनाका मूल कारण। (६) विचार और इससे सम्बद्ध वाणी की शक्ति। (७) इच्छाका स्वातंत्र्य। एकद्रव्यवाद के उपर्युक्त ७ प्रश्नोंमें से ६ का हल उस (हैकल) ने अपने एकद्रव्यसे बतलाते हुये ईश्वर और जीवकी स्वतंत्र सत्तासे इन्कार किया है और चेतना की उत्पत्ति जड़ प्रकृतिसे संभव समझी।

अब देखना यह है कि हैकलका वाद कहां तक विज्ञानकी सीमा में है। यह स्पष्ट है कि किन्हीं भी वस्तुओंका नित्यत्व विज्ञानकी परीक्षाका विषय नहीं होसकता, इसीलिये उसके प्रारंभिक नियम विज्ञानकी सीमा से बाहर हैं। अन्तके नियम विकासवाद के अन्तर्गत हैं। विकासवाद अबतक केवल 'वाद' है और रहेगा भी वाद ही। वैज्ञानिक नियम नहीं बनसकता, क्योंकि करोड़ों

---

* इमिल ड्यू, बाइस, रेमौंड (Emil du Bois Raymond ने १८९० ई० में बरलिन में एक व्याख्यान दिया था और उसी में इन सात प्रश्नों को उठाया था। इनमें से उसने १, २ और ५ को हल करने के अयोग्य ठहराया था, शेष में से ३, ४ और ६ को समझा था कि इनका हल होना सम्भव है पर अत्यन्त कठिनता के साथ। ७ वें और अन्तिम प्रश्नको भी हल के अयोग्य ठहराया था।

वर्ष पहलेकी बातका केवल अनुमान ही किया जासकता है। उनकी विवेचनात्मक वैज्ञानिक परीक्षा असंभव है। हैकलने अपने प्रारम्भिक नियमोंके ही आधार पर ईश्वर और जीवकी स्वतन्त्रतासे इन्कार किया है। प्रारम्भिक नियम विज्ञानकी सीमासे बाहर हैं, इसलिये ईश्वर और जीवकी सत्ताका निषेधभी विज्ञानका न विषय होसकता है, क्योंकि प्रकृति और गतिशक्ति दोनोंकी सीमासे बाहर है, और न उसकी सीमामें आसकता है, क्योंकि वस्तुओं का निषेध भी विज्ञानका विषय नहीं होसकता है, जैसेकि पहले कहा जाचुका है। अतः यह स्पष्ट है कि हैकलका एकद्रव्यवाद और उसीके सिलसिलेमें ईश्वर और जीवकी सत्ताका निषेध दोनों विज्ञान की सीमासे बाहर हैं। इनको हम हैकलके केवल दार्शनिक विचार कह सकते हैं।

दर्शन और विज्ञान में क्या अन्तर है

दर्शन और विज्ञानमें अन्तर क्या है? * "किसी घटनाको स्वीकार करनेसे पूर्व विभागक्रमपूर्वक एक परीक्षाके बाद दूसरी परीक्षा करता हुआ उसकी दृढ़ताकी जांच और पुनः जांच करता है, और इस प्रकार परीक्षित और निश्चित घटनाओंको ही स्वीकार करता है। परन्तु "दर्शन" की अवस्था इससे भिन्न है। दर्शन परीक्षित घटनाओं की पहुंचसे बाहर झपट लगाता है और इस प्रकार झपट लगाकर की हुई कल्पनाओंके ठीक सिद्ध करनेके लिये पीछे से घटनाओंकी खोज करता है" * अन्तरपर दृष्टि डालते हुए

* Materialism by Durab Dinsha Kanga Mg. P. 24.

कोई भी हैकलके उपर्युक्तवाद और कल्पनाओंको वैज्ञानिक नहीं कह सकता, हां वे दार्शनिक अवश्य कही जासकती हैं।

दूसरा परिच्छेद

कर्त्ता के गुण कार्य्य में होते हैं

एक विषय और भी ध्यान देने योग्य है। और वह यह है कि जब हम कहते हैं कि कलउरस में उन गुणोंके होनेकी कल्पना नहीं की जा सकती, जो उसके उपादानमें नहीं हैं, तो इसपर कहा जासकता है कि वस्तुयें सामूहिक रूपसे ऐसे गुण रखती हैं, जो उनके अणुओंमें नहीं हैं, और इसके समर्थनमें घडी और सूर्य्यके उदाहरण दिये जाते हैं। हम इन उदाहरणों पर एक दृष्टि डालना चाहते हैं।

घड़ी का उदाहरण

कहाजाता है कि घड़ीमें चलने और समय बतलानेकी योग्यता सामूहिक रूपही में है। उसके निर्माता अवयव इन गुणों से शून्य हैं। प्रथम तो घड़ीके समस्त पुरजोंमें, जो कंपनशील अणुओंसे बने हैं, कंपन (या गति) रहती है, परन्तु असली बात जिसके विपक्षमें यह उदाहरण दिया जाता है, यह है कि घड़ीके पुरजे भी चेतनाशून्य (जड़-ज्ञान रहित) हैं, और इसीलिये उनसे बनी हुई (सामूहिक रूपमें) घड़ी भी चेतनाशून्य और ज्ञान रहित है। एक सज्ञान पुरुष जानता है कि इस समय घड़ीमें क्या बजा है, परन्तु इस (बजने) का ज्ञान न घड़ीके पुरजोंको है, न सामूहिक रूपसे घड़ीको। घड़ी स्वयं

नहीं जानती कि कै बजे हैं। इसलिये यह उदाहरण विषम है।
अच्छा दूसरा उदाहरण लीजिये।

सूर्य का उदाहरण

कहाजाता है कि सूर्य्यके उपादान तो सूक्ष्म हैं, परन्तु सूर्य्य बृहदाकार वाला है, और उसके इस बृहदाकार वाले होने ही का यह परिणाम है कि वह स्वयं प्रकाशक है, और उसमें सदैव प्रकाश बना रहता है। किस प्रकार प्रकाश उसमें बना रहता है, इसके सम्बन्ध में वादी कहता है कि उसके आकर्षक आकुञ्चक और भूकंपिक अभिगमनसे ताप इतनी मात्रा मे उत्पन्न होजाता और होता रहता है, कि जो चिरकाल तक स्थित रहता है और उसके प्रकाशका हेतु होजाता है। यह उदाहरण भी विषम है। प्रथम तो सूर्य्य जिन अणुओसे बना है, उनमें हैड्रोजनके अणु बहुतायतसे होते हैं। उसके सिवा सूर्य्यमें यदि सामूहिक रीतिसे प्रकाश चिरकाल तक रहता है, तो कौन कह सकता है कि हैड्रोजनके अणु कभी तापशून्य होजाते हैं। परन्तु यदि यहभी मान लिया जावे कि निर्माण अणुओमें जितनी प्रकाश की मात्रा है, सामूहिक रूपसे आकर्षणादिक उत्पन्न होजानेके कारण सूर्य्यका प्रकाश उस मात्रासे बहुत कुछ बढ़जाता है। तो इससे भी उस पक्षका समर्थन नहीं हुआ कि जड़से चेतना उत्पन्न होसकती है। ताप निर्माण अणुओंमें है, वही ताप सूर्य्यमें बढ़ी हुई मात्रामें होजाता है। जिस श्रेणीकी वस्तु (ताप, निर्माण अणुओंमें रहती है, उसी श्रेणीकी वस्तु (ताप) सूर्य्यमें। उदाहरण

तो ऐसा खोजना चाहिये कि जड़ उपादानसे चेतनाकी उत्पत्ति जिससे प्रमाणित होसके, परन्तु ऐसा उदाहरण मिल नहीं सकता।

तीसरा परिच्छेद

मस्तिष्क और आत्मा

मस्तिष्क और चित्तके सम्बन्ध में यौरुपके मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकोंमें मतभेद है। एक दल कहता है कि मस्तिष्क और चित्तमें सत्ताभेद नहीं, ये दोनों पर्य्याय वाचक हैं, दूसरा दल कहता है मस्तिष्क जड़ और "माइण्ड" (आत्मा) का यन्त्र मात्र है। इस दलके अनुयायी "माइण्ड" को जीवात्मा कहते हैं। तीसरा विचार यह है कि मस्तिष्क और चित्त दोनोंसे पृथक् आत्मा है और ये दोनों उसके यन्त्रमात्र हैं। इसी जगह हम यह बता देना चाहते हैं कि भारतीय दर्शन और उपनिषद् इस विषय (शरीरके आन्तरिक व्यापारके सम्बन्ध) में क्या शिक्षा देते हैं, जिससे विषयके तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त होनेमें सुगमता हो।

आंतरिक व्यापार और दर्शन और उपनिषद्।

जीवात्मा नित्य चेतन और स्वतन्त्र सत्तावान् है शरीर उसे अपने गुणों ज्ञान और प्रयत्नको क्रियात्मक रूप देनेके लिये मिलता है।

शरीर के तीन भेद

शरीरके ३ भेद हैं (१) स्थूल शरीर जिससे हम सब बाह्य क्रियायें किया करते हैं, और जिसमें

चक्षुआदि १० इन्द्रियोंके गोलक अथवा करण हैं, (२) सूक्ष्म शरीर-यह अदृश्य शरीर प्रकृतिके उन अंशोंसे बनता है, जो स्थूलभूतोंके प्रादुर्भाव होनेसे पहले सत् रज और तमस्‌की साम्यावस्थारूप प्रकृतिमें विकार आनेसे उत्पन्न होते हैं। (देखो पुस्तक में कपिलका मत) सूक्ष्म शरीरके १७ अवयव हैं,५ ज्ञान इन्द्रियों की आन्तरिक शक्ति + ५ प्राण + ५ तन्मात्रा सूक्ष्मभूत + १मन + १ बुद्धि। ये १७ द्रव्य मिलकर सूक्ष्म शरीरको निर्माण करते हैं। समस्त जगत् सम्बन्धी आंतरिक क्रियाएं इसी शरीरके अवयवों के द्वारा हुआ करती हैं। (३) कारण-शरीर यह कारणरूप प्रकृति का ही वह अंश होता है, जो विकृत नहीं होता। यह शरीर ईश्वरोपासना का साधन है, इसके विकासके परिणामही से मनुष्य योगी होता और समाधिस्थ होनेकी योग्यता प्राप्त करता है।

सूक्ष्म शरीर की कार्य्य प्रणाली

आत्माकी प्रेरणा बुद्धिके माध्यमसे मनको होती है, जो समस्तज्ञान और कर्मइन्द्रियोंका अधिष्ठाता है, मनकी प्रेरणासे समस्त इन्द्रियें अपना २ कार्य्य करती हैं। सूक्ष्म शरीरके १० करण—५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ उनके विषय सूक्ष्मभूत मस्तिष्कमें रहते हैं। ५ प्राण समस्त शरीरमें फैले हुए रहते हैं। श्वासोच्छ्‌वास, भोजनका मेदेमें पहुंचाना, रक्तप्रवाह आदि उनके कार्य्य हैं, जो निरन्तर होते रहते हैं। मन, चित्त और बुद्धि, मस्तिष्कमें और आत्मा शरीरके केन्द्र हृदयाकाशमें रहता है। मृत्यु केवल स्थूल शरीरकी होती है, सूक्ष्म और कारण शरीर आत्माके साथ मृत शरीरसे निकल कर "यथा

कर्म यथाश्रुतम् " दूसरी योनियोंमें आया जाया करते हैं, और आत्माके साथ बराबर उस समयतक रहते हैं, जब तक जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता। मुक्ति प्राप्त करनेपर इनका और जीवका वियोग होता है और उस समय ये शरीर वापिस जाकर प्रकृतिके उन्हीं अंशोंमें मिल जाते हैं, जहांसे आए थे।

इन्द्रियों के व्यापार

जरमनीके वैज्ञानिक "फ्लेशजिक" (Paul Fiechsig of Leipzig) ने बतलाया कि मस्तिष्कके भूरे मज्जाक्षेत्र (grey matter or cortex of the brain) इन्द्रियानुभवके चार अधिष्ठान या भीतरी गोलक हैं, जो इन्द्रियसंवेदनाको ग्रहण करते हैं और उसने उनका इस प्रकार विवरण दिया कि:—

(१) **स्पर्शज्ञान** का गोलक मस्तिष्कके खड़े लोथड़ेमें। The sphere of touch in the vetical lobe.

(२) **घ्राणका** गोलक सामने के लोथड़ेमें (The Sphere of Smell in the frontal lobe.)

(३) **दृष्टिका** गोलक पिछले लोथड़ेमें (The Sphere of Sight in the occipital lobe.)

(४) **श्रवणका** गोलक कनपटीके लोथड़ेमें (The Sphere of hearing in the temporal lobe.)

और यहभी बतलाया कि इन चारों भीतरी इन्द्रिय गोलकोंके बीचमें विचारके गोलक (Thought centers or centres of association, the real organs of mental life) हैं,

जिनके द्वारा भावोंकी योजना और विचार आदि जटिल मानसिक व्यापार होते हैं। इसपर जड़ाद्वैतवादियों की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा, और इन महानुभावोंने समझलिया कि अब जीवात्मा का काम इनसे चलगया और उसकी स्वतन्त्रसत्ता न होनेका एक पुष्ट प्रमाण इनके हाथ आगया, परन्तु उनको यह ज्ञान न था कि ये चार इन्द्रियोंके गोलक तो सूक्ष्म शरीर ही के अवयव हैं, जिन्हें सूक्ष्म इन्द्रिय कहते हैं और ये चार विचारके गोलक अन्त:करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त अहंकार) हैं और ये सब प्राकृतिक और चेतनाशून्य हैं और आत्माके औज़ारमात्र हैं।

चौथा परिच्छेद

वैज्ञानिक भी जीव के प्राकृतिक आधार होने के समर्थक नहीं

यह बात आत्मवादियोंके लिये और भी सन्तोष की है कि अब सब वैज्ञानिक भी जीवात्मा के प्राकृतिक आधारवादको स्वीकार नहीं करते। उनमें से अनेक ऐसे हैं जो स्पष्ट रीतिसे जीवात्मा और परमात्माकी स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं और वैज्ञानिक होनेकी स्थिति ही में ऐसा माननेके लिये अपने को विवश समझते हैं। कुछेक के मत यहां दिखलाये जाते हैं:—

न्यूटन की सम्मति

इंगलेण्डका प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन अपने जगत् प्रसिद्ध पुस्तक "प्रिन्सिपिया" (Principia) में, जिसमें उसने ग्रह उपग्रह और सूर्य्यादिका विचार किया है

लिखता है :–" समस्त यह प्राकृतिक जगत (जिसकी उसने गहरी अन्वेषणा की है) सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् जगत्के रचयिता की रचना है" ।

सर अलिवरलाज

सर अलिवर लाज मस्तिष्क को चित्त और आत्माका कारणमात्र समझते हैं, * उन्होंने स्पष्ट रीतिसे कहा है कि "भौतिक विज्ञान, अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंचाया हुआ भी यही उत्तर देता है कि उसके ज्ञान की सीमामें सम्प्रति आकाश (ईथर) और शक्ति हैं और इनके सिवा अन्य वस्तुओंको वह कुछ नहीं जानता † । लाज फिर एक जगह लिखते है कि प्रकृतिमें गतिशक्ति निर्बंधशील शक्तिके रूपमें रहती है, और वह (प्रकृति) शक्ति के द्वारा उत्तेजित कीजाती है, परन्तु मार्गप्रदर्शन और नियन्त्रणका गुण न तो प्रकृति में है, और न गति शक्ति में । गति शक्ति न तो निर्देशक सत्ता है और न उसमें निर्देशक उपकरण है । उसमें "मात्रा" मात्र है । ‡ फिर जीवनके सम्बन्धमें उनका कथन है कि "मैं वादके तौरसे नहीं, किन्तु घटित घटनाके तौरसे अनुभव करता हूं, कि स्वतः जीवन (आत्मा) ही मार्गप्रदर्शक और नियान्त्रक साधन है, अर्थात् प्राणी और पौधे

---

* Life and matter p. 53.

† Do p. 51.

‡ Do p. 50.

मात्र अनैन्द्रियिक द्रव्योंको प्रदर्शित और प्रभावित करते और कर सके हैं। * प्राण शक्ति (Vitality) के संबंधमें उनका कथन है कि जीवन (आत्मा) और प्रकृति (शरीर) के मध्यवर्ती सम्बन्धका नाम प्राण, प्राणशक्ति अथवा जीवत्व है, और इस प्रकार यह प्राणशक्ति प्रकृति के अंतर्गत है। परन्तु जीवन शब्द स्वयं जीवात्माके लिए चरितार्थ होता है, और आत्मा ही इस मध्य-वर्ती सम्बन्ध (प्राण) को प्रकृतिके साथ जोड़ता है † फिर जीव ‡ के स्वतन्त्र परतन्त्र होनेके संबंधमें लाज कहते हैं कि "हम स्वतंत्र हैं और परतंत्र भी हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध निकटस्थ ज्ञेय और समीपस्थ परिस्थितिसे है, वहांतक क्रियात्मक उद्देश्योंके लिये हम स्वतंत्र हैं और उनके उपस्थित किये हुये उद्देश्योंमेसे जिसे चाहें हम अपने लिये पसन्द कर सकते हैं, परंतु विश्वका एक भाग होनेकी स्थितिसे हमें नियम और व्यवस्थाकी मर्य्यादामें रहना पडता है, यही हमारी परतंत्रता है।*

लाजका यह "स्वातन्त्र्यवाद" वैदिक कर्मफलवादका रूपान्तरमात्र है। वैदिक कर्मवादका सार यह है कि प्राणी कर्म

---

* Life and Matter p. 66.

† Do p. 68.

‡ जीवात्माकी स्वतंत्र सत्ता, उसका पूर्वजन्म बालकोंको विशेष रीतिसे और कभी २ युवकोंको भी पूर्वजन्मकी स्मृतिका सत्य, एक दूसरे स्थानपर सर आलिवर लाजने प्रमाणित किया है। (Reason and Belief by Sir Oliver Lodge p. 66)

* Life and matter p. 86.

करनेमें स्वतंत्र परंतु फल भोगनेमें नियम और व्यवस्थाके आधीन है। लाजका भी स्वातंत्र्यवाद यही बतलाता है। अस्तु, हमने देख लिया कि सर आलिवर लाज एक उच्च वैज्ञानिक होनेकी स्थिति से किस प्रकार हेकलके जड़ाद्वैतवादके विपक्षी और उसके विरुद्ध आत्मवादके समर्थक हैं *

जान स्टुअर्ट मिल

जान स्टुअर्ट मिल भी आत्माकी स्वतंत्र सत्ता का समर्थक था। उसने स्पष्टरीतिसे कहा है कि "हमारी आत्मशक्ति प्रकृतिको प्रभावित कर क्रियाओंको कराती है। †

प्रोफेसर टेट।

प्रोफेसर टेटने (Prof. Tait) डेकार्टके प्रसिद्ध सिद्धान्त कि "मैं विचार करता हूं इसलिये मैं हूं" (Cogito ergo sum-I think therefore I am) का ही दूसरे शब्दोंमें समर्थन किया है। टेटका कथन है कि निर्वत-शीलता अथवा संरक्षण ही (आत्माकी) वास्तविक सत्ताकी कसौटी है। ‡

---

* जी, बी. शा (G. B. Shaw), बर्गसन (Bergson) और लगभग आधे प्राणविद्याके विद्वान् (Vitalist Bialogist) और गर्भविद्याके पंडित (Embryologists) भी आजसे इस बातके स्वीकार करनेमें सहमत हैं कि, चेतना शरीरसे पृथक् और स्वतन्त्र वस्तु है (Religion of Sir O. Lodge)

† Do p. 82.

‡ Do p. 51.

पांचवां परिच्छेद

डाक्टर वालेस

डाक्टर वालेसने हैकलके अणुवादका प्रबल विरोध किया है। आत्मा और परमात्माको वे किस प्रकार जानते और मानते थे यह बतलानेसे पूर्व उन्होंने जीवनकी जो परिभाषा की है उसका हम उल्लेख करते हैं:—

जीवन क्या है?

डाक्टर डीब्लेन विलि (Dr. De Blain Ville) की परिभाषानुसार जीवन एक संयोग वियोगात्मक निरंतर द्विगुण आभ्यांतरिक गतिका नाम है। परंतु हर्बट स्पेन्सरके मतानुसार आंतरिक संबंधोंका बहिरंग सम्बन्धोंके साथ निरंतर समायोगका नाम जीवन है। डाक्टर वालेसने इन दोनों परिभाषाओंपर विचार करते हुये अपनी सम्मति दी है कि दोनों में से एक भी परिभाषा अर्थव्यंजक और परिच्छेदक नहीं है, क्योंकि ये परिभाषायें सूर्य्य तथा अन्य ग्रहोंमें भी जो परिवर्तन होते रहते हैं, उनसे भी सम्बद्ध होसकती हैं। उनकी सम्मतिमें इनकी अपेक्षा अरस्तूका किया हुआ जीवन लक्षण जीवनसत्तासे अधिक लागू होता है; और वह यह है:—"**जीवन, पालन, पोषण, वृद्धि और विनाशके संघातका नाम है**"। परंतु वालेस इसको भी यथार्थ लक्षण नहीं समझते। उनका कथन है कि ये सब लक्षण केवल संगृहीत विचारोंको प्रकट करते हैं, वास्तविक चेतनामय जीवनकी सत्तापर प्रकाश नहीं डालते। उनका मत है कि जीवनका अद्‌भुत और अलौकिकपन शरीरके अन्तर्गत है, जो

जीवनको प्रादुर्भूत करता है। आवश्यक चिन्ह, जो उच्च प्राणियोंके जीवनमें पाये जाते हैं, ये हैं :—

(१) उनके समस्त शरीर अत्यन्त मिश्रित परन्तु अस्थिर प्राकृतिक अणुओंसे पूर्ण हैं। उनमें से प्रत्येक अणुका विकास या ह्रास निरन्तर जारी रहता है। कामके अयोग्य कण बाहरसे आये नये कणों (अणुओं) से परिवर्त्तित होते रहते हैं। जो नये कण शरीरके भीतर इस प्रकार प्रविष्ट होते हैं, उनपर यांत्रिक और रासायनिक क्रियायें होनी प्रारम्भ होजाती हैं। इन क्रियाओं का परिणाम यह होता है कि निकम्मे कण शरीरसे बाहर निकलते रहते और उत्तम और कारयक्षय कण, शरीरका भाग बनकर, भीतर और बाहरके समस्त पुराने कणोंको पूर्ववत् नया करते रहते हैं।

(२) उपर्युक्त कार्य्य कर सकनेके उद्देश्यसे समस्त शरीर जालीदार तन्तुओंसे भरा हुआ है जिनके द्वारा वायु और तरल पदार्थ शरीरके समस्त भागोंतक पहुंचते हैं, और इस प्रकार शरीरके पालन पोषण सम्बन्धी भिन्न २ कार्य्य होते रहते हैं। प्रोफेसर बर्डन सेण्डर्सनके कथनानुसार जीवित शरीरोंकी, जीवन-रहित शरीरोंकी अपेक्षा परिच्छेदक विशेषता यह है कि जीवित शरीरोंको अवयव अपनी मर्यादा न छोड़ते हुये सदैव परिवर्तन-शील रहते हैं और उन परिवर्तनोंमें जो विशेषता होती है वह यह कि इनके साथ और इनके परिणामरूपसे अनेक यांत्रिक कार्य्य होते रहते हैं। एक अर्वाचीन लेखक लिखता है कि जीवन का मुख्य और मौलिक कार्य्य शक्ति व्यापार है। * जीवित शरीर

* What is life by F. G. Allen.

का मुख्य कार्य्य यह होता है कि शक्तिका ग्रहण करके उच्च संभवनीय अवस्थामें उसका संग्रह रक्खे और सोयोग होकर उस का व्यय किया करे।

(३) तीसरा चिन्ह, जो कदाचित् सबसे विलक्षण और अद्भुत है, यह है कि जीवित प्राणियोंमें प्रत्युत्पत्ति अथवा वृद्धि की शक्ति होती है। यह शक्ति "आत्मविभाग" * के रूपमें नीच योनियोंमें और प्रत्युत्पादक घटकोंकी शकलमें उच्च योनियों में पाई जाती है। ये घटक यद्यपि प्रारंभिक अवस्थामें भौतिक अथवा रासायनिक हेतुओंसे अन्य योनियोंके घटकोंसे अभिन्नसे प्रतीत होते हैं, परन्तु उनमें एक ऐसी अलौकिक उत्पादकशक्ति होती है जिससे वे अपने ही अनुरूप प्राणी, जो रूप रंग आदि में उन्हींके सदृश होता है, उत्पन्न कर सकते हैं † । जीवन के इन चिन्हों और कार्य्योंपर विचार करते हुये "जीवन क्या है?" इस प्रश्न का उत्तर वालेसने इस प्रकार दिया है :—

"**जीवन** उस शक्ति का नाम है जो मुख्यतः वायु, जल, और उस तत्त्वसे जो उनमें विलीन हैं, बनता है, और जो संगठित परन्तु अत्यन्त गूढ़ रचना है और नियत आकार और कार्य्य

* अणु क्षुद्र जीवों में एक जाति है जिसके कीट अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करलेते हैं और उनमें से प्रत्येक विभाग उसी कीट की तरह एक नया कीट बनजाता है। इस कार्य्यप्रणाली को जीवन विद्या (Biology) की परिभाषानुसार "आत्म विभाग" (Fission process of self division) कहते हैं।

† Man's place in nature P. 15 to 158.

रखता है । आकार और कार्य्य, तरलपदार्थों और वायुके अभिसरण द्वारा, विकास और ह्रासकी नित्य अवस्थामें सुरक्षित रहते हैं और अपने सदृश प्रत्युत्पत्ति करते हुये, शिशु, युवा और वृद्ध अवस्थाको प्राप्त होते हुये मरकर उपादान भूतोंमें विलीन होजाते हैं, और इस प्रकार निरन्तर अपने सदृश व्यक्ति बनाते रहते हैं और जबतक वाह्य स्थितिसे उनका बचा रहना सम्भव है, वे सम्भवनीय (Potential) अमरत्वको रखते प्रतीत होते हैं......ये जीवन के लक्षण जंगम और स्थावर दोनों पर घटित होते हैं " *

पश्चिमी वैज्ञानिकोंमें से उन वैज्ञानिकोंको भी जो चेतना की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते और चेतनाको शरीरके मेलका परिणाम नहीं समझते, चेतनाशक्ति (आत्मा) के कार्य्यको मुख्य स्थान देकर वर्णन करनेमें संकोच होता है; और वे प्रत्येक कार्य्य को प्राकृतिक साधना द्वारा ही वर्णन करते हैं । यही सबब है कि वालेसको भी जीवनका इतना लम्बा चौड़ा लक्षण करना पड़ा अन्यथा इतना कहदेनामात्र पर्य्याप्त होसकता था कि आत्मसत्ता का शरीरमें होना और उसके गुणोंका शरीरके स्थिर रखने और सार्थक बनानेके लिये क्रियात्मक रूप ग्रहण करना ही जीवनहै" अस्तु अब चेतनाकी एकाणुवाद से उत्पत्तिके सम्बन्धमें डाक्टर वालेस के विचार देखने चाहियें ।

* World of life P. 3 and 4.

हैकलका एकाणुवाद

जीवनके इन चिन्हों और उसकी अपूर्वता और अलौकिकता पर दृष्टि डालते हुये भी कुछेक ऐसे पुरुष हैं, जो पत्थरको विकासमय बतलानेवालों के सदृश, प्राकृतिक अणुओंमें चेतना बतलाते हुये, जीवनकी चेतना पूर्ण सत्ताको उन्हीं (अणुओं) के मेलका परिणाम बतलाते हैं।

एकाणुवाद नास्तिकता का रूपान्तर है

ऐसे पुरुषोंमें हैकल मुख्य है। हैकलका एकाणुवादनास्तिकमत है। हैकलने स्वयं इसको स्वीकार किया। हैकल लिखता है :—"नास्तिकवाद देवी देवताओं की सत्ताका निषेधकवाद है......यह ईश्वरकी सत्तारहित सांसारिक नियम (नास्तिकवाद) एकाणुवाद अथवा वैज्ञानिकोंके जड़ाद्वैतवादसे सहमत है। (बल्कि) यह (अणुवाद) उस (नास्तिकवाद) के वर्णन का एक दूसरा प्रकार मात्र है" * हैकलके लेख स्वमताभिमान पूर्ण हैं, और वह जब प्रकृति अथवा प्राकृतिक जगत्को नित्य और असीम बतलाता है, जब वह अपने विभाग (प्राणविद्या) की सीमाका उल्लंघन करता है, क्योंकि जब योरुपके उच्च ज्योतिषकवैज्ञानिक सिद्ध कर रहे हैं कि "यह हमारा प्राकृतिक जगत् असीम है कि हमे उसकी पूर्ण सीमा के ज्ञान प्राप्त होजानेके समीप होरहे हैं" तो हममें से कोई भी नहीं है जो उसके आधाररहित स्वमताभिमानसे, जिसमें निषेध और सर्वज्ञताके भाव सम्मिलित हैं, सहमत होसके। उसने

* Riddle of Universe. p. 103.

अपनेमें उच्च ज्ञान होनेकी कल्पना केवल अपना अज्ञान छिपाने के लिये की है, जो उसे जीवनकी वास्तविकताके सम्बन्धमें है। वह (हैकल) अत्यन्त कठिन और रहस्यपूर्ण प्रश्नको कि, किस प्रकार (शरीरमें बिना जीवकी सत्ताके) भोजन पचता, शरीर का पालन होता और उसकी वृद्धि होती है,हल नहीं कर सकता है। * ....इस प्रकार हैकल और उसके अणुवाद का निरादर करते हुये डाक्टर वैलेस भी हक्सलेके इस कथनको उद्धृत करते हुये कि " जीवन शरीर रचनाका हेतु है " कहते हैं कि "यदि जीवन शरीर रचनाका हेतु है, तो उस शरीर की रचना से पूर्व विद्यमान होना चाहिये और उसका विचार हम उसके जीवात्मा (Spirit) से अभेद्य होने ही के द्वारा कर सकते हैं" † इसका आशय स्पष्ट है कि, डाक्टर वैलेस चेतनाको शरीरके मेलका परिणाम नहीं समझते, किन्तु चेतनाकी स्वतन्त्रसत्ता मानते हैं।

चेतना और अचेतना में अन्तर

हैकलने प्रकृतिसे चेतनाकी उत्पत्ति सिद्ध करनेके लिये बहुत हाथ पांव फेंके हैं, परन्तु समस्या कठिन थी इसलिये पूर्ति नहीं करसका हैकलके चेतनासम्बन्धी अज्ञानका यह एक नमूना है कि वह चेतन और अचेतन व्यापारके भेद बतलानेमें भी असमर्थ है। उसने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि "चेतन और अचेतनके

* The world of life by Dr. A. R. Wallace p. 4-8
† The World of life p. 9.

अन्तर्व्यापारोंके बीच कोई भेदसीमा निर्धारित करना असम्भव है। कौन व्यापार ज्ञानकृत (चेतन) है, और कौन अज्ञानकृत (अचेतन), यह सदा ठीक २ बतलाया नहीं जासकता" * अस्तु अब एक और बिलक्षण बात सुनिये।

तीसरा परिच्छेद।

विल्हेमवुण्ट

जरमनोंके सबसे बड़े वैज्ञानिक वुण्ट (Wilhalm Wundt of Leipzig.) ने, जो प्राणि विज्ञान और अङ्गविच्छेद शास्त्रके भी पूरे २ अभ्यासी थे अपने एक पुस्तक (Lectures on Human and Animal Psychology) में १८६३ ई० में लिखा कि मुख्य २ मनोव्यपार अचेतन आत्मा (unconscious soul) में होते हैं। ......३० वर्ष बाद १८९२ ई० में उसी पुस्तक के संशोधित संस्करणमें उसने अपने अनुभव और ज्ञान-वृद्धिके आधार पर अपने पहले मतके भ्रमको दूर करते हुये, पुस्तककी भूमिकामें उसने स्पष्ट लिखदिया कि "पहिले

---

† Riddle of universe by E. Haeckle p. 95, हैकल के शब्द (अंगरेजी अनुवादानुसार) यह हैं। "It is impossible to draw a hard psat and line in such cases between couscious und unconscious psychic functions."

संस्करणमें जो भ्रम (मनोव्यापारोंके अचेतन आत्मामें होने आदि के) मुझसे हुये थे, उनसे मैं मुक्त होगया। कुछ दिनों बाद जब मैंने विचार किया तब मालूम हुआ कि पहले जो कुछ मैंने कहा था वह सब युवावस्थाका अविवेक था, वह मेरे चित्तमें बराबर खटकता रहा और मैं जहांतक होसके, शीघ्र उस पापसे मुक्त होने के लिये राह देखता रहा" इस प्रकार वुण्टके ग्रंथके दो संस्करणों में किये हुये मनस्तत्त्व निरूपण एक दूसरेके सर्वथा विरुद्ध हैं। पहले संस्करणके निरूपण तो सर्वथा भौतिक हैं और जडाद्वैतवाद लिये हुये हैं, (जो हैकलको इष्ट था) परन्तु दूसरे संस्करण के निरूपण आध्यात्मिक और द्वैतभावापन्न हैं, पहलेमें तो मनो-विज्ञानको वुण्टने एक भौतिकविज्ञान मानकर उसका निरूपण उन्हीं नियमों पर किया था, जिन नियमों पर शरीरविज्ञानके अन्य सब अंगोंका होता है, पर ३० वर्ष पीछे उसने मनोविज्ञान को आध्यात्मिक विषय कहा और उसके तत्त्वों और सिद्धान्तोंको भौतिक विज्ञानके तत्त्वों और सिद्धान्तोंसे सर्वथा भिन्न बतलाया। अपनी मनः शरीर सम्बन्धी व्याख्यामें उसने स्पष्ट कहदिया कि प्रत्येक मनोव्पारका कुछ न कुछ सहवर्ती भौतिक (शारीरिक) व्यापार अवश्य होता है; पर दोनों व्यापार सर्वथा स्वतन्त्र हैं, अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों पृथक् २ हैं *।

विरचो और रिमौंड

इसी प्रकार जरमनोंके दो और प्रसिद्ध वैज्ञानिकों वरचों और रेमौंड (R. Virchos and

* Riddle of Universe p. 82 and 83.

E. do. Bois Reymond) ने पहले २ बहुत दिनोंतक भूता-तिरिक्त (चेतना) शक्ति, शरीर और आत्माकी पृथक् सत्ता आदिका घोर विरोध किया, पर पीछे उन्होंने (अनुभव और ज्ञान वृद्धिके बाद) चेतनाको भूतातिरिक्त व्यापार कहा और आत्मा की स्वतन्त्र सत्ताको स्वीकार किया । †

कांट का मत

इसी प्रकार जर्मनी (Immanual Kant) के सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक कैंटने पहले अपनी युवावस्थामें स्थिर किया था कि ईश्वर,आत्मस्वातन्त्र्य और आत्माका अमरत्व शुद्ध बुद्धिके निरुपणसे असिद्ध हैं । पीछे (ज्ञान और अनुभव वृद्धिके बाद) वृद्धावस्थामें उसने प्रमाणित किया कि ये तीनों विषय व्यवसायात्मिका बुद्धिके स्वयं सिद्ध निरुपण हैं और अनिवार्य्य हैं । ‡

बेयर

इसी प्रकार युवावस्थाके अल्पज्ञोनात्पादक विचारोंको ज्ञान-वृद्धि और अनुभवके बाद बेयर (Carl Ernst Baer) आदिने भी परिवर्तित किया था और इन्होंने अन्तमें आत्माकी स्वतंत्र सत्ताको स्वीकार किया इस प्रकार आधे दर्जनसे अधिक चोटीके दार्शनिक और वैज्ञानिकोंके मत परिवर्तनसे हैकलको शिक्षाग्रहण करके अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंपर पुनः विचार करके उनका अनुकरण करना चाहिये था, परंतु हैकल तो जड़ाद्वैत-वादके प्रवर्तक होनेकी लोकैषणा ग्रस्त था उसने इन मत परि-

† Riddle of Universe. p. 76 77.

‡ Do p. 75 and 76.

वर्तनोंसे उल्टी शिक्षा ग्रहण की, वह कहता है कि इन (वुण्ट आदिके) मत परिवर्तनोंके संबंधमें लोग कह सकते हैं कि युवावस्थामें बुद्धिके अपरिपक्व होनेके कारण इन्होंने सब बातोंकी ओर पूरा २ ध्यान नहीं दिया था, पीछे बुद्धिके परिपक्व होने और अनुभव बढ़नेपर इन्हें अपना भ्रम मालूम हुआ और इन्होंने उस अवस्थामें इस प्रकार वास्तविक ज्ञानका मार्ग पाया (और यह कहना स्वाभाविक होता) परन्तु हैकल कहता है कि यह क्यों न कहा जाय कि युवावस्थामें अन्वेषणश्रमकी शक्ति अधिक रहती है, बुद्धि अधिक निर्मल और विचार अधिक स्वच्छ रहते हैं पीछे वृद्धावस्थामें जैसे और सब शक्तियां शिथिल होजाती हैं वैसे ही मस्तिष्क भी निकम्मा होजाता है (अर्थात् मनुष्य सठिया जाता है)* परंतु हैकल, वुण्ट आदि पर सठिया जानेका इलजाम लगाते हुये भूल गया कि ६६ वर्षकी आयुमें जब उसने अपना प्रसिद्ध पुस्तक (Riddle of Univers) लिखकर अपने आविष्कृत जड़ाद्वैतवादको प्रकट किया था तब, वह भी सठिया गया था, उसका भी मस्तिष्क उसी प्रकार निकम्मा हो चुका था जिस प्रकार अन्य शक्तियां शिथिल होचुकी थीं। परंतु वह अपनी इस (६६ वर्षकी) अवस्थाको परिपक्व अवस्था कहकर अपना बड़प्पन प्रकट करता है, उसके शब्द ये हैं कि "I Now in my 66th year Venture to claim that it is mature"

---

* Riddle of Universe p. 83 & 84.

हैकलने अपने जड़ाद्वैतवादके वर्णनमें एक आवश्यक विचार उठाया है कि गर्भके प्रारंभिक घटकमें समस्त शरीर (बीजवत्) रहता है या नहीं ।

सातवां परिच्छेद

गर्भमें समस्तजीव बीजवत् रहता है

सुश्रुतने धन्वतरिके अवलम्बनसे लिखा है कि बांसके कल्ले या आमके फलके समान बालकके सब अंग एक साथ गर्भमें पैदा हो जाते हैं । † चेतन शरीर (मनुष्य अथवा अन्य प्राणी) भौतिक शरीर और आत्माके मेलका परिणाम होता है, शरीरसे आत्माका मेल कब होता है यह बात बृहदारण्यकोपनिषद्के आधार पर कहा जा चुकी है कि गर्भकी स्थापना रज, वीर्य्य और आत्मा तीनोंके मेल हीका परिणाम है, यदि जीव, रज और वीर्य्यके संघातमें प्रविष्ट न हो जावे तो गर्भकी स्थापना नहीं होसकती। गर्भ शरीरवत् भीतरसे बढता है बाहरसे नहीं । भीतरसे कोई चीज़ नहीं बढ़ सकती जब तक उसके भीतर जीव न हो, जिस प्रकार आमके बीजमें आमका वृक्ष बनानेकी, योग्यता है जिस प्रकार वटके बीजने वटके वृक्षके अंकुरित करनेकी शक्ति है इसी प्रकार पशुके वीर्य्य (बीज) में पशु, पक्षीके वीर्य्यमें पक्षी और

---

† सर्वाङ्ग प्रत्यङ्गानि युगपत् सम्भवन्तीत्याह धन्वंतरिः ।
गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते, वंशाङ्कुरवच्चूतफलवच्च ॥
[सुश्रुत, शारीर स्थान]

मनुष्यके वीर्य्यमें मनुष्य बनानेकी योग्यता होती है, आम अथवा वट किसी भी वनस्पतिके बीजको लेलेवें उस बीजमें उस वृक्ष का जिसका वह बीज है पूर्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म रूपमें विद्यमान रहता है, यदि ऐसा न होता तो किसी भी बीज से कोई भी वृक्ष अथवा वनस्पति उत्पन्न होजाया करती परन्तु प्रत्यक्ष यही है कि आम के बीज से आम, गेहूं के बीज से गेहूं और बबूल के बीज से बबूल ही पैदा होता है अतः यह मानने के लिए विवश होना पडता है कि प्रत्येक बीज में उस वृक्ष का पूर्व रूप सूक्ष्मरूप में रहता है। स्वयं मनुष्य अथवा अन्य अप्राणी के बीज (वीर्य्य) में भी उस २ प्राणी का पूर्व रूप जिसका वह बीज है, रहता है; और वही पूर्व ही जीव की विद्यमानता के कारण भोजन मिलने पर भीतर से बढता है और सभी अंग प्रत्यंग क्रमशः बढ़ते हैं। प्रथम मास तक रज और वीर्य घटकों का संघात विकसित होता हुआ ऐसी अवस्थामें रहता है कि हम शरीरके अवयवोंको सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रसे भी नहीं देख सकते जिस प्रकार कि बीजमें उपस्थित वृक्षके पूर्व रूपको नहीं देख सकते हैं। गर्भसम्बन्धी ये विचार चिरकाल संसारमें माने जाते थे और योरुपमें भी अरस्तूसे लेकर जिसे वहां विज्ञानका जन्मदाता कहा जाता है, १९ वीं शताब्दीके पूर्वार्धतक माने जाते थे, अवश्य वहांके विद्वानोंने इस मन्तव्यमें कुछ फेरफार करलिया था। उदाहरणके लिये प्रसिद्ध वैज्ञानिक हालर (Haller) ने इसवाद को स्वीकार करते * हुये

हिसाब लगाया था, कि ६००० वर्ष बीते जब ईश्वरने जगत् की रचनाके दिनोंमें छठे दिन (बाइबिलके अनुसार) २ खरब प्राणियों के बीजवत् पूर्वरूप उत्पन्न करके उन्हें बुद्धिमत्ताके साथ हव्वा (आदमकी पत्नी) के गर्भमें भर दिया। हालरके इस कथन को सुश्रुतके गर्भवादके साथ जिसे योरुपमें 'Formation thesry' कहते थे, "लीबनीज" (Leibnitz) जैसे दार्शनिकोंने भी पूर्णतया स्वीकार किया। था †। १९वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें योरुपमें जडवादका प्रचार बढनेसे आत्म शक्तियोंका निरादर होने लगा इसी बीचमें विकासवाद भी जन्म हुआ फिरतो खुले तौरसे सुश्रुतके इस गर्भवादका विरोध हुआ। कैसपर-फ्रीडरिक-उल्फ (Caspar Friedrich wolff), ओकन (Oken) नेकिल (PrckelEarl) और बेयर (Ernst Baer) ने जड़वाद के प्रकाशमें गर्भ विकासका विवरण दिया, बेयर का विवरण अधिकमान की दृष्टिसे देखागया। १८३८ ई० में घटकवादके

* सन् १६०० ई० में इटली के अङ्ग विच्छेद शास्त्र के विद्वान् "फेबरीसियस-एब ऐक्वेपेगडन्टी" (Fabricius ab Aquapendente of Italy) और १६८७ ई० में प्राणी शास्त्र के एक विद्वान् "मैरसीलो मैलपीघो" (Marcello Malpighi of Bologra) ने गर्भ के सम्बन्ध में पुस्तक लिखे और गर्भ के चित्र भी प्रकाशित किये थे। इन दोनों विद्वानों ने भी गर्भ में पूरे शरीर के पूर्व रूपका होना स्वीकार किया था (Riddle of Universe p. 44.)

† यह बाद Theory of Scatulation के नाम से प्रसिद्ध हुआ था (D. p. 49.)

आविष्कारके साथ रज और वीर्य्यके घटकों की कल्पनाहुई। जोमेसमूलरकेदो शिष्यों रेमेक (Robert Remak) और कोलीकर (Albort Kolliker of wurzburg of Berlien) ने इस कल्पनाको और भी अधिक पुष्ट किया इसके वाद डार्विनने विकासवादके द्वारा इसवादको और भी अधिक पुष्ट किया जिसका परिणाम यह हुआ कि अब प्रायः समस्त योरुपमें यही गर्भ सम्बन्धी अन्तिममत, 'तारतम्यपूर्वक गर्भ विधानवाद' के नामसे माना जाता है। परन्तु यह वाद सुश्रुतके वादका विरोधी वाद किस प्रकार होसकता है? समस्त शरीरका एकसाथ क्रमशः बनना न मानाजाकर यदि यह मानाजाय कि कोई अवयव विशेष पहले बनता है तो यह वतलाना कठिन होजायगा कि वह अवयव विशेष विना अन्य अवयवों और उनके सहयोगके स्थिर किस प्रकार रह सकता है इसलिये इस सिद्धान्तके सम्मुख शिरझुकाना ही पड़ेगा कि गर्भमें समस्त शरीर बीजवत् रहता और क्रमशः बढ़ता है।

पितृपरम्परा

अंकुरघटकमें हैकलके मतानुसार माता पिता के गुण आजाते हैं* परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं। गुणोंमें गुण होते हैं, इसलिये ये गुणतो जीवात्माके साथ संस्कारके रूपमें आते हैं और अपना प्रभाव आन्तरिककरणोंपर डालते

---

* रजः कीटाणु एक सूक्ष्म घटक है जिसका व्यास $\frac{1}{120}$ इंच होता है इसी प्रकार शुक्र कीटाणु भी सूतया आल्पीन के आकारका

हैं। माता पितासे जो कुछ रजो वीर्य्यके साथ (अंकुरघटकमें) आता है वह उनकी आकृति और स्थूल शरीरही के गुण और दोष, (सबलता निर्बलता, रोगादि) होते हैं, अत: पैतृक रोगादिका नाम दियाजाता है। डाक्टर अलबर्टऐबराम (Dr Albert Abram) ने हाल ही में जो रक्त सन्बन्धी आविष्कार किया है और जो "Oscillo-phora" के नामसे प्रसिद्ध हुआ है उस आविष्कारसे पिता और पुत्रके रक्तोंके परीक्षणसे आविष्कारक यह बता देनेमें समर्थ हुआ है कि अमुक पुत्र अमुक पिताका है। डाक्टर ऐबराम का कहना है कि वे अपने आविष्कारसे व्यक्तियोंके पुरुषस्त्री भेद, और स्वास्थ्यावस्था भी, रक्तके परीक्षण द्वारा बतलासकतेहैं * । यह आविष्कारभी इसी विचारकी पुष्टि करता है कि रजोवीर्य्यके साथ शारीरिकगुण दोषादि ही आते हैं मानसिक गुणदोषोंका सम्बन्ध रजोवीर्य्य से नहीं । वे व्यक्तिकी आत्माके साथ संस्कारके रूपमें आते हैं जैसे ऊपर कहा जाचुका है, यही पितृपरम्परा है। मानसिक गुण व्यक्तिके अपने होते हैं जो पहले जन्ममें प्राप्त किये

रोयेंदार अत्यन्त सूक्ष्म घट मात्र हैं और वीर्य्य के एक बूंद में नमालूम कितने लाख होते हैं। इतनी सूक्ष्म वस्तु के लिये जिसकी जांच रसायन शालाओं में इस दृष्टि से कि उनमें माता पिता के मानसिक गुण हैं या नहीं, नहीं हो सकती। इसके सिवाय इस प्रकार की परीक्षा विज्ञान की सीमा से भी बाहर है। फिर उसके लिये यह कहना कि इनमें मानसिक गुण भी माता पिता के हैं, कल्पना मात्र है।

* The Vedic Magazine for August 1921. p. 121 and 122.

हुये होते हैं। माता पिताके केवल शारीरिक गुण रजोवीर्य्य द्वारा आते हैं। अवश्य गर्भस्थापनाके बाद गर्भस्थ अथवा उत्पन्न बालक पर माता पिताके आचार विचार के प्रभाव पड़ा करते हैं, परन्तु प्रभाव इसी जन्मके होते हैं उनको पितृपरम्पराकी सीमासे बाहर समझना चाहिये। मानसिक गुण व्यक्तियोंके अपने होनेका एक पुष्ट प्रमाण यह भी है कि अनेक धार्मिक और विद्वान् पिता माता के अधार्मिक और मूर्ख संतान देखी जाती है और इसी प्रकार कभी २ इसके विपरीत भी अर्थात् अधार्मिक माता पिताके अच्छी शिक्षित और धार्मिक सन्तान होती हैं, यदि वे जीवके साथ आये (मानसिक) गुण व्यक्तियोंके न होकर माता पिताके होते तो सन्तान सदैव माता पिताके सदृश ही होती परंतु सदैव ऐसा नहीं होता इसलिये अंकुरघटकमें मानसिक गुण दोषोंके आनेकी कल्पना क्लिष्ट कल्पना ही समझी जा सकती है।

माता पितासे सन्तान का आकृतिभेद

सन्तान का माता पितासे न केवल गुणभेद हुआ करता है किन्तु कभी २ आकृतिभेद भी हुआ करता है। यह क्यों है एक वैज्ञानिक "वीज़मैन" (weismann) को जब इसका उत्तर जड़वादसे न मिला तो उन्होंने **बीजात्माके नित्यत्वके वाद** (Heory of coniinuity of the Germ plasni) की स्थापना की,* परन्तु जीवात्माका नित्यत्व न मानकर उसके स्थानपर बीजात्माके भी नित्य मानने से जड़ाद्वैतवादके मार्गमें एक रोड़ा अटकता था

* The Riddle of the universe p. 115.

इसलिये हैकल ने इस वादको "अत्युक्ति" कहकर रद किया है अब हैकल इस आकृतिभेदका क्या उत्तर देता है वह सुनिये:—

"विचार और (आकृति) विभेदके सम्बन्धमें यहभी है कि और ऊपरकी पीढियोंके (दादा, परदादा आदि पूर्वजोंके) मानसिक संस्कार भी साथही उसे (उत्पन्न बालकको) प्राप्त होजाते हैं, "कुलपरम्परा सम्बन्धी प्राकृतिक नियम आत्मा पर भी ठीक वैसेही घटते हैं जैसे अङ्गविधान पर"। * यह कल्पना "असम्भव कल्पना" कही जासकती है, सन्तानोत्पत्ति का मूलकारण हैकल के मतानुसार केवल पुरुष और स्त्री घटकोंका सम्मेलन है, यह घटक पुरुष और स्त्रीके शरीरहीमें तय्यार होते हैं. इनमें अनेक पीढ़ियोंके मानसिक और शारीरिक गुण कहांसे आसकते हैं,? मानसिकगुण तो इनमें माता पिताके भी नहीं होते, उनके केवल शारीरिकगुण उसमें होते और होसकतें हैं जैसा कि ऊपर प्रमाणित किया जाचुका है, डाक्टर "ऐवराम" ने भी अपने रक्तवादमें पिता और पुत्रका ही सम्बन्ध प्रकट करने की योग्यता बतलाई हैं, दादा, परदादाका हाल इस आविष्कारके द्वारा नहीं बतलाया जासकता, परन्तु हैकल कल्पना करनेमें सिद्धहस्त था इसलिये सम्भव असम्भव ऐसी कोई भी कल्पना करलेने में उसे संकोच

---

* Riddle of universe p. 16. इस वाद का नाम हैकलने Laws of progressive heredily and of the correlative functional adoptation."

नहीं होता था जो जड़ाद्वैतवादकी विधायक हो, आकृतिभेदका असली कारण गर्भस्थापनाके समय माताके विचार होते और होसकते हैं, आकृतिके साथही योनिका प्रश्न सन्मुख आजाता है।

आठवां परिच्छेद

स्थिर योनिका प्रश्न

योनियां दो प्रकारसे मानी जाती हैं (१) स्थिर (२) अस्थिर, स्थिर योनिवादका तात्पर्य्य यह है कि जगत्के प्रारम्भ ही से सब प्रकारकी योनियां रची हुई चली आती हैं जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी कीटपतङ्गादि (२) अस्थिर योनिवादका अर्थ यह है कि प्रारम्भ में कोई एक योनि थी और उसीसे अन्य योनियोंका विकास हुआ है, यह अस्थिर योनिवादही विकास वादका मुख्य अङ्ग है, इसबाद के शेष अंग इसी मुख्य अंगकी स्थापनाके लिये विकास वाद का अङ्ग बनाये गये हैं, डार्विनके विकासवादके प्रारम्भ तक, पृथिवीके अन्य देशोंके सदृश स्थिरयोनिवाद योरूप में भी माना जाता था, १७३५ ई में स्वीडेनके वैज्ञानिक "लिने (Carl Linne) ने अपनी एक पुस्तक (Classical systema naturae) में प्राणियोंका वर्ग विभाग करते हुये, प्रकट किया था कि संसारमें उतनीही योनियां दिखाई देती हैं जितने ढांचे सृष्टिके आरम्भमें थे। १८१२ ई० में क्यूवियरने अपने एक पुस्तक (Fossil bones of the four-footed Ver_

tebrates) में अप्राप्य जीवोंका विवरण देते हुए "लिने" के प्रकट किये हुये मत हीकी पुष्टि की। अर्थात् योनियां अचल और स्थायी हैं, उसने सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलयका भी विवरण अपनी पुस्तकमें दिया कि सृष्टिके प्रारंभमें सब वर्गके जीव उत्पन्न होते हैं और प्रलयमें सबका संहार होजाता है उसके बाद फिर से सब जीवोंकी नई सृष्टि होती है।

१७९० ई०में जर्मनीके कवि और वैज्ञानिक गेटे (W. Goethe) ने अपनी एक पुस्तक (Metamorphosis of plants) में समस्त पौधोंकी उत्पत्ति एक आदिम पत्तेसे बतलाई। १८०२ में फ्रांसीसी वैज्ञानिक लामार्कने एक पुस्तक (Observations on living Organisms by Jean Lamarck) योनियोंके परिवर्तनके सम्बन्धमें लिखी, परंतु डार्विनसे पहले अस्थिर योनिवाद योरुपमें प्रतिष्ठित नहीं हुआ, डार्विनके विकासवादके अनुसार प्रारंम्भिक जीवसे लेकर मनुष्योंकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है :—

विकासवादमें योनि परिवर्तन का क्रम

सबसे पहले आदिम मत्स्य, फिर फेफड़े वाले मत्स्य, फिर जलस्थलचारी जंतु मेंढक आदि सरीसृप और स्तन्यजन्तु, स्तन्य जीवोंमें अंडज स्तन्य फिर अजरायुजपिण्डज (थैलेवाले) और जरायुजजन्तु, फिर किम्पुरुष जिनमें पहले बन्दर, फिर बनमानुस उत्पन्न हुये, पतली नाकवाले वनमानसोंमें पहले पूंछवाले कुक्कुटाकार वनमानुस हुये फिर उनसे बिना पूंछवाले नराकार वनमानुस हुए, इन्हीं नराकार

वनमानसों की किसी शाखासे जिसका अभी ज्ञान नहीं है, वन-मानुसोंकेसे गूंगे मनुष्य उत्पन्न हुये और फिर उन्हींसे बोलनेवाले मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई बतलाई जाती है। योनियोंके परिवर्तन अथवा अस्थिर योनिवादका मुख्यआधार केवल यह कहाजाता है कि क्रमपूर्वक योनियां एक दूसरेसे मिलती और उन्नत होती हुई पाई जाती हैं, उन्नतिका हेतु यह होता है कि जिस अवयव की आवश्यकता प्राणीको अनुभव हुई वह उत्पन्न और जिसकी अना-वश्यकता हुई वह नष्ट होकर उन्नत योनियां बनती जाती हैं। प्रथमतो यह क्रम पूरा नहीं है, स्वयं हैकलको स्वीकार है कि रीढ वाले जन्तुओंकी उत्पत्ति की शृंखलातो मिलजाती है परन्तु उनसे पहले बिना रीढवाले जन्तुओंकी शृंखला मिलाना कठिन है। भूगर्भके भीतर उनके कोई चिन्ह (ढांचाआदि) नहीं मिल सकते इससे उनको क्रमकी खोजमें प्राग्जन्तु विज्ञानसे भी कुछ सहायता नहीं मिल सकती *। इस कठिनताको विकासवादानुयायी अच्छी तरह समझते हैं, कल्पनाओंके करनेमें निपुणहैकलको भी यह कठिनता इन शब्दोंमें स्वीकार करनी पड़ी, "प्राणिवर्गोत्पत्ति विद्या का विषय परोक्ष होनेके कारण अधिक कठिन है, उन क्रिया-विधानोंके धीरे २ होनेमें, जिनके द्वारा उद्भिदों और प्राणियोंके नये २ वर्गोंकी क्रमशः सृष्टि होती है, लाखों वर्ष लगते हैं........ उन क्रियाविधानों का परिज्ञान हमें अनुमान और चिन्तन द्वारा तथा गर्भ विधान और निःशेष जीवोंके भूगर्भस्थित अस्थिपंजरों

* Riddle of Universe p. 68.

की परीक्षा द्वारा ही विशेषतः होता है" *

सबसे मुख्य बाततो यह है कि यह वाद प्रकृतिक नियमों का विरोधी है †

संसारका यह अटल नियम है कि संसारमें उत्पन्न जो प्रत्येक वस्तु या प्राणी है उसके लिये विकासके साथ ह्रास अनिवार्य्य है एक समय सूर्य्य में ऊष्णता बढ़ी अब क्रमशः घटती है, पृथिवी पर अग्निका एक समय तो जलका दूसरे समय आधिक्य हुआ परन्तु दोनोंका एक समय ह्रास होगया, बालक उत्पन्न होकर बढ़ता है, युवाहोकर फिर बूढ़ाहोना शुरूहोजाता है और अन्तमें मृत्युका ग्रास होजाता है जो ह्रासकी अन्तिमसीमा है, वृक्ष उगते हैं बढ़ते हैं, समय आता है कि नष्ट होजाते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक कीट पतङ्ग पत्थर पक्षीमें यह दोनों नियम साथ काम करते

---

† Riddle of Universe p. 58 and 59.

‡ एक योनि से दूसरी योनि बनने का क्रम यह बतलाया जाता है कि प्राणी जिन अवयवों का प्रयोग करता रहता है, वे स्थिर अथवा नवीन उत्पन्न होजाते हैं, जिनसे काम नहीं लेता वे नष्ट होजाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य और उसके पूर्वज एक प्रकार के बनमानस थे उनकी पूंछ नष्ट होगई बतलाई जाती है। परन्तु यह बात मनुष्य के सम्बन्ध में ठीक नहीं मालूम होती मनुष्यों में चंवर या चौरी के प्रयोग प्रचलित होने से यह नहीं कहा जा सकता कि उसने पूंछ की आवश्यकता नहीं समझी, अथवा गौण समझा था ऐसी दशा में या तो पूंछ नष्ट ही न होती अथवा यदि मनुष्य योनि बनने से पहले नष्ट होगई थी तो आवश्यककता अनुभव करने के हेतु से नवीन उत्पन्न होजाना चाहिये थी, परन्तु नहीं होती।

हुए समानान्तर रखते दिखाई देते हैं। परन्तु यह आन्तरयोनि विकासवाद ह्रास शून्य बतलाया जाता है यही इसकी मुख्य त्रुटि है। एक २ योनि अथवा एक २ प्रतिवर्गके भीतर विकास और ह्रास दोनों होते हैं और दोनों स्वीकृत हैं उनसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। परंतु एक योनि विकसित होकर दूसरी योनि बन गई यह कल्पना मात्र है। आज तक समुद्रोंमें इंद्रियहीन अमीबा कीट उसी प्रकार देखा जाता है, यह वर्ग इस अवस्थामें क्यों शेष है ? इसका विकास क्यों नहीं हुआ ? योनिका विकास केवल उसी अवस्थामें माना जा सकता है कि विकसित होनेपर अविकसित अवस्थामें बाकी न रहे, जब वह योनि, जिस विकासवादमें आदिमयोनि बतलायी जाती है, अब भी ज्यों की त्यों अविकसित रूपमें बाकी है तो उसके लिये तो विकास खपुष्पके तुल्य ही हुआ। क्रम पूर्वक योनियोंके मिलने पर (यद्यपि पूरा-क्रम मिला नहीं है), कहा जाता है कि विकासकी भित्ति स्थापित है, इसका सुगमतासे यह उत्तर भी तो दिया जा सकता है कि एकही रचयिताकी रचना होनेसे इनमें मेल होना आवश्यक ही था जिस प्रकार एक कुम्भकारके बनाये हुये बर्तनोंमें मेल होता है।

योनिविकासके साथ ज्ञान-वृद्धिकी कल्पना कल्पना-मात्र है।

अस्तु एक और बात है कि विकासवादमें सम्मिलित कर ली गई है कि योनियोंके शारीरिक विकासके साथ उसी क्रमसे ज्ञानका भी विकासहोता है और इसी ज्ञानके विकासके आधार पर

कहा जा सकता है कि प्रत्येक ज्ञान जो संसारमें इस समय है वह सब प्रारंभिक साधारण ज्ञानके विकासका परिणाम है, परंतु विकासवादियोंका यह दावा सब जगह कल्पनामें भी नहीं आ सकता, विशेष कर सूक्ष्म कलाओंमें यह नियम चरितार्थ होता हुआ नहीं दिखलाई देता, और नहीं बतलाया जासकता कि चित्रकारी तथा गानविद्या आदि किस प्रकार विकासित हुए हैं।

लाज भी इस से सहमत नहीं

यही बात सर आलिवर लाजने भी कहा है कि सूक्ष्मकला चातुर्य्य विकासवाद का परिणाम नहीं है । बालफोर (Balfour) महोदय इस (लाजके) मतसे सहमत हैं * :—

डाक्टर वालेस, जो विकासवादके डार्विनके साथ सहआन्वेषक मानेजाते हैं, वे भी इससे सहमत नहीं कि योनिविकास के साथ ज्ञानका भी विकास होता है । वे प्रचलित पश्चिमीय सभ्यतापर विचार करते हुये और उसकी तुलना उस सभ्यतासे करते हुये जिसका वर्णन ऋग्वेदमें हुआ है, लिखते हैं :—

"हमको स्वीकार करना चाहिये कि वे मस्तिष्क, जिन्होंने ऐसे विचारोंको जो इन वेदकी ऋचाओंसे प्रकट होते हैं विचारा, और उन्हें उपपन्नभाषा में प्रकट किया, किसी अवस्थामें भी हमारे उत्तमसे उत्तम धार्मिक शिक्षकों, कवियों, हमारे मिल्टनों और हमारे टेनीसनोंसे, न्यून नहीं थे" †

---

* Life and matter by Sir O. Lodge p. 143.

† Social Environment and moral progress by Dr. Wallace. p. 14.

डाक्टर वालेसने न केवल भारतवर्ष की सूक्ष्म कलाओं और इमारत आदिसे सम्बद्ध शिल्पविद्याओंको आजकलकी सूक्ष्म-कलाओं और शिल्पोंके तुल्य ठहराया है किन्तु मिश्र, यूनान और आसीरिया जाति की भी भिन्न २ विद्याओं और सभ्यताओं को आजकलकी विद्याओं और सभ्यताओंसे निम्नकोटिका नहीं ठहराया और ऐसी अवस्थामें उन्हें बाधित होकर स्वीकार करना पड़ा कि कि "इसलिये क्रम पूर्वक ज्ञानवृद्धि के कोई प्रमाण नहीं है, उनके शब्द यह हैं :—There is, therefore, no proof of continuously increasing intellectual power." *

प्रोफेसर ए इरमैन भी सहमत नहीं

मिश्र के प्राचीन लेख जो भोजपत्रके सदृश एक पत्र पर जिसे पैपाइरी (Papyri) कहाजाता है अङ्कित हैं, उस समयके विचार, विश्वास और आकाङ्क्षाओंको प्रकट करते हैं, जिस समय को, मिश्र की जगत् प्रसिद्ध मीनारोंके निर्माणकाल से भी पहला बतलाया गया है। इन तथा इस प्रकारके मिश्रके अन्य प्राचीन लेखों को पढ़कर प्रोफैसर इरमैनने अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है :—

"परन्तु जब कोई विचारता है कि नीलनदीकी घाटियों के निवासी भी मनुष्य ही थे, और हमारी जैसी ही इच्छायें, उद्वेग और उत्साह रखते थे। उन्हींमें से एक पुरुष क्रियात्मक समाज शास्त्रके प्रश्नोंको हल करनेके लिये उसी प्रकार यत्नवान है जैसे

---

* The Social Environment and moral progress p. 8 to 26.

आज हम हैं, तब क्या प्राचीन मिश्रकी एतिहासिक शिक्षायें, अपने असली स्वरूपमें और अपने सच्चे अर्थों में, हमतक यहां लाई जा सकती हैं? (यदि लाई जावें तो) उनसे जो वास्तविक शिक्षा मिलेगी, (यदि हम इस संभावनाको चित्तमें दृढ़तासे धारण रक्खेंगे कि मिश्रके इतिहासकी त्रुटियां जो तीन या चार सहस्रवर्षों के भीतर अर्थात् उसकालसे सम्बद्ध है जिसने मिश्रके मीनार-निर्माताओंको सिकन्दरके समकालीन पुरुषों से पृथक् किया था,) वह यह होगी कि वह समय मिश्र जातिके अधःपतनका अन्धकार मय युग था, * अर्थात् उन्नतकाल प्रचलित यौरुपीय उन्नतकाल से कहीं बढ़कर होगा।) तो फिर क्रमशः ज्ञानवृद्धि कहां रही?

नवां परिच्छेद

मेसोपोटेमिया की सभ्यता भारत और मिश्र के सदृश थी

जबकि भारतवर्ष और मिश्र की प्राचीन सभ्यताओं के लेखबद्ध प्रमाण उपस्थित हैं तब मेसोपोटामिया के प्रसिद्ध नगरों नैनवा और वैबीलोन के केवल खंडर ही अवशिष्ट थे। १९ शताब्दीके उत्तरार्द्ध में लेयार्ड (Layard) और रौलिन्सन (Rowlinsau) आदि विद्याप्रेमियों ने इन नगरों के खंडरों को खुदवाना प्रारम्भ किया, परिणाम यह हुआ कि उन खंडरोंमें से एक पुस्तकालय निकला

---

*The Historians History of the world Article written by prof. Adoef Erman.

जिसके पुस्तक कागज पर नहीं किन्तु ईंट और पत्थरों पर लिखे हुए थे। वे पुस्तक पढ़े गए और उनका अनुवाद किया गया। उनसे उस प्राचीन जातिका इतिहास, कानून, लोकाचार और दैनिक जीवन किस प्रकार का था, ये सब बातें ज्ञात हुईं, उन सब पर विचार करने के बाद डाक्टर वालेस ने लिखा है कि उस प्राचीन जाति में (इतिहासादि) सब बातें प्राचीन भारत निवासियों और मिश्रियों से मिलती जुलती हैं। *

जब प्राचीन से प्राचीन जातियोंमें उच्च सभ्यता उच्च ज्ञानका होना स्वयं पश्चिमी विद्वानोंके लेखोंसे प्रकट होता है तो फिर क्रमशः ज्ञानकी वृद्धि कहां प्रमाणित हुई ? इसके साथही एकबात और भी है:—

यदि क्रमशः ज्ञान बुद्धि स्वभाविक रीति से होती तो इस समय भी अनेक जातियां अज्ञानी क्यों हैं।

यदि इसबातको प्रमाणित कल्पना करलिया जावे कि क्रमशः ज्ञानवृद्धि योनिविकासके साथही स्वयंमेव होती है तो इससमय पृथिवीतलकी सभी जातियोंमें उच्चज्ञान और उच्चसभ्यता होनी चाहिये परन्तु इससमयभी पृथिवीतल पर अनेक जातियां हैं कि जिनको पशुही कहा जासकता है और उन में सभ्यता क्या वस्तु होती है इसका ज्ञानतक नहीं पाया जाता। ध्रुवके समीपवर्ती उन जातियोंको देखें कि जिनके मनुष्य सल-

* Social Environment and moral progress by Dr. Wallace p. 16. 17.

नामक पशुको मारकर उसके मास और जलमें उत्पन्न एक प्रकार की काईके सदृश बनस्पतिसे अपना पेट भरते हैं, उसी सेलपशु की खाल ओढते और उसीकी चर्बीसे कभी २ दीपक जलाते हैं, अथवा जावा बोर्नियो और सिलीबीज़द्वीपोंके मनुष्यभक्षक जंगली जातियोंको देखेंतो विकासके एक नियमानुसार यह उच्च योनिको तो प्राप्त होगये परन्तु दूसरे नियमानुसार इनमें क्रमशः ज्ञानवृद्धि क्यों नहीं हुई ?

परीक्षणों से भी स्वभाविक ज्ञान-वृद्धि प्रमाणित नहीं होती ।

अतः स्पष्ट है कि स्वभाविक रीतिसे ज्ञानवृद्धि नहीं होती इसके सिवा नैनवा, वैवलोनकेप्रसिद्ध राजा असुखनापाल फ्रेडरक द्वितीय, जेम्स चतुर्थ और महान् अकबरके समय में जो परीक्षण किये गये और जिनमें कुछेक बालक बिलकुल मनष्य समाजसे इस प्रकार पृथक रक्खे गये थे कि वे न किसी प्रकारकी बातें मनुष्योंकी सुन सकें और न और किसी प्रकार मानुषी क्रियाओं को देख सकें। कुछेक स्त्रियां उनके पालन पोषण और रक्षणके लिये नियत थीं जो समय २ पर बिना कुछ बोले अथवा संकेत किये उन बालकोंको दूध पिलाना आदि काम करके एक ऐसे स्थानपर चली आती थीं जहांसे बालकोंको अपनी दृष्टिमें रक्खें। ऐसे सभी परीक्षणोंका एक जैसाही परिणाम प्रायः सभी समयों में निकला, और वह परिणाम यही था कि बालक बहरे और गूंगे थे और उनमें मनुष्यत्वकी एकबातभी नहीं आसकीथी यह परीक्षण फिरभी, यदि कोई चाहे तो किये जासकते हैं।

ज्ञानवृद्धि के लिये निमित्त अपेक्षित है

एक पुरुष शिक्षा पानेसे क्यों शिक्षित बन जाता है दूसरा मनुष्य शिक्षा न पानेसे क्यों मूर्ख रह जाता है ? इस सबका कारण यह है कि मनुष्य की ज्ञानवृद्धि (स्वभाविक रीतिसे नहीं किन्तु) नैमित्तिक रीतिसे किसी निमित्त (गुरु अथवा अध्यापक) के प्राप्त होनेसे होती है। यह निमित्त इस समय तो हमारे अध्यापकवर्ग हो सकते हैं, परन्तु सृष्टिके आरम्भ में जगत्कर्ता के सिवाय और कोई निमित्त नहीं होता, उसी से ज्ञानप्राप्त हुआ करता है।

इलहाम अथवा ईश्वरीय ज्ञान।

वही ज्ञान ईश्वरीयज्ञान (इलहाम) कहलाता है, और इसी नैमित्तिक ज्ञानका दाता होनेसे वह (ईश्वर) आदि गुरु कहलाता है, * इस नैमित्तिक ज्ञानके सिद्धान्तको अन्य विद्वानोंके सिवाय आजकलके अनेक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं।

फिलिंट का मत।

"ऐश्वर्य्य नियमोंका प्रकाश और सज्ञान सृष्टि-रचना, नैमित्तिकज्ञान (इलहाम) प्राप्त होजानेके लिये पर्य्याप्त नहीं हैं जो दुःखोंसे छूटनेके लिये अपेक्षित है। गहरी से गहरी और उच्च से उच्च बुद्धिके लियेभी वे सच्चाइयां अपेक्षित हैं जो नैमित्तिक ज्ञानमात्रसे प्राप्त होती हैं। †

---

* १ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योगदर्शन २।२१

† Theism by R. Plint page 320 and 310.

फिलिपकी सम्मति

"वेदानुयायी आर्य्योंके उच्च और शुद्ध विचारों का केन्द्र प्रारम्भिक ईश्वरीय ज्ञान था। *

हम यहां अधिक सम्मतियां न देकर केवल एक वैज्ञानिक की सम्मति और उद्धृत करना चाहते हैं यह सम्मति नवीन और १९१४ ई० में दीगई थी।

डाक्टर फ्लीमिंगका मत

"यदि हम निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो वह मनुष्यों के निर्बल मस्तिष्कों में बुद्धिके धीमे प्रकाश से नहीं आसकता, वह केवल सर्वज्ञ ईश्वर के साक्षात् प्रदत्तज्ञान से मनुष्यों के परिमित मस्तिष्कों में आया करता है, फ्लीमिंगके शब्द यह हैं:–" If we are to obtain more solid assurances it cannot come to the mind of man groping feebly in the dim light of an assisted reason but only by a communication made directly from this supreme mind to the finit mind of man" । †

हैकलका अन्तिम मत

यह बात कदाचित् कम रुचिकर न होगी यदि यहांपर हैकलका मत भी प्रकाशित करादिया

---

* Phillip's Teachings of the Vedas, p. 231.

† Science and Religion by seven men of science.

‡ Riddle of universe by E. Haeckle p. 53.

जावे। " रिडिल " * के पढने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि इस पुस्तकमें उसने "इलहाम" का कितना निषेध किया है परन्तु इस पुस्तकके लिखनेके बाद उसकी सम्मति भी हक्सले की तरह, जडाद्वैतवादके सम्बन्धमें उतनी दृढ नहीं रहीथी जितनी उस पुस्तकके लिखते समय थी, स्वयं हैकलने एक " मेगर्ज़ीन " (मासिक पत्र) के लेखकसे, अपने जडाद्वैतवाद और उपर्युक्त पुस्तकके सम्बन्ध में वार्तालाप करते हुये कहा था, "यह विस्तृत और कभी न समाप्त होनेवाला दार्शनिकवाद है, शायद यह सदैव अपूर्ण ही रहेगा और यह कूट प्रश्न कभी हल न होगा, मैंने जीवन प्राकृतिक नियम और विश्वके उचित आशयके प्रकट करनेकी चेष्टा की है परन्तु फिर भी प्रश्न बाकी ही रहेंगे और वह (प्रश्न) यही है जैसा तुम कह रहे हो:—"हम कहांसे आते हैं" "हम कहां हैं, और कहां जाते हैं," + हैकलके शब्द ये हैं:—"It is a vast and never ending programme of philosophy. Perhaps it will always remain in complete and the riddles always unanswered. I have striven for a reasonable interpretation of life nature and tho world. But the riddles remain.

* The article in its T. P's magazine quoted in the materials is no by Daral Dinsha Kanga p. 52.

They are as you observe a trinity :—

"Whence do we come ?

" What are we " ?

" Whither do we go " ?

हैकल के इन शब्दों में उस स्वमताभिमान की गन्ध भी नहीं है जो उसके पुस्तक 'रिडिल' में पग २ पर देखा जाता है। बात यहीं समाप्त नहीं होती। हैकल ने "इलहाम" के सम्बन्धमें जो दूसरा मत दिया है वह भी सुनने के योग्य है। जीव और ईश्वर की सत्ता की चर्चा करते हुए वह कहता है यदि यह स्वीकार कर लिया जावे कि कोई उच्च शक्ति ईश्वर है तो उससे ज्ञान प्राप्त होने की संभावना हो सकती है। हैकल के शब्द ये हैं:—

"They may or may not receive such information but their is no Scientific Ground for dogmatism on the subject nor any reason for asserting the inconceivability of such a thing."

इनका आशय यह है कि उन्हें ऐसा ज्ञान प्राप्त हो या न हो परन्तु इस विषय (की संभावना) का विरोधी कोई वैज्ञानिक हेतु नहीं है और न कोई कारण है जो ऐसे विषय के विचार कोटि में आने का बाधक हो। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि यदि ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर ली जावे तो फिर "इलहाम" की भी संभावना हो सकती है जैसा कि कहा जा चुका है। दूसरे शब्दों में यही बात इस प्रकार कही जा सकती है कि

ईश्वर की सत्ता के स्वीकार करने से क्रमशः ज्ञानवृद्धि, हैकल के मतानुसार, आवश्यक नहीं रहती।

दसवां परिच्छेद

क्या विकासवाद नास्तिकवाद है?

यहां एक अनिवार्य प्रश्न यह उठता है कि क्या विकासवाद नास्तिकवाद है? "डार्विन" का जहां तक सम्बन्ध है वह तो ईश्वर, जीव, और प्रकृति तीनों को स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करता था जैसा कि आगे के पृष्ठ प्रकट करेंगे, परन्तु इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि जड़वादियों के अधिकार में पहुंच कर विकासवाद भी उसी प्रकार जड़वाद से प्रभावित होगया जिस प्रकार विज्ञान प्रभावित था। वास्तव में विज्ञान और धर्म में विरोध नहीं है, परन्तु जिस प्रकार मध्य-कालीन योरूप के ईसाई पादरी विज्ञान के विरोधी थे उसी प्रकार अपनी बारी में जड़ाद्वैतवादी (नास्तिक) वैज्ञानिक, धर्म के विरोधी बन रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि विकासवादके आविष्कारक डार्विन (और डाक्टर वालेस को भी उसके साथ सम्मिलित कर लें तो उन) के नास्तिक न होने पर भी जड़वादी वैज्ञानिकों की कृपा से विकासवाद पर नास्तिकवाद अपना अधि-कार किए हुए है।

डार्विन ईश्वर-वादी था

अच्छा अब डार्विन का मत सुनिए। "वर्गोंके आदि कारण" नामक पुस्तकके प्रथम संस्करण में इस बात का विचार करते हुए कि प्रारम्भ

में एक ही मनुष्य (आदम के सदृश) उत्पन्न हुआ था, वह लिखता है कि:—

"I should infer from auology that probably all the organic beings have descended from some one primordial form into which life was first breathed."*

इसका आशय यह है कि:—

"सादृश्य से यह अनुमान किया जाता है कि प्राय: समस्त जीवधारी किसी एक प्रारम्भिक जीव से उत्पन्न हुए हैं जिसमें पहलेपहल जीवन फूंका गया था। परन्तु जब उसके सम्मुख यह दूसरा विचार भी पहुंचा कि प्रारम्भ में अनेक जीवों की उत्पत्ति होती है, तो उसने इस अथवा अन्य किसी हेतुसे, उपर्युक्त पुस्तकके दूसरे संस्करण में उपर्युक्त वाक्यों के स्थान में निम्न वाक्य प्रकाशित किए:—

"There is a grandeur in this view of life having been Originally breathed by the creator into a few forms or into one"

इन दूसरे वाक्यों का तात्पर्य यह है कि "इस पक्षमें उत्कर्षता है कि प्रारम्भमें **रचयिता द्वारा** जीवन एक ही में फूंका गया अथवा अनेक में":—

---

* टिंडल ने इस शब्द (Bimordial form) का अपने प्रसिद्ध बेलफास्ट के भाषणमें, उल्लेख करके डार्विनसे प्रश्न किया है कि किस प्रकार उसने इस प्रारम्भिक आकारका प्रवेश कल्पना किया है इत्यादि Lectures & Esseys by Job Tyndall p. 30.

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि डार्विन ईश्वर द्वारा जीवन का प्राकृतिक शरीर में फूंका जाना स्वीकार करता था। "ईश्वर द्वारा" ये शब्द उसने दूसरे संस्करणमें समझ बूझ कर उत्तरदायित्वके साथ बढ़ाए थे। जब जीवन शरीरमें फूंका गया था तो वह अब नए शरीरके मेलका परिणाम नहीं था किन्तु शरीरसे पृथक् कोई वस्तु थी, वह जो कुछ भी हो, परन्तु शरीरसे अवश्य स्वतंत्र वस्तु थी, तो क्या अब यह स्पष्ट नहीं हो गया कि डार्विन ईश्वर, जीव और प्रकृति चीजों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता था। उसका मत हैकलके जड़ाद्वैतवादके सर्वथा विरुद्ध था। उसका विकासवाद भी नास्तिकवाद नहीं था परन्तु सम्प्रति डार्विन का विकासवाद बहुत परिवर्तित और संशोधित रूपमें योरुपमें माना जाता है। जो कुछ हो अब यह बात अच्छी तरहसे साफ और प्रमाणित हो गई, कि योनि अथवा शरीरके विकासके साथ विना निमित्तकारणके ज्ञानका विकास नहीं हो सकता। और इस प्रकार विकासवाद जहां तक योनियों के विकास (आस्थिर योनिवाद) से सम्बद्ध है कल्पना मात्र है और स्वीकार करनेके अयोग्य है, हां यह अवश्य है कि एक २ योनिके भीतर विकास और ह्रास दोनों (केवल विकास नहीं) नियम चरितार्थ होते रहते हैं।

कुछेक वैज्ञानिकोंके मत जडाद्वैतवादके सम्बन्धमें जो ऊपर दिये गये हैं उनसे भी इसी परिणामकी पुष्टि होती है। एकबात

और भी इस प्रकरणमें कहदेना आवश्यक है कि कुछेक विषय ऐसे हैं जिनका विकास होकर ह्रास होचुका है, वे अबतक फिर विकसित नहीं। उदाहरणकी रीतिसे अध्यात्म विषय ही को लेवें तो प्रतीत होगा कि वह भारतीय सभ्यता कालमें जितना उन्नत होचुका था उतना अब उन्नत नहीं है, अनेक मानसिक शक्तियां योगके द्वारा प्राप्तकी जाती थी, परन्तु अब वे अविकासित ही रहती हैं। इस प्रसङ्ग में एक प्राचीन आविष्कारकका उल्लेख कर देना कदाचित् अनुचित न होगा। प्राचीन संस्कृत साहित्यमें हम सूर्य्यकांत और चन्द्रकांतका विवरण * पाते हैं उनमेंसे पाश्चिमी

सूर्य्यकांत और चन्द्रकांत

विद्वानोंकी खोजोंसे सूर्य्यकांत (आतिशी शीशे) का तो पता चल गया है परन्तु चन्द्रकांतका नहीं, चन्द्रकांतके सम्बन्धमें कुछेक लेख यहां उद्धृत किए जाते हैं:—

(१) चन्द्रकांतसे उत्पन्न जल राक्षसों (रोगाणुओं) का नाशक, शीतल, आल्हाददायक, ज्वरनाशक, दाह और विषको शान्त करनेवाला, शुद्ध तथा गर्मीका मारने वाला कहा गया है †

---

* इस मणिको रात्रिमें चन्द्रमा के सम्मुख इसप्रकार रखनेसे कि उसका किरणें उस पर पड़े, उस (मणि) में से पानी निकलने लगता है॥

† रक्षोघ्नं शीतलं ह्लादि ज्वरदाहविषापहम्। चन्द्रकांतोद्भवं वारि पित्तघ्नं विमलं स्मृतम्॥ सुश्रुत सूत्रस्थान ४५। ३०

(२) चन्द्रकांत मणिका घड़ा बनाकर चांदनी में रखनेसे* उसमें से जलकी धारा निकलने लगती है।

(३) फैज़ीने भी लिखा है कि एक दूसरा चमकता हुआ सफेद पत्थर भी है जिसे चन्द्रकान्त कहते हैं, जिसे जब चन्द्र-किरणोंके सम्मुख रखते हैं तो उसमें पानी गिरता है " † इससे स्पष्ट है कि यह मणिफैजीके समयमें भी था, परन्तु आजकलके पश्चिमी विद्वान् इससे अनभिज्ञ हैं। यदि विकासके साथ ह्रास न होता और क्रमशः उन्नति ही होती जाती, तो यह न होता कि पश्चिमी विद्वान् (आजकलके विकासवादियों से अभिप्राय है) उतना भी ज्ञान न रखते जितना हजारों वर्ष पूर्व प्राचीन आर्य्य रखते थे। इसलिये स्वभावतः क्रमशः ज्ञानवृद्धि का वाद (बिना निमित्तकारणके) कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अस्तु हमने देखलिया कि जिस प्रकार कपिलके दर्शनका परिवर्तित रूप चेतनाद्वैत (माया) वाद, केवल एक निर्गुण ब्रह्मकी सत्ता स्वीकार करनेसे उलझनोंमें पड़ा हुआ है, उसमें भी कहीं

---

* एषमृगाङ्कोऽपि निजोपलमयकलशमुखात्। अच्छाच्छामविच्छिन्न-धारांनिजकराभिमर्शात् आप दयन्॥ चम्पू रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक २३

† आईन अकबरी फैज़ीकृत का आंग्ल भाषानुवाद पृष्ट १०। अङ्गरेजी अनुवाद इस प्रकार है :—

" There is also a Shining Stone called Chandra Kerant which being exposed to the moon'sbeams drops water.

बढ़कर दूसरा परिवर्तित रूप, जड़ाद्वैत (एकाणु) वाद विवादका विषय बन रहा है और उसके लिये अपनी सत्ताका स्थापित करना असम्भवसा होरहा है । अतः कपिलके दर्शन का शुद्धरूप ब्रह्मके अतिरिक्त जीवात्मा और प्रकृति की नित्य सत्ताही स्वीकार करने के योग्य है। इसीसे विश्वके गूढ़ से गूढ़तम प्रश्न हल हो सकते हैं सेमुश्ललेंग के प्रश्नों का भी उत्तर सुगमतासे दिया जा सकता है ।

ग्यारहवां परिच्छेद ।

जीवात्मा और पश्चिमी अध्यात्मवाद सङ्घ

इस भूमिकाके समाप्त करनेसे पहले दो शब्द पश्चिमी अध्यात्मवाद सङ्घों के सम्बन्धमें कह देना, कदाचित् अनुचित न होगा, इस सङ्घ की ओरसे समय २ पर परीक्षण कियेगये, और जिनका विवरणसङ्घकी ओरसे प्रकाशित कार्य्यविवरणों (रिपोर्टों) में दिया गया है, उनपर और उनपर किये आक्षेपोंपर विचार करनेसे कोई भी जिज्ञासु सुगमतया इस परिणाम पर पहुंच सकता है कि सङ्घके वे परीक्षण जो जीवित पुरुषोंके प्रभावित करनेसे सम्बद्ध हैं, अर्थात् जिनमें एक अथवा एकसे अधिक पुरुष अपना प्रभाव किसी माध्यमपर अप्रकट (आत्म) साधनों से डालते हैं, और जिसे सङ्घकी परिभाषामें " परिचित ज्ञान " कहते हैं, स्वीकार किये जाने योग्य हैं, परन्तु वे परीक्षणजो

मृतात्माओंके बुलाने, उनसे प्रश्नोत्तर करने, उनका चित्र उतारने आदि से सम्बद्ध हैं, विवादास्पद हैं। किये हुए आक्षेपोंमें प्रमाण दिये गये हैं, और घटनाओंका उल्लेख कियागया है, कि किस प्रकार कतिपय पुरुषों ने इस प्रकारके संघों का माध्यमादि बनना अपना व्यवसाय बनाया हुआ है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि निकट भविष्य ही में इन प्रश्नों का एक अथवा दूसरी प्रकार से हल होगा, क्योंकि पक्ष और विपक्ष दोनों ही उद्योगशील बन रहे हैं, और अधिक संभावना यही है कि ये परीक्षण असफल सिद्ध होंगे, क्योंकि आवागमन का प्रसिद्ध भारतीय सिद्धान्त जो अब फिर नये सिरेसे पश्चिमी जगत्में प्रतिष्ठित होरहा है, वहभी इन परीक्षणोंका विरोधी है, जो कुछ हो हमें इनके निर्णय करने के लिये कुछ काल प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

स्थान :—नारायण आश्रम
रामगढ़ (नैनीताल)
ज्येष्ठ, शुक्ला ५ सम्वत्
१९७९, विक्रमी।

नारायण प्रसाद
वानप्रस्थी।

आत्म दर्शन

* ओ३म् *

आत्मदर्शन

प्रथम अध्याय

कतिपय प्राचीन तथा पूर्वीय जातियोंमें प्रचलित आत्म विचार।

पहला परिच्छेद।

प्रारम्भ

सूर्य्यसिद्धान्तादि ज्योतिष ग्रंथोंमें वर्णन है कि यह सृष्टि जिसमें स्थित प्राणियोंकी सत्ता पर, हम एक दृष्टि डालना चाहते हैं, दो अरब* वर्षके लगभग हुये जब उत्पन्न हुई थी, और अभी दो अरब वर्षसे अधिक कालतक स्थित रहकर प्रलय को प्राप्त होगी। बीते हुये विस्तृत कालमें पृथ्वीके भिन्न २ देशों

---

* सृष्टिकी अवधि ४ अरब ३२ करोड़ वर्षकी है जिसमेंसे अबतक एक अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ०२१ वर्ष बीत चुके हैं। यह सृष्टि संवत् है, जो प्राचीन कालसे प्रचलित चला आता है।

में अनेक जातियोंका अभ्युदय और पतन हुआ। किन्हीं किन्हीं जातियोंका तो अब पृथ्वीतल पर चिन्ह भी बाकी नहीं है, कुछ घिसे घिसाये अङ्क कागजके पृष्ठों पर उनकी सत्ताकी सूचना देने के लिये अवश्य बाकी हैं। कुछेक प्राचीन जातियां पश्चिमी सभ्यतामानियों द्वारा निकटभूत* हीमें नष्ट हुई और कुछ नष्ट हुआ चाहती हैं। इन जातियों द्वारा समय समय पर अनेक विद्याओं का प्रचार हुआ। प्रचलित विद्याओंमेंसे, जो प्राकृतिक गतिके अनुकूल थीं, अब तक किसी न किसी रूपमें, बाकी हैं। अन्य सब नष्ट भ्रष्ट होगईं।

अवशिष्टविद्याओंमेंसे सबसे अधिक विवाद परोक्षका विषय होनेसे, आध्यात्मिक विद्याओंपर, प्राचीन कालसे अबतक होता चला आया है।

अध्यात्मविद्याओंमें मुख्यतया विवादास्पद ईश्वर और जीव की सत्ता है। हम इन पृष्ठोंमें इस समय केवल जीवकी सत्ताका विचार करना चाहते हैं। जीवकी सत्तापर विवाद उपनिषत्काल से लेकर अबतक चल रहा है। यदि एक समय नचिकेता † इसी प्रश्नकी जिज्ञासाके लिये यमाचार्यकी सेवामें उपस्थित हुआ था और आचार्य्यने विषयकी गहनता यह कह कर प्रदर्शितकी थी,

---

* बृटिश गायनाकी प्राचीन जातिका अन्तिम पुरुष १९१५ ई० में मृत्युको प्राप्त हुआ था, अब प्राचीन गायना निवासियोंका चिन्ह पृथ्वी तलपर बाकी नहीं रहा।

† देखो कठोपनिषद् प्रथमवल्ली श्लो० २०

प्राचीनकालमें देवताओं (उत्कृष्ट विद्वानों) ने भी इसमें विचिकित्साकी थी, तो आजकल भी पश्चिमके धुरन्धर वैज्ञानिक हैकल, हक्सले इत्यादि भी उसी प्रकार संदिग्धावस्थामें विषयके अथाह-सागरमें डुबकियां लगा रहे हैं। अस्तु हम चाहते हैं कि इस विषयका विस्तृत इतिहास जितना मिल सकता है, विचार और ज्ञान-वृद्धिके उद्देश्यसे लिखें, उस समयसे जब पृथ्वी तलपर मनुष्य जाति का प्रथमवार प्रादुर्भाव हुआ था और अब तक जीवात्माकी सत्ता किस २ प्रकार भिन्न २ देशों और जातियोंमें मानी जाती रही है, इस पर भी एक दृष्टि डालें।

दूसरा परिच्छेद

असीरियन और वैवेलोनियन लोगोंके आत्म सम्बन्धी विचार जो उनकी प्रार्थनाओंसे प्रकट होते हैं।

असीरियन और वैवोलेनियन जातिके पुस्तकालय जो पृथ्वी की तहमें से, पश्चिमी विद्वानों के उद्योग से, खोदकर निकाले गए हैं, संसार की अद्भुत वस्तुओंमें से एक हैं। इनमें विलक्षणता यह है कि ईंटों पर लिखे हुए लेख ही इस पुस्तकालयके पुस्तक हैं। उनकी भाषा आजकल पृथ्वी तल पर न कहीं बोली जाती और न समझी जाती है। प्राचीन भाषा वेत्ताओंने उन लेखोंके पढने का सराहनीय यत्न किया है। परन्तु यत्न अभीतक इतना असफल है कि कभी२ एक ही लेखका आशय एक व्यक्ति

कुछ समझता है तो दूसरा कुछ समझने लगता है। कभी२ एक ही व्यक्ति एक बार कुछ तो दूसरी बार कुछ और समझता है। अस्तु इस प्राचीन जातिकी कुछ प्रार्थनायें यहां अंकितकी जाती हैं:—

(१) दया की रेखायें, जो तेरे मुखड़े पर नित्य चमक रही हैं, मेरे दुखोंको दूर करे।

(२) मेरी भूलें, मेरे पाप दूर हो जावें।

(३) मुझे उनकी समीपता प्राप्त होवे क्योंकि मैं उन उच्च देवोंका उपासक हूं और उनकी शक्तिके सम्मुख शिर झुकाता हूं।

(४) वह शक्ति सम्पन्न मुखड़ा मेरी सहायता की ओर फिरे, और तारोंके सदृश चमके और मुझे प्रसन्न और अत्यन्त सम्पत्तिवान् बनावे।

(५) वह पृथ्वी की तरह, प्रत्येक प्रकार की भलाई और प्रसन्नता प्रदान करे।

(६) उस दिन जब मेरे लिए मृत्यु आज्ञा हो, जिससे मुझे नष्ट होना पड़े, हे ईश्वर! मुझ पर दया की दृष्टि करना।

(७) मेरे अपराध क्षमा हों और मैं पापों से छूट जाऊं *

अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका कि इस प्राचीन जातिका धर्म प्रवर्तक कौन था और उसके धर्मके मुख्य २ सिद्धांत क्या थे? इन प्रार्थनाओंसे ईश्वर और जीव दोनोंमें, इस जातिका विश्वास प्रकट होता है।

---

* Last Essays by Max Muller Vol. II p. 66&67

तीसरा परिच्छेद

पारसी मत और आत्म विचार।

पारसीमतके एक आचार्य्य सासान प्रथम ने जीवात्माको नित्य प्रकट करते हुये उसका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना बतलाया है। * पांचवें सासान ने इसी शिक्षा का विस्तार करते हुये उसका समर्थन किया।

एक और जगहपर आत्माका वर्णन करते हुये उसको एक अमिश्रित द्रव्य और प्रयत्नशील कहा है और बतलाया है कि परस्पर बात चीत करते हुये मनुष्य "हम" और "तुम" शब्दों से उसीका संकेत करते हैं वह शरीरका निर्माण करता है, न शरीरके मेलका परिणाम है और न प्राकृतिक अणुओंमें (पानीमें लवणके सदृश) मिला हुआ है। †

एक और स्थानपर लिखा है कि आत्मतत्त्व और आत्मसत्ता का ज्ञान केवल आत्माको प्राप्त होता है। शरीरकी अन्य किसी शक्ति (इन्द्रियादि) से यह ज्ञान प्राप्त नहीं होसकता। मृत्यु होनेपर जीव जो मरता नहीं है अच्छी और बुरी बातोंको (जो उसनेकी थीं) जानता है यदि यह ज्ञान अच्छी बातों (कर्मों) का है तो उसे प्रसन्नता होती है अन्यथा क्लेश। शरीरके अवयवों के नष्ट होजानेसे आत्माके ज्ञानमें कुछ भी हानि नहीं होती।

* सासान प्रथमके पत्रका खंड १९

† दसातीर खंड ६७-६८

जो पुरुष (अपने ज्ञान और कर्म्मोंकी दृष्टिसे) उच्चतम होते हैं उनकी मुक्ति होजाती है उससे निम्न श्रेणीके पुरुष जो शारीरिक बन्धनोंसे छुटकारा प्राप्त करचुके हैं देवताओं में सम्मिलित हो जाते हैं, और वे पुरुष जो अधिकतर शुभ कर्म तो करते हैं परन्तु शरीरके बन्धनों से मुक्त नहीं हुये हैं उन्हें उच्चगति प्राप्त करनेके लिये मनुष्ययोनिमें बार २ आना पड़ता है, इस चक्रको "फरहंगसार" कहते हैं और जो प्राणी अशुभकर्म भी करते हैं उन्हें पशुयोनिमें जाना पड़ता है इस चक्रको "नंगसार कहते हैं।*

चौथा परिच्छेद।

मिश्रके प्राचीन विचार।

आदिम मिश्र निवासी जीवको अमर मानते थे। मिश्रका सभ्यताकाल पश्चिमी विद्वानोंके मतानुकूल ईसासे ४००० वर्ष पहलेका है। मिश्र निवासी मनुष्यकी आयुकी मर्यादा १०० वर्ष की बतलाते थे और जीवके अमरत्व सम्बन्धी उनके विचार इस प्रकार थे:—

"छै (६) तत्त्व ऐसे हैं जो नष्ट नहीं होते केवल संयुक्त वियुक्त होते रहते हैं।

(१) पहला तत्व "का" है अर्थात् "मनुष्यका ईश्वरीय अंश"

---

* सासान नख्सुस्तका पत्र (खंड १८-१९) फारसी भाषाकी तफ़सीरमें।

यह अंश बिना शरीरके जीवित रह सकता है परन्तु इसके बिना शरीर जीवित नहीं रह सकता । उसके लिये भोजन अपेक्षित था । जब कभी वह मिश्रके मृतपुरुषोंमें, जिन्हें "मम्मी" कहा जाता था, जाता था तब उसे वहांके लोग समझते थे कि बढ़ रहा है। उसकी सत्ता स्वतन्त्र थी और मनुष्य शरीरसे पृथक् होकर वह अन्तिम निर्णय दिवससे पूर्व उन्हें नहीं मिलता था ।

(२) दूसरा तत्त्व " अब" अर्थात् "हृदय" है । यह भी अमर माना जाता था मनुष्यके मरने पर जब शवमें उसे सुरक्षित रखनेके लिये मसाला भरा जाता था तो हृदय निकाल लिया जाता था और उसकी जगह एक बनावटी हृदय शवमें रक्खा जाता था, वह साधारणतया एक हरे रंगके कड़े पत्थर पर एक तुच्छ जन्तुको, जिसे गुबरीला कहते हैं, चित्र खोदकर बनाया जाता था । शरीरसे पृथक् होकर हृदय परलोककी यात्रा करते हुये, मनुष्योंसे अन्तिम निर्णय दिवस निर्णयशालामें मिला करता था।

(३) तीसरा तत्त्व "बा" अर्थात् "जीव" है । इस तत्त्व का शरीर एक पक्षीके और शिर मनुष्योंके सदृश बतलाया जाता था।* मृत्यु होनेपर जीव उड़कर देवताओंके पास चला जाता

* जीवकी यह कल्पना, यूनानियोंके पंखवाले और रोमके तितली के आकारवाले जीवकी कल्पनासे मिलती जुलती है । मध्यकालीन जीवकी वह कल्पना, कि जीव एक छोटे नंगे बालकके सदृश है और मरते समय जीवके मुंहसे निकला करता था, सम्भव है इसी मिश्री कल्पना के आधार पर की गई हो ।

था परन्तु समय २ पर अपने शव "मम्मी"को देख आया करता था। यह भी भोजनकी आवश्यकतासे स्वतंत्र नहीं था।

(४) "सहू" चौथा तत्त्व बतलाया जाता था, "सहू" मनुष्य शरीरकी ऊपरी खाल (त्वचा) का प्रतिनिधि रूप है। उसको मिश्रवासी "मम्मीवेद" अर्थात् शवके लपेटनेकी वस्तु कहते थे।

(५) पांचवां तत्त्व "काहिब" अर्थात् "छाया" भी एक स्वतंत्र तत्त्व समझा जाता था, जब उसका स्वामी (मनुष्य) मरता था तब छाया तत्त्व देवलोकीय राज्यमें चला जाता था।

(६) छठा तत्त्व "उसीरिस" मम्मीका दूसरा भाग अर्थात् मृतपुरुष बिना जीव और जीवनके है, इस तत्त्वके साथ एक प्रकारकी चेतना होती जो विचार और इन्द्रियानुभव तक सीमित रहती है। इस तत्वकी कल्पनाके सम्बन्धमें मिश्रवासियों का कथन था कि "मम्मी" दुबारा नहीं उठे, वह अपना कार्य पूरा कर चुकती है, वह सदैव अपने ही स्थान पर रहती है। यह तत्त्व " मम्मी " का स्थानापन्न होता है और परलोकगत रूहोंके निवास स्थान पर चला जाता है। इस यात्राका सविवरण वृत्तान्त एक पुस्तकमें मिलता है जिसका नाम "मरे रूहोंका पुस्तक" (The Book of the dead) है। यात्राके अन्तमें "उसीरिस" "द्विगुण सत्यशाला" में पहुंच जाती हैं और कतिपय न्यायाधीशों द्वारा उनका न्याय होता है। न्यायका प्रकार यह

होता है कि मृतपुरुषका हृदय, दूसरे पल्ड़ेमें रक्खे हुए "सत्यके चिन्ह" वाली तराजूमें तोला जाता है। यदि तौल ठीक उतरी ता "थोठ" देवताकी आज्ञानुसार हृदय मृतपुरुषके पास पहुंच कर शरीरमें यथास्थान जुड़ जाता था।

इस क्रियाके साथही अन्य सब तत्त्व भी "उसीरिस" को मिल जाते थे, इस प्रकार पूर्णताको प्राप्त 'उसीरिस' का देवगण अपने लोकमें ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु यह निरन्तर स्थित जीवन दुष्टाचारियोंके लिए अप्राप्य है, उनके तत्त्वोंका पुनः सम्मेलन नहीं हो सकता। यद्यपि ऐसे पुरुषोंका जीव नष्ट नहीं हो जाता, तो भी देवताओंके लोक और संगतिमें न रहनेसे "बे आब" सा रहता है *

पांचवां परिच्छेद

कनफ्यूशस का मत।

कनफ्यूशस सम्पादित चीनका इतिहास, जिसे चीनकी भाषा में "शूकिंग" (Shooking-Book of History) अर्थात् इतिहास का पुस्तक कहते हैं इसवी सन् से २३५६ वर्ष पूर्वतक

---

* डाक्टर वीडिमेनके पुस्तक "मिश्रमें अमरत्व विचार" (The Doctrine of immortality in ancient Egypt by Dr. Wiedemann) के आधार पर यह वृत्तान्त अङ्कित हुआ है।

का इतिहास है * । इसके अतिरिक्त दो और भी पुस्तकें हैं जिनके नाम "इहकिंग" (Iihking-Book of changes) और "शीकिंग" (The King-Book of Odes) हैं । इनमें से अन्तिम पुस्तक कनफ्यूशस का सम्पादित है। इनमें चीनके प्राचीन मतों का वर्णन था, परन्तु कनफ्यूशस स्वभावतः सांसारिक पुरुष था, परलोक सम्बन्धी बातोंसे उसे बहुत थोड़ा सम्बन्ध था, अतः उसने प्राचीनमत को पुनर्जीवित करते हुए परलोक सम्बन्धी बातों को एक प्रकारसे छोड़ ही दिया था। कनफ्यूशसके प्रत्यक्षवादी होनेका कुछ अनुमान उसके एक उत्तरसे होसकता है जो उसने अपने एक शिष्यको, मृत्युके सम्बन्धमें कुछ पूछने पर, दिया था :—"जब तुम जीवन ही को नहीं जानते तब मृत्यु को किस प्रकार जान सकते हो"। † अस्तु जो कुछ हो इन पुस्तकोंमें कनफ्यूशसका मत इस प्रकार पाया जाता है।

मनुष्यों को भाग्य (Destiny), परोपकार, सदाचार, अधिकार और विश्वासके नियमोंके साथ स्वर्गसे प्राप्त होता है। ....भाग्यही जीवन देता और भाग्य ही मृत्यु को प्राप्त कराता है। ....मनुष्योंके सदृश वस्तुओं का भाग्य है परन्तु वे भाग्यको नियमित नहींरखसकती,........भाग्यका स्वर्ग(Heaven)

---

* चीन निवासियों के लिखे हुए इससे पूर्व के वृत्तान्त भी हैं परन्तु पश्चिमी लेखक उन्हें इतिहास का दर्जा नहीं देते । इसीलिये उन पुस्तकों का अङ्गरेजी भाषा में भी अभाव है ।

† Confucianism by Robert K. Donglas p. 68.

से वही सम्बन्ध है जो स्वभाव (Nature) का मनुष्यसे।........ परन्तु प्रज्ञावान् पुरुष के अधिकार स्वर्ग * से कम नहीं होते †। कनफ्यूशस प्राणियों में पृथक् जीवात्माका होना मानताथा, और उसका विश्वास था कि दिवंगत पुरुष की आत्मा विना शरीर के ही बाकी रहती है। इतिहास के पुस्तकमें जिसका ऊपर उल्लेख होचुका है प्रारम्भही से इस प्रकारकी आत्माओंकी पूजा का विधान मिलता है, ये आत्मायें न केवल पुरुषों की होती हैं, अपितु वायु, अग्नि, पहाड़ और नदी आदि की भी होती हैं; और सभी की पूजा होती है, इनका दर्जा स्वर्ग और मनुष्यों के बीच का है। इन आत्माओं के साथ २ ही पिशाचोंकी भी सत्ता मानी जाती है । कनफ्यूशस मृतपितरों और शरीररहित आत्माओंको इस प्रकार "बलि" प्रदान करता था, मानों वे साक्षात् उसके सम्मुख उपस्थित है । इन आत्माओंका काम यह समझा जाता था कि वे अपने उत्तराधिकारियों की रक्षा करती हैं और उनके गृह कार्य्योंपर दृष्टि रखती हैं। मृतराजाओं की आत्माओंसे उनके उत्तराधिकारी राजकार्य्योंमें उनकी अनुमति लिया करते थे, और इस प्रकार अनुमति लेने के बाद अपनी आज्ञाओं को उन (आत्माओं) के बल पर निर्भर होना प्रकट भी

---

* कनफ्यूशस का तात्पर्य्य स्वर्ग (Heaven) से ईश्वर की सत्ता से मिलता जुलता प्रतीत होता है परन्तु ईश्वर के लिये उसने "शैंगटी" शब्द का प्रयोग किया है।

† Confucianism by Robert K. Douglas p. 75-78.

कर देते थे। और इन आत्माओंके द्वारा ईश्वर से कुछ प्राप्त होने की प्रार्थना भी करते थे।

पूजामें सबसे उच्च स्थान प्राचीन चीनमें "टी" (Te) या "शैंगटी" (Shang to-God) अर्थात् ईश्वर का था और ईश्वर की पूजा स्वर्ग और भूमि को बलि प्रदान करनेके द्वारा की जाती थी। *

लाउजी का मत।

चीनमें कनफ्यूशस मतके सिवा एक दूसरा मत ताउमत Taouism) के नामसे प्रचलित है यह मत भी लगभग उतना ही पुराना है जितना कि कनफ्यूशस मत। इस मतका प्रवर्तक लाउजी † (Iaoutoze) था, लाउजी कनफ्यूशससे ५० वर्ष पूर्व जन्मा था परन्तु वह चिरकाल तक एकांत निवास करता रहा। इसलिए उसके मत का प्रचार कनफ्यूशस के बाद हुआ, लाउजीके संबंधमें अनेक अलौकिक बात उसके अनुयायियों द्वारा रचे ग्रन्थोंमें, लिखी पाई जाती हैं। जैसे कहा जाता है कि लाउ-जी ८१ वर्ष तक अपने माताके गर्भमें रहा और जब उत्पन्न

---

* Confucianism by Robert K. Donglas p. 79-84.

† इस नामका शुद्ध उच्चारण क्या है इसमें मत भेद है कोई "लाउजी" कोई "लाउटर्जी" कोई "लाउटी" कहते हैं।

हुआ तो उसकी दाढी और मूछें सफेद हो चुकीं थीं * उसकी आयु बहुत लम्बी चौडी कही जाती है। २०० वर्ष तक तो उसके पास एकही नौकर रहा था और उसके वेतनका झगडा उस समय हुआ था जब वह पश्चिम की यात्रा शुरु करना चाहता था। इत्यादि कनफ्यूशस और लाउजीके विचारोंमें बहुत अन्तर था। कनफ्यूशसका मत तो चीनके पुरातन मतोंका ही नवीन रूप था परन्तु लाउजीका मत भारतीय उपनिषदोंके आधार पर खड़ा किया गया था। ताउमत लाउजीके एक पुस्तकके आधार पर चला था जो ५००० अक्षरोंमें पूरी हुई थी पुस्तकका विषय ताउ (Taou-way) अर्थात् मार्ग और "तिह" (Tih-virtue) अर्थात् भलाई था। किन्हीं २ का मत उसके अनुयायियोंमेंसे यह है कि उसने ९३० पुस्तकें रची थीं परन्तु यह बात उतनी ही प्रतिष्ठित हो सकती है जितना कि यह कहना कि १८ पुराण व्यास रचित हैं। उपर्युक्त ५००० अक्षरोंवाले पुस्तकका नाम "ताउ-तिह किंग" (Taou tih king) अर्थात् "मार्ग और भलाईका पुस्तक" था। पुस्तकके १४वें अध्यायके आरम्भमें लाउजीने अपने त्रैतवाद को इस प्रकार लिखा है:—जो चक्षुग्राह्य होने पर भी दिखलाई नहीं देता "खि" अथवा "खी" (Khi) है। वह जो श्रोत्र ग्राह्य होने पर भी कानोंसे सुनाई

* लाउजी शब्दका अर्थ है "बूढ़ा लड़का" यह नाम उसका इसी लिये पड़ा था कि वह ८१ वर्ष तक माताके गर्भमें रहा और बूढ़ा हो कर पैदा हुआ था।

नहीं देता "हि" अथवा "ही" (Hi) है और वह जो पहुंच की सीमामें होने पर भी स्पर्श नहीं किया जाता "वी" (wie) है। इस प्रकार खि, हि, वी यद्यपि तीन व्यक्ति पश्चिमी लेखकों द्वारा कल्पना किये गये हैं परंतु एक ही सत्ता (ईश्वर) के तीन गुण प्रतीत होते हैं जिन्हें उपनिषदोंमें अरूप, अशब्द और अस्पर्श कहा गया है * "ताउ" शब्द भी यद्यपि मार्गवाचक हैं परंतु लाउजीके पुस्तकसे प्रतीत होता है कि उसने इसे और किसी अर्थमें प्रयुक्त किया है। वह कहता है कि समस्त द्रव्य ताउसे उत्पन्न होते, उसीके अनुरूप रहते और अन्तमें उसीमें मिल जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उसने "ताउ" शब्दको जगत्के अनादि निमित्त कारण ईश्वरके लिये ही प्रयोग किया है। यह उत्तम पुरुषके लिये लिखता है कि उसमें प्रत्येक सद्-गुण होता है वह उदारता पूर्ण और सार्वलौकिक होनेके साथ २ स्वर्गीय पुरुषके सदृश होता है और वह मूर्तिमय "ताउ" होता है और अमरता उसीका भाग है। ताउके लिये उसने एक दूसरे स्थानपर लिखा है कि स्वर्ग और पृथ्वी और स्वयं देवताओंका

* पश्चिमीय लेखकोंमेंसे "एमियट" (Amiot) ने इस त्रैत-वादको ईसाई त्रैतवादका रूप दिया है। "रिमूसैट" (Remusat) ने एक पग और आगे बढ़ाकर "रिव" का उच्चारण आई (I) कल्पना करके I. H. V. अक्षरोंसे "जहोवा" [यहूदियोंमें ईश्वरका नाम] नाम सिद्ध करनेका यत्न किया है। यद्यपि इन लेखकोंको यह स्वीकार है कि ताउ मत भारतीय "वेदान्त" मतका ही रूपान्तर है फिर भी जहां तहां उसे पश्चिमी शिक्षाके अनुरूप सिद्ध करनेका यत्न किया है।

भी कारण वही है, उसीको जगदेव कहना चाहिये। उसके लेखों से यह भी प्रकट होता है कि वह "ताउ" को ईश्वर मानने के साथ जीव भी उसीको मानता है, उसका कथन है कि वह (ताउ) प्रत्येक प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट होता है, वह प्रविष्ट होता, बढ़ता, भोजन करता और उत्पन्न करता है और इस प्रकार पूर्णताको प्राप्त होता है। वह सब कुछ है और कुछ भी नहीं। वह विश्वरूप है वही "अणोरणीयान् महतो महीयान्" है। समस्त प्राणियोंकी रक्षा करता और बल देता है, वही स्वर्ग है, वही पृथ्वी है †। एक और पुस्तक जो लाउजीके बाद लिखी गई थी और जिसका नाम "दण्ड और फलका पुस्तक" है। उसम अनेक उत्तम शिक्षाओंका वर्णन है, उसीमें एक जगह लिखा है कि छोटे और बड़े अपराधोंकी संख्या कई सौ है, उन सबको छोड़ देने हीसे प्राणी अमर हो सकता है। फिर अमरता के भी दो भाग हैं एक स्वर्गकी अमरता, दूसरी पृथ्वीकी अमरता; स्वर्गकी अमरता प्राप्त करनेके लिये १३०० अच्छे कर्म करने चाहियें, और पृथ्वीकी अमरताके लिये केवल ३००। इसी पुस्तक में लिखा है कि मृत पितरोंकी आत्माओंको बुरा मत कहो ‡।

---

† Taouism by Robert K. Donglas p. 179-216

‡ Do. page 258.267.

दूसरा अध्याय

कतिपय प्राचीन पश्चिमी जातियोंमें प्रचलित विचार।

पहला परिच्छेद

सर्वजीवत्ववाद (THEORY OF ANIMISM)

इस वादका सार यह है* कि जीव यद्यपि अमर है तथापि प्रकृति (पञ्चभूतों) से पृथक् नहीं होसकता, हां प्रकृति को योनि और गति देना उसका काम है। विश्व इस प्रकारके जीवों से भरा हुआ है। जीवको इस वादके अनुयायी अमर कहते थे परन्तु अधिकांशमें उसकी सत्ता उसकी स्मृति पर निर्भर होती थी। सदाके अमरत्वके विचारसे वे अनभिज्ञ थे। जीवकी स्थिरता उस की स्मृति की स्थिरता पर निर्भर थी, अर्थात् जब तक दिवङ्गत प्राणीका प्रेम, उसके शरीरादिके उत्तम प्रभाव, अवशिष्ट जगत् में बाकी रहते थे, उसकाआत्मा भी जीवित रहता थी। स्मृतिके नाश होजाने से जीवका भी नाश होजाता था।

---

* क्रोली साहिब के पुस्तक "जीव सम्बन्धी विचार ('The Idea of soul by A. E. Crawlay p. 208-212) के आधार पर यह वाद लिखा गया है।

इस वादके ही प्रभाव से केनाडाके प्राचीन निवासी मानते थे कि यदि शरीरमें छुरी भोंक दीजावे तो जीवों से रक्त स्रोत प्रवाहित होने लगेगा।

यौरुपके मध्यकालीन युगमें न केवल जीवित शरीर जलाये गए, किन्तु जीवोंकेभी नरक की अग्निमे जलनेका विश्वास प्रचालित था। एक जाति विशेष में जिसे "काफ़िर" नाम दिया गया है, यह विश्वास प्रचलित था कि जुलाब देने से न केवल शरीर मल रहित होता है, अपितु आत्माके अशुद्ध विचार भी निकल जाते हैं। इसी विचारके प्रभाव से काफ़िर जातिके पुरुष, अपनेबालक बालिकाओं के हृदय से ईसाई मतके प्रभावको, जो उनपर मिशन स्कूलोंमें पढ़ने से पड़ता था, निकालने के लिये, उन्हें जुलाब दिया करते थे।

चीन, ब्राजील और आस्ट्रेलियाके आदिम निवासी शरीर के काटने या बिगाड़नेका प्रभाव जीव पर होना, मानते थे। परन्तु यदि जीव शरीर से निकल चुका है तो शवके काटने आदिका कोई प्रभाव उसपर नहीं होसकता।

"फिज़ी" निवासियोंके मतानुसार मरने पर जीवके अणु उसी प्रकार छिन्न भिन्न होजाते थे जिस प्रकार शरीर के।

इन जातियोंके विश्वासानुसार जीव एक फड़फड़ाने या उड़ने वाली वस्तु है जो शीघ्रतासे आती और शीघ्रतासे ही चली जाती है, परन्तु उसका पकड़ना अथवा रोकना कठिन है, इसलिये

उसे पक्षियों, तितलियों, पतंगों, मक्खियों, छिपकली और सर्प, उड़ने अथवा शीघ्रताके साथ चलने वाले क्षुद्र जन्तुओंसे उपमा दी जाती थी, ये सब चिन्ह जीवके हैं जो चेतनाके प्रवाहके साथ २ बहता है। और जो एकाग्रचित्त ही से रोका जा सकता है।

जीवकी अमरताका प्रारम्भिकरूप इन जातियोंके मतानुसार यह है कि यद्यपि प्राणी मरजाता है परन्तु उसकी स्मृति अन्योंके मस्तिष्कोंमें बाकी रहती है।

जिस प्रकार जीवके अमरत्व का उन्हें अधूरा ज्ञान था उसी प्रकार वे स्थिर मृत्युके विचारसे भी अनभिज्ञ थे।

अपनी स्थितिके अनुकूल वे इस प्रकारके विषयों पर अधिक विचार करने से बचते थे।

तो भी मृत्यु सम्बन्धी उनके विचार ये थे कि मृत्यु प्राकृतिक हेतुओं से कठिनता से होसकती है। यदि कोई जादूगरी से किसीको रोगी न करदेवे अथवा मार न देवे, अथवा किसी अत्याचारसे कोई मारा न जावे तो वह प्राणी असीम कालतक जीवित रह सकता है।

जीव अवस्थानुसार शरीरसे पृथक् होता और हो सकता है, उसका शरीरसे सम्बन्ध, उनके सरल अन्तःकरणानुसार, एक गुप्त भेद है, जीव जब शरीरमें होता है तो शरीरकी वृद्धिके साथ

साथ ही बढ़ता है और शरीरसे चला भी जाता है और शरीर मिलने पर प्रकट होजाता है।

जब आंखें बंद करता है तब प्राणी जीवको और जब खोलता है तो शरीर को देखता है।

दूसरा परिच्छेद

प्राचीन अन्य देशी जातियों में आवागमन।

आर्य्योंकी प्रथानुसार आवागमनका सिद्धान्त प्राचीन जातियोंमें प्रचलित था। इस सिद्धान्तके अनुयायी मनुष्य, पशु पक्षी और वृक्षोंकी आत्मामें कोई भेद नहीं करते थे, मनुष्यका आत्मा सुगमतासे पशु पक्षी और वृक्ष योनियोंमें जा सकता है। शरीर जीवका स्थायी निवास गृह होता है। कर्मफल पानेकी दृष्टिसे जीवका एकसे दूसरे शरीरमें जाना अनिवार्य है।

प्राचीन मिश्र और मिश्रसे जाकर प्राचीन यूनानमें भी आवागमन प्रचलित था। मिश्रमें आवागमन किस प्रकार माना जाता था, टेलर साहिबका मत इस विषयमें उपर्युक्त कथनसे कुछ भिन्न है। वे कहते हैं कि प्राचीन मिश्रमें आवागमन नहीं, किन्तु गुप्त भेदोंसे सूरत बदल जाने का वाद प्रचलित था * टेलर साहिबके इस मतके सर्वथा विरुद्ध वाकर साहिबका मत

---

* Tylor's primitive culture Vol. II.

है, जिन्होंने स्पष्ट रीतिसे आवागमनका प्राचीन मिश्रमें माना जाना प्रमाणित किया है *

कुछ कालके बाद आवागमनके स्थान पर कहीं २ मुर्दोंके जी उठनेका मत प्रचलित हुआ। प्रथम यह मत एशियामें प्रचलित हुआ। और प्रचार नहीं हुआ। उसके बाद "पाल" के प्रभावसे पूर्णरूपसे इस वादका प्रचार खीष्ट मतावलम्बियोंमें हुआ। और प्रचार ही नहीं हुआ अपितु उनका मुख्य सिद्धान्त बन गया।

इस परिवर्तनके बाद भी आवागमन यहूदियोंकी फिलासफी का एक अङ्ग बना रहा।

मैनीकियन (तीसरी शताब्दीमें परशियामें प्रचलित एक पन्थ) नैस्टोरियन (पांचवीं शताब्दीमें रूममें प्रचलित एक ईसाई पंथ) और "हरमन" पर्वतकी गुफाओंमें रहनेवाले पुरुष भी आवागमन को मानते रहे †

अस्तु आदिम निवासी जीवको आंशिक अमर और आंशिक मरणधर्मा मानते हुए भी, पुनर्जन्मको विशेष जातियोंके लिए एक प्रकारकी रियाअत समझते थे। उदाहरणके लिए टोंगा द्वीपमें पुनर्जन्मका अधिकार कुछेक विशेष जातियोंको ही माना जाता था। यही अवस्था उत्तरी अमरीकाके आदिम निवासियों

---

* Reincarnation by E. D. Walker p. 197-200.

† The Belief in personal immortality by E. S. P. Haynrs p. 13.

की थी, जहां माना जाता था कि सरदारों, चिकित्सकों और कुछ अन्योंको अधिकार था कि अपने मृत पितरकी आत्माओंके साथ तम्बाकू पियें, गावें और नाचें, परन्तु सर्वसाधारण मरनेके बाद जीवन ग्रहण करनेके अधिकारी नहीं माने जाते थे। उनके मृत पितर कब्रोंमें ही पड़े सड़ा करते थे *। इसी प्रकार कांगो निवासी मानते थे कि स्त्रियोंके लिए पुनर्जन्मकी कोई आशा नहीं।

निकारा गोआ (गायना) के निवासियोंके लिए प्रसिद्ध है कि उनका सिद्धान्त था कि यदि एक पुरुष उत्तम रीतिसे अपना जीवन व्यतीत करे तो मृत्युके पश्चात् देवताओंमें वास करता है, परन्तु यदि रोगी होकर मरता है तो उसको शरीरके साथ दुबारा मरना पडेगा †। दुबारा मरनेसे उनका तात्पर्य यह है कि "कियामत" के दिन न्याय होने पर जो पापी ठहरेगा उसको पंथाचार्यकी एक बडी लाठीसे दुबारा मरना पडेगा। यह लाठी इसी उद्देश्यके लिए उसे मिलेगी। जो लोग इस प्रकारकी लाठीकी मारसे बच जावेंगे और वे यदि ऐसे पुरुष होंगे जिन्होंने विशेष२ पन्थ परम्पराओंका पालन नहीं किया तो फिर स्वयं अपने २ देवताओं द्वारा डुबाए जाकर मारे जावेंगे।

इन जातियोंमें जीवात्मा सम्बन्धी मन्तव्य इस प्रकार माने जाते थे:—"वह जीव पतला, अप्राकृतिक, एक प्रकारकी भाप

---

* History ef Virginia by Captain Smith; quoted by Mr. Tylor (Primitive culture Vol. II.)

† Tylor's primitive calture Vol. II p. 22.

झिल्ली, अथवा जाला, अथवा छाएकी सदृश व्यक्तियोंमें जीवन और विचारका संचारक, स्वतंत्र और ज्ञानवान् शरीरके अधिष्ठातृत्व का इच्छुक, परन्तु उसके छोड देनेमें असमर्थ,सरलतासे स्थान२ पर प्रकाशित, सूक्ष्म अप्रत्यक्ष अदृश्य, तो भी शारीरिक बलका प्रदर्शक, विशेषतया मनुष्योंमें प्रकट, जागृत् और स्वप्नावस्थामें स्थिति अप्रत्यक्ष सत्ता रखते और शरीरके सदृश होते हुए भी शरीरसे पृथक् होने अर्थात् मरनेके बाद स्थित, शरीर छोडने पर भी उस शरीरसे सम्बान्धित प्राणियों पर प्रकाशित, अन्य पुरुषों और पशु पक्षियोंके शरीरों अथवा अन्य प्राकृतिक पदार्थोंमें बैठने उन पर अधिकार कर लेने तथा उनके द्वारा काम करनेमें समर्थ है*

इन पश्चिमी प्राचीन जातियोंका जीव सम्बन्धी एक दूसरा विचार यह था कि वह सूक्ष्म शरीर वाला होकर प्राणियोंके शरीरमें आता है और उनके मरने पर नंगे बालकके सदृश होकर मृतपुरुषके मुंहसे निकल जाता है। रूहानी (जीवकी) आवाज चींचीं करने अथवा धीमी बरबराहटके सदृश होती है। "रूह" की इसी प्रकारकी बोली पश्चिमी अध्यात्मवादी भी बतलाते हैं उनका कथन है कि मरने पर जैसाकि मृतपुरुषका सूक्ष्म शरीर रह जाता है उसीके अनुसार उसकी आवाज भी धीमी रह जाती है†

क्राड साहिबने एक छोटीसी पुस्तक सर्वजीवतत्त्ववाद पर

* Tylors primitive calture Vol I P. 429.

† Crawley's Idea of the soul p. 207-

लिखा है । उसमें उन्होंने पश्चिमी अध्यात्मवादियोंके लिए वर्णन किया है कि वे न केवल जीवका फोटो उतारते हैं किन्तु उसकी तोलकी भी परख करते हैं । और उनकी इस परखके अनुसार जीवकी तोल तीन और चार औंसके मध्यमें बतलाई जाती है । अस्तु जीवके अमरत्वसे सम्बन्धित इन प्राचीन जातियोंमें, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, दो विचार पाए जाते हैं एक मरण पश्चात् जीवका बिना स्थूल शरीरके रहना, दूसरा आवागमनके मन्तव्यानुसार उसका भिन्न २ योनियोंको प्राप्त होना ।

ये विचार यद्यपि इन जातियोंमें, प्रचलित थे परन्तु इनके आधार रूप "कर्म" और "फल" का ज्ञान उन्हें न था ।

टेलर साहिबके लेखानुसार भावी जीवनका विचार इन जातियोंमें अधिकतर मृतक पितृपूजाके प्रभावका परिणाम प्रतीत होता है, जिस पूजाके द्वारा वे अपना सामाजिक सम्बन्ध, मृतपितरोंसे स्थिर रखते थे । उनका विचार था कि इस पूजासे प्रसन्न होकर मरे हुए पितर अपने (छोडे हुए) परिवारकी अथवा जत्थे की रक्षा करते रहते हैं और परिवारके मित्रोंकी सहायता करते और शत्रुओंको दण्ड देते रहते हैं । उनका विचार यहभी था कि जहां इस प्रकार मृत पितरोंकी पूजा नहीं होती उस परिवार अथवा जत्थेको मृत पितरोंकी आत्मायें कष्ट दिया करती हैं ।

इस प्रकारकी पूजा के चिन्ह चीन, अरब, जापान, रोम

स्पेन आदि देशोंमें अब भी पाए जाते हैं * इस पूजाका प्रभाव ईसाई मतमें भी पाया जाता है। मसीहकी स्मृति (Doctrine of communion of Saints) तथा "समस्त आत्माओंके दिन (All Souls' day) के पवित्रोत्सव उदाहरण रूप हैं। स्पेन में इन उत्सवोंके सिवा अबभी मृत पुरुषाओंके लिए उनके मृत्युके दिन, उनकी कबरों पर रोटी और शराब रक्खी जाया करती है†

पूर्वीययोरुपके ग्रीक चर्चमें अनुयाइयोंमें भी यही प्रथा "जनाजे के भोज" (Funeral feast) के नामसे प्रचलित है।

* हिन्दुओंमें प्रचलित "मृतक श्राद्ध" भी इन्हीं जातियोंमें से आया प्रतीत होता है क्योंकि उनकी प्राचीन धर्मपुस्तक वेदादिमें इसका विधान नहीं है।

† Hayne's Personal immortality p. 18-20.

तीसरा अध्याय

यूनान देशके दार्शनिक और आत्मविचार

पहला परिच्छेद ।

यूनानके आदिम निवासियोंका मत विवरण* इलियड और उडेसी नामक प्राचीन पुस्तकोंमें मिलता है, उन्हींसे लेकर प्लेटो ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक "रिपब्लिक" के तृतीय अध्यायमें इस मतका स्पष्टीकरण किया है। इस मतके अनुयायी परलोकको प्राणियोंकी छाया मात्रसे आबाद मानते थे, और उसे प्रकाश-शून्य बतलाते थे, उनका विश्वास था कि वहां जानेवाला, वहां पहुंचकर, पहलेकी सब बातें भूल जाता है और उसका ज्ञान स्वप्नके सदृश होजाता है। इसके बाद ईसवी सन्के प्रचलित होनेसे प्रायः ७०० वर्ष पूर्व यूनानमें एक दूसरे मतका प्रदुर्भाव हुआ। इसका जन्मदाता "पीसिसट्टाइडे" (Peisistratidae) था और इसका जन्म "थ्रेस" में और प्रचार एथेंस, इटलीके

---

* इलियड और उडेसी यहांके रामायण और महाभारतके सदृश यूनानके प्रसिद्ध पुस्तक हैं, उनमें उसी प्रकारकी और उनसे बहुत मिलती जुलती कथायें भी हैं जैसा रामायण और महाभारतमें वर्णित है।

दक्षिणी भागादिके प्राय: उन स्थानोंमें हुआ जो थ्रेसके प्रसिद्ध युद्ध गायक आर्फियस (Orpheus) के निकटवर्ती थे। क्योंकि इस मतका पूज्य देवता यही गायक माना जाता था।

आर्फियसका मत

आर्फियस यद्यपि इसी लोकमें था परन्तु उसका सम्बन्ध परलोकसे भी होना बतलाया जाता है परलोकसे सम्बन्धका कारण यह कहा जाता है कि "आर्फियस वहां अपनी पत्नी" "यूरिडाइस" को लौटा लानेके लिए पहुंचाया गया था। आर्फियसके पुजारियोंने "डायोनिसस" युद्ध सम्बन्धी इतिहास भी प्रकट किया था जिसे वे ज़ियस (Zeus) का नवजात बालक समझते थे।

आर्फियसकी पूजा ईसासे पूर्व छठी शताब्दीमें एथेंसमें, कहा जाता है कि, खूब प्रचलित थीं। एथेंसमें इस मतके प्रचारका प्रभाव यह हुआ कि जत्थे २ के पृथक् देवताओंकी पूजा बन्द हो गई। आर्फियसके सिवा "इल्यूसिस" (Eleusis) का डिमेटरभी इस मतका पूज्य देवता ठहराया गया, इस देवताके पूजाविधानसे इस मतमें मानों गुप्त भेदोंके प्रवेशका श्रीगणेश हुआ। अमरता और भविष्यत्का सुख उनके भागमें आया हुआ समझा जाता था जो इस मतमें दीक्षित होते थे।

कुछ कालके बाद इस मतका सम्मेलन एक और मतके साथ हुआ जो वहां "डायुनिसस" के मतके नामसे प्रचलित था। इस सम्मेलनका कारण "पीसिस टेटस" का वह निश्चय

था जिसके द्वारा उसने "डायुनिसस" को भी इल्यूसिसके देवताओंकी गणनामें ठहराया। निदान उस समयसे लेकर मसीहकी पहली शताब्दी तक ये मत इसी प्रकार कुछ फेर फारके साथ जारी रहे। इन मतोंके प्रभावसे जो शिक्षायें यूनानके साहित्य में सम्मिलित हुई उनका विवरण इस प्रकार है:—

दुष्टाचारी पुरुष कीचड़से भरे कुण्डोंमें रक्खे जाते हैं और उसके विपरीत सदाचारी उच्च अवस्था प्राप्त करते हैं।

सदाचारियोंकी उच्चावस्था यह होता है कि उनके शिरोंके चारों ओर चमकदार वृत्ताकार रेखायें होती हैं ये रेखायें उनके कन्धे और लिपटे हुए बालोंसे ढकी रहती थीं।

ग्रीक साहित्यमें बहुधा पवित्र अग्निकी उच्चता बखानी गई है और यह भी वर्णित है कि परलोकमें मनुष्यभक्षी राक्षस भी होते हैं।

आर्फियसके इस मतकी विशेषता "जीवके अमरत्व" का विचार था जैसा ऊपर कहा जा चुका है और इसीलिए उसके मतका सङ्केत यूनानके प्रसिद्ध विद्वान् होमर, हेरोडोटस, प्लेटो आदि प्राय: सभीके लेखोंमें पाया जाता है।

यूनानके दार्शनिक भवनकी आधार शिला थैलिस (Thalis) ने रक्खी थी। थैलिस ही वहांका प्रथम दार्शनिक समझा जाता है

मिलिटसका सम्प्रदाय

थैलिसही के जीवसम्बन्धी विचार "सर्वजीवतत्त्ववाद" से मिलते जुलते हैं उसके मतानुसार

संसारकी प्रत्येक वस्तु चेतनापूर्ण और देवता या राक्षसोंसे भरपूर है और प्रत्येक प्राकृतिक गति आन्तरिक जीवकी परिचायक है। थैलिसके सिवा इस सम्प्रदायके मुख्य दार्शनिक एनैक्सिमैडर (Anaximader) और एनक्सेमिनिज (Anaximenes) हुये थे परन्तु इन दार्शनिकोंने अधिक विचार प्राकृतिक जगत्‌की उत्पत्ति और उसका उपादान कारण क्या है, इस विषयमें किया है।

इलियाका सम्प्रदाय

जेनोफेनस (Zenophanes) मेलीसस (Melessus) और पारमेनिडिस (Parmenides) इस स्कूलके मुख्य दार्शनिक थे। इन दार्शनिकोंके विचार शङ्करके अद्वैतवादकी छायामात्र है। इस सम्प्रदायमें आत्माकी पृथक् सत्ता और उसके अमरत्व पर विचारोंकी खोज व्यर्थ ही है।

हिरैक्लिटस

(Hera clitus) दुःखवादी था, जगत्‌को नित्य मानता था। अग्नि ही एक मुख्य तत्त्व है जिसके परिवर्तनसे समस्त वस्तुयें बनती हैं और अंत में अग्निमें ही लीन हो जाती हैं।

पाईथागोरस (Pythagoras)

आर्फियसके मतके प्रचारकाल ही में पाईथागोरसका प्रादुर्भाव हुआ। यह यूनानके उच्च कोटिके दार्शनिकोंमें था। इसके मतके प्रचारसे आर्फियसकी शिक्षा फीकी पड़गई।

पाईथागोरस जीवके अमरत्व और आवागमनका प्रचारक था, अपने सिद्धान्तोंकी शिक्षा देनेके लिये उसने नियमपूर्वक कए

संस्थाकी स्थापना कीथी। आर्य्योंकी प्रथानुसार वह आवागमन को कर्मफल देनेके लिये ही मानता था। उसकी यह कल्पना यह भी थी कि जीव १००० वर्ष तक कष्ट भोगनेकेलिये संसार में आता है। इस अवधिके बीतनेपर उस "लेथी" * नदीका पानी पीना होता था। प्राचीन यूनानियोंके मतानुसार इस नदी का पानी पनिसे पीने वाला अपनी पहली अवस्थाको भूल जाता था।

एनैक्सागोरस
Anuxa Goras

एक और दार्शनिक सम्प्रदायका प्रचारक था उसकी फिलोसोफी "नोअस" (nous) के नामसे प्रसिद्ध हुई। यह अपनी इसी फिलासफी ही की बदौलत एथेंसेस निकाला गया था। इसके विचार अद्वैतवाद से मिलते जुलते हैं सृष्टिके उपादान कारणका विचार करते हुए इसने प्रकट किया था कि उपादान कारणके सदृश सृष्टि की उत्पत्तिके लिये चेतन (निमित्त) कारणकी भी आवश्यकता अनिवार्य्य है।

"डीमोक्रीटस"
Democritus.

यह यूनानके उन दार्शनिकोंमें से था जिसने यूनानके दर्शन शास्त्रमें जड़वाद का प्रवेश किया था। इसने अपने मतके स्पष्टीकरण के लिये कुछ नियम बनाये जो संख्यामें छ थे और वह उन्हींका प्रायः प्रचार करता रहा, वे नियम ये थे:—

---

* पुराणोपवर्णित "वैतरणी" नदीकी स्थानापन्न यह "लेथी" नदी प्रतीत होती है। अनेक पौराणिक गाथायें यूनानियों के मतोंमें नामोंके भेदसे, सम्मिलित पाई जाती हैं।

(१) अभावसे अभाव ही होता है। भाव से अभाव नहीं होसकता। जगत्‌में जो परिवर्तन होते हैं, वे अणुओंके परिवर्तन से होते हैं।

(२) अचानक (बिना कारणके) कुछ नहीं होता। प्रत्येक घटना सकारण होती है।

(३) जगत्‌में केवल दो सत्तायें विद्यमान हैं (१) अणु (२) आकाश।

(४) अणु अगणित हैं और उनके रूपभी असीम हैं। उनके संघर्षण * से जो पार्श्विक गति और भ्रमण उत्पन्न होते हैं उन्हींसे जगत्‌की रचना प्रारम्भ होती है।

(५) संख्या, आकृति और समुदाय की दृष्टिसे वस्तु विभिन्नताका कारण अणुओंकी विभिन्नता है।

(६) जीवात्मा,सूक्ष्म, चिकने और गोल, अग्निके अणुओं से बना है। ये अणु अन्य सब अणुओंसे अधिक वेगवान् होते हैं, और समस्त शरीरमें प्रविष्ट रहते हैं उन्हींकी गतियों का परिणाम जीवन है।

इम्पीडौक्लिस
Empedocles

"डीमीक्रीटस" के जड़वादका समर्थक था, इसने अणुओंमें राग † द्वेष होनेकी भी कल्पना की। उसका विचारथा कि इसके विना संयोग

---

* बिना निमित्त कारणके संघर्षणका प्रारम्भ किस प्रकार होसकता है ?

† जिन दार्शनिक अथवा वैज्ञानिकों ने जीवकी सत्ता नहीं मानी उनको विवश होकर उसके गुणों की कल्पना प्राकृतिक सत्ताओं में करनी पड़ी। इसके विना काम चल ही नहीं सकता था।

वियोग नहीं होसकता। उसकी शिक्षा में "समर्थविशेष" † का मत भी एक विलक्षण कल्पनाके रूपमें पाया जाता है। उसने प्रकट किया कि आरम्भमें मनुष्य पशु और पक्षियोंके समस्त अवयव आंख, कान, नाक, धड़, भुजा आदि सब पृथक् २ उत्पन्न हुये पीछेसे इनका सम्मेलन विलक्षणतासे हुआ, अर्थात् कहीं तो किसी अन्यके धड़से किसी अन्यके अवयव मिलगये, और कहीं २ ठीक मेल होगया, अर्थात् कहीं तो मनुष्यके धड़से हाथीका शिर मिला, और कहीं ठीक रीति से मनुष्यके धड़ से मनुष्यका ही शिर मिला। इस प्रकारकी विलक्षण सृष्टि बनी। इनमें से जो उत्पन्न प्राणी परस्थिति के अनुकूल थे "समर्थविशेष" के नियमानुकूल बचरहे, और बाकी नष्ट होगये। इस प्रकार कटछँट कर सृष्टि ठीक अवस्था में आगई।

दूसरा परिच्छेद

सुकरात और उसके बादके दार्शनिक।

सुकरात। सुकरात, जिसे योरुपमें विज्ञानका पिता समझा जाता है, उसका मत आत्माके सम्बन्धमें इस प्रकार था:—

सुकरातने शिर्मा (Sammis) को उत्तर देते हुये कहा कि:—

"मुझे विश्वास है कि मृत पुरुष भी एक प्रकारका जीवन रखते

---

† डार्विन का "समर्थविशेषवाद" इसी मूलका उन्नतरूप है। यह उन्नति, कहना चाहिये, कि २००० वर्ष में हुई।

हैं जैसा कि पूर्वजोंने कहा है—वह जीवन पापियोंकी अपेक्षा सत्पुरुषोंके लिये श्रेष्ठतर है” *

(२) “जब तक हम यह शरीर रखते हैं और जब तक यह कुत्सित साधन (शरीर) हमारी आत्माओंसे सम्पर्क रखता है उस समय तक हम इच्छित उद्देश्यको कदापि न प्राप्त कर सकेंगे।”†

(३) “चित्तकी शुद्धता, शरीरसे आत्माको पृथक् करते हुये और पृथक् करनेकी भावनाको दृढ करते हुये आयु बिताना ही है।”

(४) “शरीरसे पृथक् होना और छूटना ही मृत्यु है।”‡

शिवीने कहा :—

(५) “तब हम इस बातमें सहमत हो गये कि जिन्दे मुर्देसे और मुर्दे जिन्देसे पैदा होते हैं और इसी लिये इस बातमें भी हम सहमत होगये कि यही यथेष्ट प्रमाण है कि मृतपुरुषों का आत्मा पहले कहीं अवश्य थी जहांसे वह फिर जन्म लेती है §

(६) उस (सुकरात) ने कहा कि “हां निस्संदेह ऐसा ही है। हमने इस सिद्धान्तके स्थिर करनेमें भूल नहीं की है, मनुष्य मरकर अवश्य पुनः जन्म लेते हैं और उन्हीं मुर्दोंसे

---

* Trial & Death of Socrates p. 115.

† Do. p. 120.

‡ Do. p. 122.

§ Do. p. 130.

जीवित पुरुष उत्पन्न होते हैं और मृतपुरुषोंका आत्मा अमर है"*

(७) **सुकरात**—'तो आत्मा किससे सादृश्य रखता है?'

सिवी—'यह तो स्पष्ट ही है कि आत्मा दैवी और शरीर मरणधर्म्मा है।'

सुकरात—........"जो कुछ मैंने कहा, क्या उस सबका यह परिणाम नहीं निकला, कि जीवात्मा दैवी, नित्य, बोधगम्य, समान, अविनाशी, और अजर है, जब कि शरीर विनाशी, जड़, बहुविध, परिवर्तनशील और छिन्न भिन्न होनेवाला है? सिवी! क्या तुम इसके विरुद्ध और कोई तर्क रखते हो?

सिवी—नहीं।†

(८) फिर सिवीको उत्तर देते हुये सुकरातने कहा "कि जीवात्मा जो अदृश्य है जो अपने सदृश शुद्ध, निर्मल, अदृश्य लोकमें पवित्र और ज्ञानमय ईश्वरके साथ रहनेको जाता है जहां यदि भगवान्‌की इच्छा हुई तो मेरा आत्मा भी शीघ्र जायगा। क्या हम विश्वास करें कि जीवात्मा जो स्वभाव हीसे ऐसा शुद्ध निर्मल, और निराकार है वह हवाके झझटोंसे उड़ जायगा? और क्या वह शरीरसे पृथक् होते ही छिन्न भिन्न हो जायगा? जैसा कि कई कहते हैं।........‡

---

* Trial and Death of socrates p. 131 & 132.

† Do. p. 146 & 147.

‡ Do. p. & 148.

सुकरातने यूनानके दर्शनका झुकाव बाहर (प्रकृति) की ओर से हटाकर भीतर (आत्मा) की ओर कर दिया। वह सदैव अपने शिष्योंको शिक्षा दिया करता था कि "अपनेको जानो" और यह कि "आचार परम धर्म है।" आचारयुक्त जीवन तपसे प्राप्त होता है, तप इन्द्रिय संयम और दमको कहते हैं।

अफ़लातून (प्लेटो)

प्लेटो आत्माके अमरत्वका उत्कृष्ट प्रचारक था। सुकरातकी मृत्युके बाद वह इटली चला गया था। इस यात्रामें उसे पाइथागोरसके मन्तव्योंका ज्ञान हुआ, वह आदर्शवादसे भी प्रभावित था। और अपने शिष्योंको सिखलाया करता था कि मेजके खयालमें मेजसे अधिक वास्तविकता है। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक "फेडो" (Phaedo) प्रश्नोत्तर रूपमें है। पुस्तकमें उसने आत्माके अमरत्व पर अच्छा विचार किया है। उसका कथन है कि जीवात्मा अभावसे उत्पन्न नहीं हो सकता, इसलिए उसकी पूर्वसत्ता होनी चाहिए, और वह भी अनादिकालसे। इसी विचारकी पुष्टि वह इस प्रकार भी करता है, कि केवल जीव ही उन आदर्शोंका विचार कर सकता है जो वस्तुओंकी सत्ताके कारण हैं, और जिनके द्वारा वस्तुओंकी उत्पत्ति हुआ करती है। परन्तु जीवोत्पत्तिके विचारको उसने कभी क्षणमात्रके लिए भी स्वीकार नहीं किया। वह सदैव उसकी निरन्तर सत्ताका उपदेष्टा रहा, और अभावसे भाव होनेका सर्वथा विरोधी रहा। उसका जीवके सम्बन्धमें यह भी विचार था कि शरीरसे पृथक् होनेके बाद उसी प्रकार अनन्त काल तक बाना रहता

है, जिस प्रकार शरीरमें आनेसे पूर्व अनादिकालसे अपनी सत्ता रखता था। "आर्चर हिन्ड" (Archar Hind) ने जो "फ़ेडो" का संस्करण प्रकाशित किया था उसकी भूमिकामें उपर्युक्त विचारोंको प्रकाशित करते हुए यह भी लिखा है कि प्लेटोका विचार था कि बुद्धिमान् विज्ञानवेत्ताओंको मृत्युसे भयभीत नहीं होना चाहिए।

प्लेटो (देखो रिपब्लिकका तीसरा भाग) अपने शिष्योंको परलोक सम्बन्धी ऐसे विचारोंसे जिनका आर्फ़ियसकी शिक्षासे सम्बन्ध है, बचानेका यत्न किया करता था क्योंकि वह उन्हें निस्सार समझता है। सृष्टिसम्बन्धी उसका विचार था कि "आदर्श सृष्टि सत्य और सौन्दर्यसे भरपूर है परन्तु ज्ञानेन्द्रियोंके जगत्में इनका अभाव है" वह धर्मके आदर्शको सर्वप्रधान बतलाते हुए उस आदर्शकी सत्ता ईश्वरको समझता था। वह समाज को बड़ी महत्ता देता था, और व्यक्तिके कुछ अधिकार नहीं समझता था, उसका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति समाजके लिए जीता है। अफ़लातूनको प्रकृतिका भी अनादित्व स्वीकार था।

अरस्तू ३८५-३२२ ईसासे पूर्व

जीवात्मा सम्बन्धी अरस्तूके जो विचार हैं उसके तीन भाग हैं:—

(१) एक केवल जीवनका वह भाग जो वनस्पतियों और पशुपक्षियोंमें भी पाया जाता है।

(२) दूसरा भाग इन्द्रियज्ञानका है, यह पशुपक्षियोंमें भी पाया जाता है।

(३) तीसरा भाग बुद्धिका है जो केवल मनुष्योंको मिलता है, मनुष्यमें आत्माका भाग पितासे आता है।

इस प्रकार अरस्तु मानता है कि मनुष्यकी आत्मामें एक भाग नाशवान् है, और दूसरा भाग अमर। वह भाग जो अमर है बुद्धि है और व्यापक है, और वह बुद्धि (ज्ञानकी शक्ति) कामनाओंसे उच्च आसन रखती है। जीव और शरीरके सम्बन्धमें उसका विचार यह है कि शरीरसे जीवका सम्बन्ध ठीक वैसा ही है जैसा आकृतिका प्रकृति, दृष्टिका चक्षुओं और असली अथवा अप्रकटसे है। जीवात्मा जो आकृति रूप और शरीरका वास्तविक अन्त है न तो स्वयं शरीरही है और न विना शरीरके विचारमें आने योग्य है। डाक्टर गोम्परर्जने * लिखा है कि पांचवीं शताब्दीके अन्तमें जीवात्मा सम्बन्धी अरस्तूके मन्तव्य एथेंसमें इस प्रकार समझे जाते थे कि बुद्धिपूर्वक नियम मनुष्यमें जन्मसे पहले अङ्कुरित होते हैं और शरीरके नष्ट होने पर जहां से आए थे वापिस चले जाते हैं"

अपने गुरु प्लेटोको अनुकरण करते हुए अरस्तू लोगोंको समझाया करता कि बुद्धिमान्को मृत्युसे भयभीत नहीं होना चाहिए, किन्तु उसे अपनेको अमर समझकर कार्य करना चाहिए तभी सफलता प्राप्त कर सकता है।

* Greek Thinkers by Dr. Gomperz Vol. IV. English Translation. p. 200.

ऐपीक्यूरस (Epicurus) ३४२ वर्ष ईसासे पूर्व

इसकी शिक्षा का सार यह था कि मनुष्यको प्रसन्नताके साथ जीवन व्यतीत करना चाहिये "खाओ, पीओ और खुश रहो।"

भौतिक विज्ञान मनुष्यको अन्धविश्वाससे बचानेके लिये है, जगत्की अन्य वस्तुओंके सदृश मनुष्य भी (जीवसहित) प्राकृतिक अणुओंका एक समुदाय है अर्थात् प्रत्येक जीव सूक्ष्म प्राकृतिक परमाणुओंसे बना है और गिलाफ रूप शरीर स्थूल अणुओंका सन्धान है—शरीर और आत्मा दोनों मरण धर्म्मा है और एक समय नष्ट हो जावेंगे। उसका मन्तव्य था कि मूर्ख ही मृत्युकी खोज करते हैं परन्तु मृत्युसे डरना भी मूर्खता ही है, मृत्यु आने पर शरीर अथवा जीव दोनोंमेंसे एक भी बाकी नहीं रहते।

"ऐपीक्यूरस" की शिक्षा योरुपमें बहुत फैली और प्रकृतिवादके विस्तारमें उससे अच्छी सहायता मिली।

उसकी शिक्षाके विस्तारका एक कारण यह भी कहा जाता है, कि "ल्यूक्रेटियस" (Lucretius) एक प्रसिद्ध कविने उस की शिक्षाओंका छन्दोवद्ध करके अपने पुस्तक "डिरेरमनैचर" (De Rerumnature) द्वारा विस्तृत किया था।

ज़ेनो (Zeno)

जिसका नाम गत पृष्ठोंमें आ चुका है ईसासे २४० वर्ष पहले हुआ था इसने "त्यागवाद"

की स्थापना की। यह अद्वैतवादी था, इसका विचार था कि जीवात्मा प्राकृतिक है और शरीरके साथ ही उसका भी नाश होजाता है। प्रलय होनेपर ईश्वरके सिवा सब नष्ट भ्रष्ट होजाता है। जैनोंका त्यागवाद मुख्यतया आचारसे सम्बन्धित था। प्रोफेसर सिजविक (Prof. Henry Sidgwick) ने अपने प्रसिद्ध आचार सम्बन्धी इतिहासके पुस्तक* में, त्यागवादका जीवके अमरत्वसे क्या सम्बन्ध था यह प्रश्न उठाया है और विषयपर कुछ और प्रकाश डाला है उनके कथनका सार यह है:—

"त्यागवादमें जीवकी अमरताका विश्वास बहुत सन्दिग्ध था परन्तु बिलकुल रद्द भी नहीं किया गया था। (इस वाद के) पुराने शिक्षकोंके विषयमें हमें बतलाया जाता है कि "क्लीनथीस" (Cleanthes) के मतानुसार शरीरके नष्ट होने पर जीव बाकी रहता है, और "क्राइसिपस" (Chryseppus) कहता है जीव बाकी तो रहता है परन्तु केवल बुद्धिमानोंका, परन्तु अद्वैतवादके प्रभावसे वह अन्तको उसके भी बाकी रहनेका निषेध करता है।

"इपिक्टेटस" (Epictetus) अमरत्वके विश्वासके, सर्वथा विरुद्ध था। दूसरा और "सैनेका" (Seneca) अपने कतिपय लेखोंमें शरीररूपी बन्दीगृहसे जीवके मुक्त होने का विवरण प्लेटोकी भांति देता है परन्तु एक और स्थलपर परि-

* History of Ethies by H. Sidgwick p. 102.

वर्तन और नष्ट होनेके मध्यमें "मार्कस ओरीलियस" (Marcus) Aurelius) की भांति अपनी सम्मति देता है।"

पिरहो

इसके बाद "पिरहो" (Pyrrho) के संशयवाद का यूनानमें प्रारम्भ होता है परन्तु जीवसम्बन्धी विचारकी दृष्टिसे ग्रीक फिलासफी प्रायः यहीं समाप्त होती है। संशयवादके बाद सन् २०० और ३०० ई० के मध्यमें एक प्रकारके अद्वैतवादका प्रारम्भ यूनानमें हुआ, जिसका आचार्य्य प्लाटीनस (Pilotinus) था। अद्वैतवादियोंके सदृश यह भी जीवकी शरीरकी भान्ति उत्पन्नसत्ता बतलाता था। इसकी शिक्षा थी कि केवल ब्रह्म ही सत्यपदार्थ है और वही जगत्का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है, परन्तु जगदुत्पत्ति उसके हाथ नहीं किन्तु विकासका परिणाम है। वह पहले बुद्धि उत्पन्न करता है, बुद्धिसे जीव उत्पन्न होता है। उसकी शिक्षामें प्रकृतिके लिये भी कोई स्थान नहीं है। प्लाटीनसके सम्बन्धमें एकबात यह भी कहीजाती है कि वह परिमितरूपसे जीवका शरीरसे भिन्न होना मानता था, और यह कि उसकी सम्मति थी कि जीव एक तत्त्वकी भांति शरीरसे सर्वथा पृथक् और अप्राकृतिक है। *

* Haynes Immortality p. 39.

चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद ।

कतिपय अन्य मत ।

रोम

रोमकी सभ्यताका उत्कर्ष यूनानके अपकर्षके प्रायः साथ ही होजाता है, रोममें प्रथम "सर्वजीवत्ववाद" प्रचलित था। मृतपुरुषोंका कबरोंमें आना जाना कल्पना किया जाता था। परिवारके शेष सदस्य मांस और मदिरा मृतपितरोंके भेंट किया करते थे। कहीं २ आर्फियसकी पूजाका भी विधान था। नरक और उसकी भयानक अग्निके विचार भी माने जाते थे। रोमन जाति प्रायः प्रकृतिवादी सी थी। ईश्वरके सम्बन्धमें उसका विचार था कि उसके साथ हम केवल सांसारिक कारोबारसे सम्बन्धित "कौलो करार" कर सकते हैं। परलोक उन्हें स्वीकार नहीं था सर्वजीवत्ववाद मन्तव्यानुसार वे जीवको प्रकृतिसे सम्बन्धित समझते थे। रोमनिवासियोंमें "सिसरो" (Cicero) एक विद्वान् हुआ, जिसने जीवके सम्बन्धमें कुछ विचार किया, और उसके अमरत्वके विश्वासमें भाग लिया। वह रोमनोंको शिक्षा दिया करता था, कि जीवके अमरत्वकी अधिकतर सम्भावना है, परन्तु दार्शनिकोंके उपस्थित किए प्रमाण, इस वादको पुष्ट करनेके लिए अपर्याप्त हैं' आगामी जन्मके सम्बन्धमें उसका विचार था

कि वह अवश्य होगा, और प्रसन्नताका होगा, और यह कि नरक कोई वस्तु नहीं है ।

दूसरा परिच्छेद

इसलाम और आत्मविचार ।

मौलवी कलन्दर अली

आत्माको अप्राकृतिक सिद्ध करते हुए कहते हैं कि अद्वितीय सत्ताके लिए अविभक्त होना आवश्यक है और जीवात्मा उस अद्वितीय सत्ता का चिन्तन करता है । यदि जीव शरीर (प्राकृतिक) हो तो वह अविभक्त नहीं हो सकता, और उसके विभाग होनेसे वह अद्वितीय सत्ता भी जो चिन्तन द्वारा उसमें है विभक्त हो जायगी, अतः जीवात्मा शरीर नहीं किन्तु इससे सर्वथा भिन्न है *

(२) "अल्लामए शीराजी" ने 'हिकमते अशराक़' नामक पुस्तककी व्याख्या करते हुए जीवकी सत्ताको स्वतन्त्र प्रमाणित करनेके लिए सबसे पहली युक्ति यह दी है कि हम आत्माकी सत्ता का बिना किसी प्राकृतिक माध्यमके चिन्तन कर सकते हैं; इसलिए जीवकी सत्ता अवश्य है और शरीर से स्वतन्त्र है ।

(३) मुहम्मद ताहिर एक प्रसिद्ध इतिहासमें ईसाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि "हक़ेतआला" (महान् ईश्वर)

---

* अखलाक दिलपिज़ीर कलन्दर अली पानीपत रचित ।

ने आज्ञा भेजी है कि ईमान न लाने वालों पर मैं "अजाब" (दण्ड) नाज़िल करता (भेजता) हूं। तदनुकूल ईसाने उनको सूचित किया। प्रातःकाल जब वे लोग उठे तो उनमेंसे चार सौ या सात सौ पुरुष सवार हो गए और गली २ में मारे फिरते थे †

(४) मुहम्मद साहिबने एक हदीसमें जो "तफसीरे अज़ीज़ी" नामक कुरानकी व्याख्यामें उद्धृतकी गई है कहा 'कि तुम अनुमान किए गए हो सदैव रहनेके लिए और निश्चय तुम कूच करते हो एक दुनियांसे दूसरी दुनियांकी ओर'।

(५) इमाम फखरुद्दीनने कबीर नामक कुरानके व्याख्यान में अनेक कुरानकी टीकाओं और हदीसोंका उल्लेख करते हुए प्रकट किया है कि मनुष्योंकी भान्ति पशु और पक्षी भी ईश्वरकी याद और प्रार्थनामें संलग्न रहते हैं और "कियामत" में उनको भी कर्मफल मिलेगा, उन (पशु और पक्षियों) में भी ईश्वरने देव और दूतोंको उनके सुधारार्थ भेजा है।

(६) अरबी भाषाके एक पुस्तक "जब्दुतुल असरार" में अथीरुद्दीनने लिखा है कि मनुष्यका आत्मा निष्क्रिय नहीं रहता उसे शरीरकी अपेक्षा रहती है। यदि उसकी पतित अवस्था न हो तो वह शरीर छोडनेके बाद अपनी सत्तामात्रसे स्थित रह सकता है, और उस समय उसका पापोंसे छुटकारा होजाता है।

जीवात्मा अज्ञानी है। उसे ज्ञानकी अपेक्षा रहती है जिससे

---

† रोजतुल आस्फिया (१८९० ई०) पृष्ठ १०४

पूर्णता प्राप्त करे। पूर्णता प्राप्त होने तक उसे मनुष्य योनिमें बराबर आना पड़ता है।

(७) फरीदुद्दीन अत्तार लिखते हैं कि मैं वनस्पतिके सदृश अनेकबार उत्पन्न हुआ और ७७० योनियोंमें रह चुका हूं *

(८) शमसुद्दीन तबरेजीने अपने पद्यमय पुस्तक "दीवान शमसतबरेज' में, और मौलाना जलालुद्दीन रूमीने अपनी प्रसिद्ध "मसनवी" में जीवात्माकी नित्यता और पुनर्जन्मके सिद्धान्तोंको अनेक स्थलोंपर स्वीकार किया है।

* गिफताहतवारीख अध्याय ११ पृष्ट १९८

पांचवा अध्याय

योरुप के मत।

पहला परिच्छेद

ईसाई योरुप।

मिश्र, यूनान और रोमका पृथक् २ कथन करनेके बाद अब समस्त योरुप में जीव सम्बन्धी विचार किस प्रकारके थे, इसपर एक दृष्टिपात करना चाहते हैं :—

ईसाई योरुप

ईसाई मतानुयायी जीवको उत्पन्न (सादि) परन्तु अमर मानते हैं। आत्मा सम्बन्धी उनके विचार प्रारम्भसे अनेक रूपोंमें होते हुये इस परिणाम तक पहुंचे हैं। उनका निर्णयदिवसमें मुरदोंकी कबरोंसे उठने * का विचार पहली शताब्दी से अबतक प्रायः अपरिवर्तित चला आता है। परन्तु ईसाके एक सहस्रवर्ष बाद जी उठने का विचार (Belief

* मध्यकालीन ईसाई योरुपमें मुरदोंके कबरों से उठने (Bodily resurrection) के विचार यहां तक बढ़ी चढ़ी अवस्थामें माने जाते थे कि पादरी लोग कहते थे कि यदि कोई जंगली हिंसक पशु किसी मनुष्यको मारकर खालेगा तो उसे अपने मुंह से, निर्णय दिवस, उगलना पड़ेगा।

in the Millennium) सन् १००० ई० में एक हजार वर्ष बीतजाने और ईसाके पुनः दुनियां में न आनेसे शिथिल सा होगया है।

अपराधों को क्षमा करने का विचार (Belief in purgatory) जिसके आधार पर रोमके पोप "माफीनामे" जारी किया करते थे, लूथर की शिक्षाओंके प्रचार से दूर हुआ।

मध्यकालीन ईसाई चर्च के अनुयायी स्वर्ग और नरकके विचारों को पूर्णतया मानते थे*। प्रारम्भिक ईसाईचर्चमें आत्मा सम्बन्धी विचार विभिन्न होते हुये भी, समष्टिरुपेण,

* यद्यपि स्वर्ग नरकके विचार माने जाते थे परन्तु इन विचारों से 'लोगों का विश्वास हट रहा था। यह बात एक नाटक की रचना से भलीभान्ति प्रकट होती है। यह नाटक डेन्टे का लिखा हुआ था और इसका नाम "डिवाइन कौमडी" Dante's Divine Comedy) था। इस नाटकका आंगलभाषानुवाद ऐन्ड्रूलेंग ने (Ancassin and Nicolete by Andrew Lang p. 9) नामान्तर करके किया था। नाटक का नायक स्वर्ग में जाने से इन्कार करता है, हेतु यह देता है कि वहां होगा ही क्या। कुछ पुराने ढंगके पादरी होंगे कुछ लंगड़े, लूले और बूढे आदमी होंगे कुछ एक मरे हुए दरिद्र लोग। वह स्वर्ग की अपेक्षा नरक में जाने की "तरजीह" देता है और कहता है कि वहां अच्छे २ वीर योद्धा और मनोरञ्जक यात्राओंमें मरे हुये पुरुष होंगे, अच्छी २ स्त्रियां होंगी, उनके साथ एक २ से अधिक उन के इच्छुक और प्रेमकर्ता भी होंगे। अच्छे २ धनी और सभ्यपुरुष होंगे, इत्यादि (The belief in personal immortality by Z. S. P. Haynes p. 37 and 38.

कहा जासकता है कि उनमें १३वीं शताब्दी तक प्रायः प्लेटोके आत्मा सम्बन्धी विचार प्रतिष्ठित थे। अवश्य नोस्टिक लोग (Gnostic) जो ईसाइयोंके एक पन्थमें थे दूसरी शताब्दी तक आर्फियस के प्रचारित आगामी जीवन सम्बन्धी विचारों में से अनेक को मानते थे।

इस बीचमें योरुपमें स्कोटस एरिजिना (Scotus Erigena), सेंट थामस (St. Thomas), डंस स्कोटस (Duns Scotus) और ओकम (Ockam) विचारक एक दूसरे के बाद प्रकट हुये, परन्तु इनका अधिकतर काम यही था कि उस समयके प्रबल ईसाई गिरजेके मन्तव्यों का विशेषकर ईश्वर सम्बन्धी मन्तव्य का जिसप्रकार भी होसके समर्थन करें।

सेंट आगास्टिन (३५४–४३० ई०) अवश्य एक विचारक हुआ, जिसने बहुत अंश तक ईसाई मन्तव्योंको निश्चित रूपमें किया। वह दार्शनिक भी था और मत का पोषक भी, इसीलिये उसके विचारोंमें विरोध भी है। ईश्वर और जीवके सिद्धान्त की दृष्टि से आगस्टिन अधिकांश में अद्वैतवादी था। वह कहता है कि "ज्ञान, स्मृति और विचार आत्माकी सत्ता प्रमाणित करते हैं। तो भी यह कहना कठिन है कि आत्मा क्या वस्तु है। जो लोग उसे प्राकृतिक तत्वोंकी सम्मेलनक्रिया का परिणाम बतलाते हैं, वे भूल करते हैं, क्योंकि आत्मा तो चेतन है परन्तु प्राकृतिकतत्त्व जड़ और चेतना रहित है, कुछ लोग उसे पर-

-मात्मासे निकला हुआ बतलाते हैं वह भी भूल करते हैं। अन्य वस्तुओंकी भांति ईश्वरने उसे भी उत्पन्न किया है, परन्तु उत्पन्न होते हुये भी वह अमर* है, क्योंकि उसमें बुद्धि है। बुद्धि और सत्य एक ही है, और अविनाशी है, अतः जीव भी अविनाशी है। उसका कथन है कि आचार और धर्म सम्बन्धी नियमोंका प्रकाश परमात्मा की ओरसे होता है। मनुष्य निर्बल है और अपने यत्नसे पापसे बच भी नहीं सकता, उसका बचाव परमात्मा ही की दयापर निर्भर है, परन्तु परमात्मा भी सारे मनुष्यों को नहीं बचाता। यह पहलेसे निश्चय हो चुका है कि कौन २ पुरुष बचाये जायेंगे†।

सेंट थामस एक्वीनास (St. Thomas Aquinas) के समय तक इस विषयमें प्रायः आगस्टिन प्रमाण माना जाता रहा था। ऊपर कहा जा चुका है कि १३वीं शताब्दी तक योरुपमें प्लेटोके आत्मसम्बन्धी विचार ही प्रायः माने जाते रहे थे, तत्पश्चात् अरस्तूके विचार, अर्बी रंगतके‡ साथ, फिर योरुपमें आये,

---

* इसका जीवन के अमरत्व का मन्तव्य अद्वैतवादके विरुद्ध है।

† क्या यह भी निश्चय होगया है कि कौन २ से मनुष्य नरक में डाले जावेंगे?

‡ अरस्तू की शिक्षा यूनान से अरब में गई और वहां "अरब" के दर्शन के रूप में प्रकट हुई। दसवीं और बारहवीं शताब्दी के मध्य में यह दर्शन बगदाद, स्पेन और एफ्रीका में फैला, परन्तु इसलामी जगत् में इसका आदर नहीं हुआ, इसबीच में अरस्तु के पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ। आम तौर से यूनान के दर्शनों का ज्ञान मुसलमानों को फारस के माध्यम से हुआ था।

और वे इतने परिवर्तित रूप में थे कि अरस्तूके नामसे प्लेटोके विचार ही योरुपमें माने जाने लगे, परन्तु वादविवाद बढ़ता ही गया और अन्तमें वह जेनोके त्यागवादके रूपमें परिवर्तित होगया। इस वादके अनुयायी प्रथम ब्रह्माण्डके लिये एक आग्नेयशक्ति होनेका प्रचार करते थे, पीछेसे वही शक्ति जीव कहलाने लगी, परन्तु वह प्राकृतिक मानी जाती थी, उसके लिये वे कहते थे कि एक विचित्रवस्तु वायु अथवा श्वास जैसी प्राणियोंमें फूंकी गई है।

अरस्तू इसीको जीवित अग्निसे सम्बन्धित करता था। त्याग-वादी इस विचारको शरीर और जीवमें मिलान करनेके लिए मानते थे, और इसीलिए उनमें जीव प्राकृतिक माना जाता रहा था, परन्तु जीवका प्राकृतिक मानना प्लेटोके मन्तव्यके विरुद्ध था, और इसाईचर्चभी इसका विरोधी था, अतः जीव प्राकृतिककी जगह अप्राकृतिक माना जाने लगा।

फिलो (Philo) एक यहूदी विद्वान् जो ईसासे कुछेकवर्ष पूर्व हुआ था, उसका जीवसम्बन्धी मन्तव्य इन दोनों मन्तव्योंके मध्यका था। वह कहता है कि जीव प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों है परन्तु उसकी सत्ता शरीरसे सर्वथा विरुद्ध है। इस प्रकारके विचार सङ्घर्षणका परिणाम यह हुआ कि जीव की सत्ता शरीरसे स्वतन्त्र और अप्राकृतिक मानी जाने लगी।

ईसवी सन् १२२७ और १२७४ के मध्यमें हुए "एवर

रोज़" (Averross) ने अपने जीव सम्बन्धी विचारोंको प्रकट किया। उसके मतमें बुद्धिकी सत्ता आत्मासे पृथक् है। वह कहता था, कि मनुष्यके अन्तर्गत उठते हुए सङ्कल्पविकल्पका उत्तर-दायित्व मनुष्यसे ऊपर एक सङ्कल्पविकल्पात्मक नियमके आधीन है। "ऐवररोज" अपने मतकी प्रशंसा स्वयं इस प्रकार करता है कि उसके मतका प्रभाव मानवी आचार और विचार पर भावी दण्ड और फलके विचारकी अपेक्षा अच्छा पड़ता है।

"थामस एक्वीनास" का नाम ऊपर लिया जा चुका है उसने एवरोजके मतका घोर विरोध किया। उसके "बुद्धि पार्थक्यवाद" के सम्बन्धमें एक्वीनासका आक्षेप यह था कि इससे जीवोंके बहुत्ववादका खण्डन होता है। एक्वीनासने अरस्तूके ग्रन्थोंका ग्रीक भाषासे अनुवाद कराया, और स्वयं उनकी टीकायें की। वह कहता है कि अरस्तूके मतका ठीक रूप यह है कि "क्रि-यात्मक बुद्धि" जीवका गुण है और यह कि जीव शरीरसे पृथक् है।

जीवके शरीरसे पृथक् होने पर "बुद्धि" किस प्रकार काम करती है, एक्वीनासके मतानुसार यह प्रश्न भौतिक विज्ञानसे नहीं सुलझाया जासकता।

डंस स्कोटस

(१२६६--१३०८ ई०) का जिनका नाम ऊपर लिया जाचुका है, उसका जीव सम्बन्धी मत यह है कि वह एक ऐसी निश्चायक शक्ति है कि स्वयं विना बुद्धिकी सहायताके प्रत्येक विषयका निर्णय कर लेती है। यही

(Will to believe) उसकी शिक्षाका मुख्य भाग है। वह कहता है कि जीवके अमरत्वका कोई तर्कसिद्ध प्रमाण नहीं है।

पीटरो पोम्पोनेजी (Pietro pomponazzi) (१४६२--१५२४)

यह योरुपके मध्यकालीन दार्शनिकों में जीवकी स्वतन्त्र सत्ताका विरोधी था वह अरस्तूके जीवाकृतिवादकी बात उठाते हुए कहता है कि यदि जीव शरीरकी आकृतिमात्र है तो शरीरसे पृथक् नहीं होसकता, वह बुद्धिको भी शरीरके संगठन पर निर्भर बतलाता है, उसकी भी शरीरसे स्वतन्त्र सत्ता का विरोधी है। आगामी जन्मके सम्बन्धमें कहता है कि यदि मनुष्य एक ओर व्यक्तियोंकी मृत्युसे कुछ खोता है तो दूसरी ओर इस विचारसे लाभभी है कि मनुष्यसमाज एक संगठन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एकही उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सम्मिलित होता है, और वह इस प्रकार समाजका एक अंश है और समाज सम्बन्धके विचारसे वह सत्य है। और यह कि मनुष्यका परिणाम दिव्य अनुसरण है, अर्थात् स्वच्छ परिणाम आचारपारक तर्कको काममें लाने और आचार युक्त जीवन व्यतीत करनेमें है। पोम्पोनेजीको भूत प्रेतकी सत्तामें विश्वास था।

पैरेसेलसैस (Paracelsas) (१४९३-१५४१)

इसने सूक्ष्म शरीरका विचार उत्पन्न करके बतलाया कि समस्त कल्पनाओं और स्वाभाविक बुद्धिका वह उत्तरदाता है। मृत्यु होने पर स्थूल शरीर भौतिक तत्त्वोंमें लौटता है

परन्तु सूक्ष्म शरीर तारोंमें मिल जाता है। स्थूलकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीरकी आयु अधिक है।

ज्याडेंनो ब्रूनो (Giordano Bruno) (१५४८–१६००) ब्रूनो के जीव सम्बन्धी विचार अद्वैतवादियोंके सदृश थे। वह विश्वमेधाको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका एक आत्मा और सर्वोच्च शक्ति समझता था, अर्थात् सम्पूर्ण जगत्के मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षोंमें एक ही जीव था ब्रूनोंने अपना कार्य प्रारम्भ ही किया था कि उसे प्राण खोने पडे * इस घटनासे गैलिलियो

* चर्चके विरुद्ध मत प्रकट कर देनेके अपराधमें ब्रूनो जिंदा ही जलाया गया था। कदाचित ब्रूनोका अपराध इसलिए भी बड़ा समझा गया होगा कि वह पोपकी राजधानी इटली का निवासी था और वहीं उसने अपने विचार प्रकट किए थे। उस समय चर्चका बल यौवनावस्थाको प्राप्त था। प्रत्येक विषयमें ही उसके अन्तिम निर्णयको माना जाता था उस समयकी परिस्थिति इस एकही उदाहरणसे भलीभांति समझी जा सकती है कि तत्कालीन विचारकों में एक मुख्य सम्प्रदाय था जिसने अपनी कार्यप्रणालीके लिए कुछएक नियम बनाए थे जिनमें मुख्य दो थे (१) प्रत्येक विवेककी आवश्यकता नहीं वह अंजीलमें मौजूद ह, केवल उसका समाधान अपेक्षित है (२) चर्च मनुष्योंके लिए ईश्वरका प्रतिनिधि रूप है, सारे अधिकार चर्चको प्राप्त हैं अत: प्रत्येकका धर्म है कि चर्चकी आज्ञाओंका पालन करे।

"ब्रूनो" के साथ जो सलूक चर्चने किया था उसी प्रकारका सलूक बल्कि उससे कुछ बढकर, चर्चने देवी हाईपेशिया के साथ किया था वह विदुषी देवी विज्ञान सम्बन्धी खोज करके प्रकट किया करती थी। एक दिन जब वह एलेग्जन्ड्रिया (मिश्र) में इसी प्रकारका

(Galileo) और डेकार्टको भी भयभीत होकर अपनी सम्मतियों को दबाना पडा था। उनको अपनी सम्मति तो दबानी पडी परन्तु योरुपकी अवस्थाके लिए यह परिवर्तनकाल था और शीघ्र परिबर्तन हो जाने में सबसे बडा योग लूथर और उसके अनुयाइयोंने दिया। निदान चर्चको दबना पडा, "पोपडम" का अन्त हुआ। यही समय था जब गैलिलियोने अपनी आविष्कृत दूरबीनसे बृहस्पतिके उपग्रहोंका पता लगाया, कैपलर (Kepler) ग्रहोंकी आकृतियोंकी खोजकी और कोपर्निकस (Copernicus) ने घोषणा की कि सूर्य्य विश्व (सूर्य्यमण्डल) का केन्द्र है। पृथ्वी एक साधारण ग्रह है। कोलम्बसने अमेरिका और वास्कोडिगामाने भारतवर्षको ढूंढा और पृथ्वीको गोल प्रमाणित किया। इस परिवर्तित युगका परिणाम यह हुआ कि विचारस्वातन्त्र्य बढने लगा और वैज्ञानिकों और दार्शनिकोंको भी स्वतन्त्रता से अपना मत प्रकट करनेका अवसर मिला। यहीं ईसाई योरुप

व्याख्यान दे रही थी तो पादरी शालके चेले उसे घसीटते हुए गिरजाघर लेगए, वहां वह नंगी की गई, उसका मांस काटा गया और अन्तमें जलाई गई। इस प्रकारकी दुर्घटनाओंसे योरुपका मध्यकालीन युग भरा पड़ा है। जब यह पापमय युग अत्याचारके शिखर पर पहुंचा हुआ था तो "यदायदाहि धर्मस्य ग्लानि भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यऽहम्"। की युक्तिके अनुसार मार्टिनका प्रादुर्भाव हुआ उसने अपने अनुयायी जविंजली (Zwingli) और कालविन (Calvin) के योगसे तत्कालीन चर्चको उसकी स्थिति से गिराया और पोपके अत्याचारोंसे लोगोंको बचाया।

समाप्त होता है और वर्त्तमान योरुपका आधारशिला रक्खी जाती है।

दूसरा परिच्छेद

योरुपके वर्तमान युगका प्रारम्भकाल।

डेकार्ट (Descartes)
(१५९६-१६५०)

डेकार्टके विचारोंसे नवीन यूरोपका प्रारम्भ होता है, यह जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता मानता था, उसके विचार इस प्रकार हैं:—

"मैं विचार करता हूं इसलिये मैं* हूं" डेकार्ट इसी विचार के साथ जीवात्माकी सत्ताकी साक्षी देता है, वह ईश्वर और प्रकृतिकी सत्ताका भी वैसा ही साक्षी है जैसा जीवकी सत्ताका। वह कहता है कि जीवमें चैतन्य है और प्रकृतिमें विस्तार, तथा परमात्मा सर्वोपरि है। जीव यद्यपि समस्त शरीरमें आ जा सकता है परन्तु उसका मुख्य स्थान मस्तिष्क है† जीव केवल

---

* "Cogitsergo Sum" डेकार्टका प्रसिद्ध वाक्य है जिसका तात्पर्य्य यह है "मैं विचार करता हूं अतः मैं हूं"(I think therefore I am)

† जीवका स्थान डेकार्टने मस्तिष्कमें तृतीय चक्षुकी जगह (In the pineel gland in side the brain) बतलाया है, कहा जाता है कि यह पिण्ड तीसरी आंखका बचा हुआ रूप है जो ऐतिहासिक कालसे पूर्व रेंगकर चलनेवाले जन्तु और आरम्भिक पशु रखते

मनुष्योंमें है, पशु पक्षी स्वयं चलते हुये यन्त्र सदृश और जीव रहित है। पशुओंमें जीवका अभाव वह बुद्धिके अभावसे समझता है, और बुद्धिके अभावका प्रमाण यह है कि वे अपने विचार मनुष्यों पर प्रकट नहीं कर सकते।* उसकी सम्मतिमें पशुओंमें एक नैसर्गिक अथवा सहजबुद्धि है जो चेतनाशून्य होती है।

हेनरीमोर Henry (Mcre) १६१४-१६८७
रेल्फकडवर्थ (Relph Cudworth) १६१७, १६८८

ये दोनों दार्शनिक जीव सम्बन्धी एक ही विचार रखते थे। उनका विचार यह था कि जीव शरीरकी तीन मात्राओंसे भिन्न केवल चौथी मात्रामें है और शरीरकी भांति परिमित नहीं है, शरीर न फैल सकता है न सिकुड़ सकता है। वह स्थूल और कठोर है, परन्तु जीव इस बन्धनसे पृथक् है। समस्त शरीर यहां तक कि ब्रह्माण्ड भी शीघ्रगामी जीवोंसे भरा

थे। लन्दनके चिड़ियाखानेमें एक छपकली ऐसी बतलाई जाती है कि उसके शिरपर इसी प्रकारकी अधूरी बनी आंखका पूर्व रूप था, इस से तो शिवजीके तीसरे नेत्रकी भी बात बिलकुल बेबुनियाद नहीं प्रतीत होती है।

* क्या इसी तर्कसे मनुष्य भी जीवरहित नहीं सिद्ध हो सकता है? कहा जाता है कि पशुओंमें डेकार्टका जीव न मानना तत्कालीन चर्चके प्रभावसे था। डेकार्ट ईसाइयोंके एक अनुयायी "जेसूट" (Jesuits) लोगोंसे जिनका फ्रांसमें उस समय बहुत प्रभाव था, बहुत भयभीत रहा करता था। सम्भव है यही हेतु उसके पशुओंमें जीव न माननेका हो, क्योंकि उस समय ईसाई मतानुयायी पशुओंमें जीव नहीं मानते थे।

हुआ है। यह जीव नीचेके दरजेमें कीट कहे जाते हैं। इनके ये विचार यूनानके "प्राकृतिक चेतनावाद" को पुनर्जीवित करते हैं, और प्रो० क्लीफोर्ड (Prof. Clifford) के "जीव प्राकृतिकवाद" से भी मिलते जुलते हैं। इस अन्तिमवादका सार यह है कि प्राकृतिक जगत्का प्रत्येक अंश, जिनके एकत्र होने से वह बना है, ज्ञात अथवा अज्ञात विचारोंसे भरपूर है।

मालब्रांश (Malebranche)
(१६३८--१७१५)

डेकार्टके शिष्योंमें अधिक प्रसिद्ध है। परमात्मा, आत्मा और प्रकृति तीनोंकी स्वतंत्रसत्ता स्वीकृत है। वह कहता है कि जीवकी इच्छानुसार शरीरमें और उसके द्वारा जगत्के उन पदार्थोंमें क्रिया उत्पन्न होती है और इसी प्रकार प्रकृतिकी क्रियाओंसे जीव प्रभावित होता है। परन्तु चाहे जीव प्रकृतिको क्रियावान् बनावे अथवा प्रकृति जीवको प्रभावित करे, दोनों अवस्थाओंमें प्रत्येक चेष्टाका वास्तविक कारण ईश्वर ही होता है; जीव और प्रकृति प्रासङ्गिक होते हैं।

मालब्रांशके इस प्रसङ्गवादके अनुसार परमात्मा अपनी अनन्त शक्तिसे पदार्थोंको देखता है, 'मैं परमात्माकी तरह चेतन होनेके कारण इन पदार्थोंके चित्रोंको जो परमात्माके ज्ञानमें हैं, देखता हूं,' इस वादको द्वैत और अद्वैत दोनोंका मध्य स्थानीवाद कह सकते हैं।

स्पीनोजा (Spinoza)
(१६६२--१६७७)

स्पीनोजा यद्यपि अद्वैतवादी है, परन्तु शंकर और उसके ईश्वर सम्बन्धी विचार में अन्तर है। शङ्कर ईश्वरको अप्राकृतिक

चेतन शक्ति, परन्तु जगत्का अभिन्निमित्तोपादान कारण मानता है; परन्तु स्पीनोज़ जगत्को ईश्वरका विकसित रूप ही बतलाता है, जगत्से पृथक् ईश्वरकी सत्ता उसे स्वीकार नहीं। उसने द्रव्य केवल ईश्वरको माना है। उसके मतानुसार द्रव्य वह है, जो अनादि और अनन्त हो, और वह एक (ईश्वर) ही है। ईश्वरके गुण उस (ईश्वर) के सदृश अनन्त हैं। उसके दो गुणों, चेतना और विस्तारमें, चेतना जिन रूपोंको ग्रहण करता है, उन्हें हम जीव कहते हैं; और विस्तार गुण अनेक प्रकारोंसे प्राकृतिक जगत् निर्माण करता है। मनुष्यमें यह दोनों प्रकार (शरीर और जीवके रूपमें) सम्मिलित हैं। ईश्वरके गुण अनन्त हैं, उनसे निर्मित जगत् भी इसीलिए अनन्त हैं परन्तु मनुष्य इन दो ही जगत्का ज्ञान रखता और रख सकता है। स्पीनोज़ाके ईश्वरमें एक विलक्षणता यह भी है कि वह ज्ञानशून्य है। स्पीनोज़ा कहता है कि ज्ञान और चेष्टाकी कल्पना ईश्वरमें करनेसे वह सीमित हो जाती है। एक पश्चिमी विद्वान्ने स्पीनोजाके जीव सम्बन्धी विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं :—

"स्पीनोजाप्रचारित जीवनका अमरत्व, जीवनकी निरन्तर सत्ता नहीं, किन्तु जीवनका ढंग है" "जो कुछ यहां और अब प्राप्त किया जाता है, उतना ही किसी अन्य स्थान और समयमें प्राप्त होता है। जो कुछ प्राप्त होता है वह जीवकी पूर्णताका भावी फल नहीं, किन्तु स्वयमेव पूर्णता ही प्राप्त की जाती है।

"चाहे हम उसे जीवनका अमरत्व कहें, अथवा ईश्वरीय

राज्य, बुद्धि, मुक्ति अथवा निर्वाण कहें, इन सबको इनके धर्म-शिक्षकोंने कोई ऐसी वस्तु नहीं बतलाई जो इस जीवनसे पृथक् अथवा इस जीवनके बाद प्राप्त होती है, किन्तु सबने यही शिक्षा दी है कि इनमें (जीवनके अमरत्वादिमें) प्रविष्ट होकर तद्रूप हो जाना मुक्ति है"

"स्वयं स्पीनोज़ाने लिखा है कि 'यदि मनुष्यके साधारण विचारों पर ध्यान दिया जावे तो प्रतीत होता कि वे अपने जीव के अमरत्वसे अभिज्ञ हैं, परन्तु उसे स्थायित्वके साथ मिलाकर भावना अथवा धारणासे सम्बन्धित करके उसके मृत्युपश्चात् बाकी रहनेकी कल्पना कर लेते हैं * "।

लाइप निट्ज़ Leibnitz (१६५६–१७१६)

लाइप निट्ज़का सिद्धान्त है कि संसार चेतन अणुओंसे भरा है। प्रत्येक अणु ज्ञान और शक्ति गुण वाला है और प्रत्येक की स्वतन्त्र सत्ता है। श्रेष्ठ अणु जीव, और निकृष्ट अणु शरीर कहलाते हैं। "अणुओंका अणु" अथवा "सबसे महान् अणु" ईश्वर है।

जीवका शरीर पर अथवा शरीरका जीवपर कोई प्रभाव नहीं है, अपितु ये दोनों ऐसे दो घंटोंके सदृश हैं जो एक ही साथ (एक ही समयमें) एक ही प्रकारका घंटा बजाते हैं। इन

---

* Spinoza. His life and philosophy by Sir, Frederick Pollack Bart. 2nd Edition p. 275.

दोनोंका वह सम्मेलन पूर्व सङ्घटित सङ्घटनके आधारपर होता है। सर्वनाशक मृत्यु न शरीरके लिये है, न जीवके लिये। मृत्यु होनेपर शरीरके भीतर एक सूक्ष्म शरीर* है वह जीवित रहता है। इसी प्रकार जीव भी नहीं मरता वह विकसित होता रहता है। मनुष्य पशु की भान्ति नश्वर नहीं है, किन्तु उसकी प्रज्ञा उसके अमरत्वका विश्वास दिलाती है, वह आत्मसत्तासे अभिन्न है, और (मृत्यु पश्चात्) फिर उठेगा। उसका शरीर परिवर्तन उसके आचारसम्बन्धी मूल्यके अनुकूल नैसर्गिक नियमाधीन रहता है। लाईपनिट्ज़की परिभाषाके अनुसार "चैतन्याणुवाद" के अन्तमें मनुष्यके पास ब्रह्मपुरीका एक संक्षिप्त चित्र होगा, जहां कोई शुभ कर्म बिना फलके और कोई अशुभ कर्म बिना दण्डके बाकी नहीं रहता।

बेली Bayle
(१६४७–१७०६)

बेलीने अपने बनाए हुए अंगरेजीके एक कोषमें जीवके सन्बन्धमें कई जगह अपना मत प्रकाशित किया है। उसका कथन है कि उससे पूर्व हुए दार्शनिक मनुष्य दोनोंके लिए प्राकृतिक जीवकी सत्ता मानते थे, परन्तु उन्होंने पशुओंके जीवोंके सम्बन्ध में अमरत्वका विचार कहीं प्रकट नहीं किया है। हां मनुष्यों के जीवोंको वे अमर जरूर मानते थे।

---

* यह सूक्ष्म शरीर का विचार वीजमैन के 'कीटवाद' (Weismann theory of Germplasm) से मिलता जुलता है। कीट वादानुसार वह कीट प्रत्येक योनि में जीवके साथ स्थित रहता है (Lamanadologie, par Emile Boutroux, p. 65-66.

एक और विद्वान् ने पशुओंके जीवोंके अमरत्वके सम्बन्ध में लिखा * है कि यद्यपि दर्शनमें पशुओं के जीवोंके अमरत्वके लिये कोई स्थान नहीं, परन्तु "कैम चाडालीस" (Kam chadeles) मक्खी मच्छरोंके पुनर्जन्ममें विश्वास रखता था। "एगासीज़" (Agassiz) ने अपने एक निबन्धमें जो उसने "वर्गक्रम" पर लिखा था, लिखा है कि ४९७७ पुस्तकोंमें से जो जीवके स्वभाव और पुनर्जन्मके सम्बन्धमें लिखे गये हैं और जिनका ज़िक्र "ऐलगर"(Alger) ने भी अपने इतिहासमें किया है, २०० पुस्तकोंमें पशुओं के पुनर्जन्मके सम्बन्धमें विचार किया गया है।

स्वीडनबोर्ग Sweden Borg
१६८८–१७७२

यह महाशय 'आत्मजगत्' के दृष्टसाक्षी हैं, इनकी गवाही सुनिये। जीव सम्बन्धी विचार करते हुये ही इनको प्रकट हुआ कि स्वर्गका द्वार इनके लिये खुला हुआ है और यह ईसाके द्वारा वहां तक पहुंच गये। वहां इन्होंने जो कुछ देखा उसका विस्तृत विवरण अपने लेखमें किया है। नरकका हाल भी लिखा है कि वहां क्या २ और किस २ प्रकार होता है। पापका कारण क्या है, और यह कि स्वर्ग

* Clodd; Myths and Dreams. p. 208.

में विवाहों की स्थिरता * और पवित्रता कैसी मानी जाती है, इन सब बातोंका भी उल्लेख किया है। स्वीडनबोर्ग फिर कहते हैं कि स्वर्ग और नरककी देख भाल करनेके बाद फिर संसार में ईसा के द्वारा ही पहुंचाये गये और यात्रा के फल रूपमें उनकी नियुक्ति "नये जेरुसलीम" के "पैगम्बर" पद पर हुई। स्वर्गमें इनका मुलाकात बहुधा शरीर छोड़े हुये जीवों से भी हुआ करती थी। इनके कथनानुसार जीव मृत शरीरको भी उस समय तक नहीं छोडता जब तक शरीर सड़ गलकर जिन भूतोंसे बना था वे अपने २ कारणोंमें लीन नहीं हो जाते।

वाल्टेर (Voltaire) १६९४–१७८८

यह अज्ञेय वादी था। जीवके अमरत्व को यद्यपि नहीं मानता था तो भी कभी कभी उसका विचार हो जाता था कि न्यायव्यवस्था अमरत्व स्थापना चाहती है। ईश्वरका विश्वास जनताके आचार सुधारका रक्षासाधन समझकर रखता था, और ऐसा विश्वास रखनेसे, जीवके अमरत्व का मानना उसके लिये अनिवार्यसा ही था। फिर भी वह कहता है कि ईश्वर तथा

---

* स्वर्ग में विवाहों की स्थिरता का कथन, पश्चिमी संसार में विवाहकी अस्थिरता किस प्रकार "तलाकों" की बहेतरीका कारण बन रही है, उसके दूर करनेका प्रस्ताव मात्र प्रतीत होता है। स्वीडनबर्गका यह स्वर्गारोहण मुहम्मद साहिब की "मैराज" सम्बन्धी यात्रा मिलती जुलती बात प्रतीत होती है।

जीवकी सत्ता, क्या और किस प्रकार की है, यह अज्ञात है।

बुफन [Buffon] १७०७--१७८८ प्रकृतिके अणुओंको इन्द्रियमय मानता था, इस लिये जीव और ईश्वर दोनों उसके लिये अनावश्यक से थे।

डिडिरट Diderot १७१३-१७८४ इसने "बुफन" के नास्तिकवादको उन्नत किया। शरीरके भीतर ज्ञानतन्तुओंके विलक्षण कार्य का ज्ञान प्राप्त करनेसे गहरा प्रभावित था, परन्तु इच्छाशक्तिकी स्वतन्त्रता और जीव की अमरताका विरोधी था।

बैरन.डी. हालबेक Baron d'Halbach प्रकृतिवादी था। इस ने १७७० ई० मेंएक* पुस्तक प्रकाशित की जिस में उसका उद्योग यह था कि प्रकृति और शक्तिके सिवा संसारमें कोई स्थिर वस्तु नहीं है। जीव शरीरका अंश है, अर्थात् ज्ञान तन्तुओंसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है।

तीसरा परिच्छेद

लाक (Locke)† १६३२-१७०४ लौक ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों की सत्ता मानता था। उसका कथन है कि जीवात्माका सारा ज्ञान अनुभवसे प्राप्त होता है और

* System de-la Nature by Baron d Halbach.

† पश्चिम के परीक्षात्मक तर्क का जन्मदाता समझाजाता है॥

इस जन्मके अनुभवोंसे पूर्व आत्माकी अवस्था ऐसे कागज़ की तरह होती है जिस पर कुछ लिखा हुआ न हो। जीवात्मा में वह ६ प्रकारकी शक्तियां मिश्रित अनुभवोंके बनानेके लिये मानता है (१) अलब्धि (२) स्मृति (३) विवेक (४) भेदाभेद विचार (५) सम्पर्क (६) व्यापक।

इनमें से प्रथम की पांच शक्तियां वह कहता है कि पशुओं में भी होती हैं, परन्तु छठी शक्ति केवल मनुष्यों में पाई जाती है। वह कहता है कि प्रकृति के विषयमें हम इससे अधिक नहीं जानते कि आकार विस्तार आदि गुणोंका आधार है और सम्वेदन से उसका ज्ञान होता है, आत्मा सम्बन्धी हमारा ज्ञान यह है कि प्रत्यक्ष, स्मृति, सुख, दुःख आदिका वह स्रोत है। द्रव्यका शुद्ध स्वरूप हम नहीं जानते। वह कहता है कि जीवकी हस्ती में सन्देह करना ही उसकी हस्तीका प्रमाण है।

परमात्माके सम्बन्धमें वह कहता है कि वह जगत्का रचयिता है, और कारण तथा कार्य्यके विचारसे उसकी सत्ता जानी जाती है। मुख्य और गौण गुणोंका विचार करते हुये वह कहता है कि मुख्य गुण ही किसी प्राकृतिक पदार्थकी सत्तारूप हो सकते हैं, और गौण गुण आत्मामें मुख्य गुणोंके कारण उत्पन्न हुआ करते हैं। जैसे फूलका विस्तार (मुख्य गुण) फूलमें है परन्तु गन्ध और रंग (गौण गुण) जीवमें उत्पन्न होते हैं। वह कहता है कि जीव अपने शुद्ध स्वरूप में प्राकृतिक है अथवा अप्राकृतिक यह हम नहीं कह सकते।

बरक्के (Berkeley) (१६८५१७५२) बरक्के आत्मा और परमात्मा की सत्ता में विश्वास करता है, परन्तु उसे प्रकृति की स्वतन्त्र सत्तास्वीकृत नहीं है। वह कहता है कि जीवात्मा एक अमिश्रित पदार्थ है इसलिये उसका बिच्छेद नहीं हो सकता। यह आवश्यक नहीं कि उसका सदैव शरीर से सम्बन्ध रहे। शरीरके नष्ट होजाने पर भी बाकी रहता है। वह अमर है।

परमात्माको वह निमित्त कारण और सम्पूर्ण ज्ञान को उसके कार्य्योंका परिणाम बतलाते हुये उसे नित्य और सर्वव्यापक ठहराता है। वह कहता है कि गौण गुणकी भान्ति मुख्य गुण भी जीवात्मा ही में हैं। वह जीवकी अल्पज्ञता और उसके बहुसंख्य होने में विश्वास करता है।

ह्यूम (Hume) (१७११–१७७६) ह्यूम का मत है कि मनुष्यका आत्मा अपनी अवस्थाओं से भिन्न किसी वस्तुको नहीं जान सकता। वह कहता है कि जिस प्रकार बाह्यजगत्का सारा ज्ञान गुणोंका ज्ञान है, उसी प्रकार आन्तरीय जगत् सम्बन्धी हमारा समस्तज्ञान अवस्थाओंका ज्ञान है। उसकी सम्मति में द्रव्य अथवा शास्त्र की कोई सत्ता नहीं, सारा जगत् अवस्थाओं ही का समूह है। इसप्रकार ह्यूम शून्य अथवा द्रव्याभाववादी था। वह कहता है, जिसप्रकार प्रकृतिने हमें कर्म्मेन्द्रियों का व्यवहार सिखलाया, उसी प्रकार प्रकृतिने हमारे आत्मामें एक सहज बुद्धि उत्पन्न की है, जिसके द्वारा हम आ-

जासकते हैं, और पिछले ज्ञानकी सहायतासे भविष्यत् निर्माण कर सकते हैं। ह्यूमकी शिक्षामें जीवकी स्वतन्त्रसत्ताका कोई विधान नहीं। अब उसके अनुयायी जीवको ज्ञानधारावत् समझते हैं।

काण्ट Kant (१७२४--१८०४) काण्टकी रचनाओंने विचार और वितर्ककालको उन्नतिके शिखरपर पहुंचा दिया था। काण्टकी समक्षिा तीन भागोंमें विभक्त हैं:—

(१) शुद्ध बुद्धिकी समीक्षा।

(२) व्यावहारिकी बुद्धि।

(३) नियामक बुद्धि।

शुद्ध बुद्धिकी समीक्षाके आधार पर काण्ट कहता है कि ज्ञानकाण्डका भाग बाहरसे आता है दूसरा भीतरसे। बाहर (प्रकृति) से मिला ज्ञान द्रव्य कहलाता है, उस द्रव्यको आकृति जीवात्मा देता है, इन्हीं द्रव्य और आकृतिके मिलनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है। वैज्ञानिक परिभाषाओंमें काण्ट ज्ञानका विवेचन इस प्रकार करता है कि ज्ञान संयोजक और नैसर्गिक वाक्य है। द्रव्यको आकृति जीव देता है, वह आकृति देश और काल है। देश और काल उस ऐनकके दो शीशे हैं जिनके द्वारा जीव प्रत्येक अनुभवको देखता है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस देश और कालकी ऐनकसे अनुभवके रूपमें क्या परिवर्तन हो जाता है। समस्त अनुभव ज्ञान, देश और कालसे प्रतिबद्ध है। जिस प्रकार बाहरकी सामग्री (प्रकृति) को देश और कालकी आकृति देने

से अनुभव बना था, उसी प्रकार मन उन अनुभवोंसे सम्बन्ध जोड़कर "ज्ञान" बनता है। उपर्युक्त आकृतियोंको काण्ट "ज्ञान नियम" कहता है, और इस प्रकार आकृति देकर सम्बन्ध स्थापित करके ज्ञानका निर्माण करनेके द्वारा आत्मा दृश्य जगत्‌में अपने नियमोंकी स्थापना करके उसे निर्माण करता है। इन्हीं नियमोंका विस्तार करते हुये काण्ट कहता है कि मनुष्य विवश है, कि प्रकृति जीव और परमात्मामें विश्वास करे परन्तु पदार्थ बुद्धिके विषय नहीं है, इसलिये इन्हें बुद्धि द्वारा* जान नहीं सकते। व्यावहारिकी बुद्धिकी परीक्षा करते हुए वह कहता है कि सत्-पदार्थोंकी जानकारीके लिये हमें कृति (इच्छा) की शरण लेनी चाहिये। कांटका यह मुख्य सिद्धान्त है कि आत्मिक शक्तियोंमें बुद्धि नहीं, किन्तु कृति प्रधान है, और यही अन्य समस्त शक्तियोंका आधार है। कृतिकी समीक्षा करते हुए वह कहता है कि "निस्सन्देह आत्मा और परमात्मा नित्य हैं" कृतिसे वह कहता है कि बुद्धिसे उत्पन्न हुये सन्देहोंका नाश होता है। और कृति ही से आचार और धर्मकी रक्षा होती है, आचारसम्बन्धी नियमोंका विवेचन करते हुए जो परिणाम निकाला है वह यह है और यही काण्टका वास्तविक सिद्धान्त है।

१. जीवात्मा नित्य है, स्वतंत्र है और अमर है।

---

* काण्टने शुद्ध बुद्धिकी परीक्षा परिणामसे प्रकृति, जीव और परमात्माकी सत्तामें सन्देह नहीं किया है किन्तु बुद्धिके सामर्थ्यकी सीमा प्रकट की है।

२. परमात्माकी सत्ता है, वह नित्य है, जगत्का रचयिता है, और कर्मफलदाता है ।

काण्ट अनन्त भावी जीवनोंका विधायक था, उसका विचार था कि पर्याप्त समय उन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए मनुष्योंको मिल सके जिनकी पूर्ति अत्यन्त कठिनतासे होती है ।

सर आइजिक न्यूटन

इङ्गलैण्डके सबसे बड़े विचारकने अनेक खोजों और अन्वेषणाओंके बाद १६८७ ई० में अपना प्रसिद्ध पुस्तक "प्रिन्सिपिया" (principia) लिखा था, जिसमें समस्त ग्रहों और नक्षत्रोंमें आकर्षण शक्ति होनेका निरूपण किया गया है । उसी पुस्तकके एक परिशिष्टमें उसने अपना विश्वास प्रकट किया है कि यह समस्त प्राकृतिक जगत् जिसका उसने स्वाध्याय करके अनेक नियम खोजे हैं, उस सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् प्रभुका रचा हुआ है ।

छठा अध्याय

योरुपकी १९वीं शताब्दी

पहला परिच्छेद ।

दार्शनिक

योरुपकी १९वीं शताब्दी, अद्वैत वादसे प्रारम्भ होती है, उसका विवरण इस प्रकार है:—

फीचटे (Fichte) (१७६२--१८१४) — जीवात्मा जगत्को बनाता ही नहीं किन्तु उसका उत्पादक भी है आत्माके सिवा और कोई सत्ता नहीं।

आत्माका तत्व कृति है यही समग्र अस्तित्व है। आत्माका स्वभाव है कि अपने ज्ञानमें अनात्माको उत्पन्न करके उसे अपनेसे पृथक् समझे। यह पृथक् समझना भ्रम है, वास्तवमें पृथक् और कुछ नहीं।

परमात्माको पृथक् समझना ही भूल है। परमात्मा आचार नियमसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। वह पुरुष जो कर्म करते हुए कर्तव्यका ध्यान रखता है आस्तिक है, कर्तव्यकी उपेक्षा करके सुख चाहना नास्तिकता है। उसकी सम्मतिमें मनुष्य रचयिता का रहस्य पूर्ण संगठन है।

शौलिंग (Schelling)
(१७७५-'-१८५४)

शौलिङ्गका मत है कि सत्य पदार्थ न आत्मा है न अनात्मा (प्रकृति) प्रत्युत् एक और वस्तु है जिसे निरपेक्ष कहते हैं, यही आत्मा और अनात्मा दोनोंका स्रोत है । वह कहता है कि प्रत्येक विचारमें प्रतिज्ञा प्रतिप्रतिज्ञा और संयोग तीन अङ्ग होते हैं । इसीके अनुसार विचारके केन्द्र दृश्य जगत्में प्रथम स्थूलपन होता है दूसरी श्रेणीमें कृतिका प्रकाश होकर अहङ्कार उत्पन्न होता है तीसरी श्रेणीमें जीवनका प्रकाश होता है । परन्तु ये तीनों प्रकृतिमें विद्यमान हैं और सारा जगत् जीवित है, अन्यथा जीवनकी उत्पत्ति न होती ।

ज्ञानसे कृतिका पद ऊंचा है परन्तु ब्रह्मका साक्षात्कारका हेतु सौन्दर्य विवेचन शक्ति है । यह शक्ति ज्ञान और कृतिके द्वैतका नाश कर देती है । सौन्दर्य विवेक और धर्म एकही वस्तु है । तर्कसे हम परमात्माको चिन्तन करते हैं, और सौन्दर्यविवेक दर्शन । परन्तु फिर उसका दूसरा मत इस प्रकार है कि परमात्मा एक पुरुष था उसने चेष्टाकी । इस चेष्टाके समय वह चेतन न था, वह कहता है कि संसारमें जो दुख और पाप है वह ब्रह्मकी पुरुष बननेसे पहली अवस्था है । यह कुछ बननेकी चेष्टा है । परमात्मामें यह नियम उसके प्रेममें डूबा रहता है । मनुष्यमें स्वतन्त्र होकर पापका कारण बनता है ।

हेगल (Hegal)
१७७०–१८३१

हेगल कहता है कि "निरपेक्ष" हमारे ज्ञानका विषय है । क्रिया और जीवन निरपेक्ष ही है उसीको द्रष्टा भी कहते

हैं। जीवन बुद्धिका प्रकाश है। बाह्य जगत्में बुद्धि अचेतन है परन्तु हमारे आत्मामें चेतन। जगत्के सारे पदार्थ इसी एक निरपेक्षके प्रकाश हैं। एक प्रकाश विकासकी एक अवस्थाका है दूसरी दूसरीका। उत्तम प्रकाशके साथ निकृष्ट भी विद्यमान रहता है। अजीवित प्राकृतिक जगत् वनस्पतिके उत्पत्तिके पीछे नाश नहीं हो जाती, न वनस्पति पशुओंकी उत्पत्तिके बाद और न पशु मनुष्योंकी उत्पत्तिके बाद हो जाते हैं किन्तु बाकी ही रहते हैं।

जीबात्माके सम्बन्धमें उसका मत है कि जितने जीव जगत् में हैं वे सब "निरपेक्ष प्रत्ययके नाना रूप हैं, जलतरङ्ग जिस प्रकार, समुद्रसे पृथक् नहीं इसी प्रकार जीव भी निरपेक्षसे भिन्न नहीं किन्तु उसीके बहुरूप और आकार हैं, वास्तविक सत्ता इस निरपेक्ष ही की है।

हीने (Heine) के साथ हुये शास्त्रार्थमें हेगलने एक आक्षेपका उत्तर देते हुये कहा था "उस सीमासे बाहर जिसमें मिटने, नाश होने, मरने आदिके विचार सम्मिलित हैं, जीव उठाया जाता है स्पष्ट निश्चयकी भ्रान्तिसे नहीं।

शोपनहार (Schopenhauer) १७८८–१८६०*

मनुष्यका जीवन इच्छाका प्रकाश है। इच्छा त्रुटियोंके दूर करने के लिये, करते हैं, त्रुटि दुःखोंका

* Erdmann's History of philosophy. English translation Vol. III p. 28.

मूल है। जीवन और जगत् दोनों दुःखमय हैं, विषयकी तृप्तिसे अपनेको शान्त करनेकी इच्छा, घृतसे अग्निके बुझानेकी इच्छाके सदृश है। निर्वाण जीवनका आदेश है। जीवनोद्देश्य, जीवनका विस्तार करना नहीं, अपितु जीवनका बन्धनोंसे मुक्त करना है। परन्तु आत्महत्यासे उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। आत्महत्या पाप है। शोपनहार हिन्दु त्यागवादियोंके जीवनको आदर्शजीवन मानता है। वह जगत्‌की रचनाके सम्बन्धमें कहता है कि सृष्टि का उत्पादक नियम चेतन द्रष्टासे भी गहरा है। वह नियम इच्छा ही है। प्रकृतिका आकर्षण, मनुष्योंकी इच्छायें इसीके प्रकाश हैं। यही इच्छा जड जगत्‌में यान्त्रिकशक्तिके रूपमें काम करती है, जीवित अचेतन जगत्‌में आङ्गिक आवेगशीलता और चेतन जगतमें आत्मिकोद्देश्यके रूपमें प्रकाशित होती है। यह इच्छाको ज्ञानसे भी ऊंचा दरजा देता है और कहता है कि जब हम सत्यका साक्षात् दर्शन करते हैं तो प्रकट हो जाता है कि उसका तत्त्व ज्ञान नहीं किन्तु इच्छा ही है।

पशुओंमें ज्ञान सदैव इच्छा हीके आधीन रहता है परन्तु मनुष्य अपने ज्ञानको इच्छासे मुक्त भी कर सकता है यही उसकी विलक्षणता है। अर्थात् वह ऐसी कल्पनाओंका भी निर्माण कर सकता है जो उसके शरीर बुद्धि आदिके लिए आवश्यक नहीं जैसे चित्रकारी आदि।

शोपनहार उपनिषदोंको उच्च और आदर्शकी दृष्टिसे देखता था वह कहता है कि "संसारमें कोई पाठ इतना लाभदायक

और उच्च बनानेवाला नहीं जितना उपनिषदोंका है। उपनिषदोंसे मुझे जीवनमें शान्ति मिली है, और मृत्युसमय भी यह मेरे लिये शांतिका स्रोत होगी"।

रुडोल्फ हर्मान लोज (Loze)
१८०६--१८८०

लोजके जीवसम्बन्धी विचार लाइपनिटसके विचारसे मिलते जुलते हैं, लोज जीवकी स्वतन्त्र सत्ता और उसकी अमरताका पोषक था। उसका विचार था कि चेतनाका कार्य जड़शक्तियोंसे साधित नहीं हो सकता, इसलिए जीवका मानना अनिवार्य है। लोजके सम्बन्धमें यह भी कहा * जाता है कि यद्यपि वह जीवको अमर बतलाता था, परन्तु यह अमरता सब जीवोंके लिए नहीं थी केवल ऐसे जीवोंको वह अमर होनेका अधिकारी समझता था जो स्वयं अपनी उच्चमूल्यताका अनुभव करने लगें, और उसका मत था कि इसी अनुभव द्वारा जीव अमर हो सकते और होते हैं।

रॉइस
Prof. Royce of Harvard

रॉइसके जीवसम्बन्धी विचार लोजसे मिलते जुलते हैं। उसने अपने विचार स्वरचित पुस्तक "अमरत्व विचार"† में इस प्रकार प्रकट किए हैं:—

* Erdmann's History of Philosophy Vol. III p. 309.

† Conception of immortality by Prof. Royces p. 78—80.

(१) ब्रह्माण्ड ज्ञानशक्ति सम्पन्न है। जीवनमें ईश्वरीय इच्छा अनुपम रीतिसे प्रकटकी गई है।

(२) स्वतन्त्र जीवनकी प्रत्येक आभा भी कुलके अनुपम होनेसे अनुपम होनी चाहिए और वह कुछ इस प्रकार की होनी चाहिये, जिससे अहङ्कार प्रकट हो।

(३) प्रचलित जीवनमें यद्यपि हम लगातार अपनी सत्ताके प्रकट करनेके लिए यत्नवान् होते हैं तथापि ज्ञानप्राप्तिके साधन जो हमारे अधिकारमें हैं उनसे न तो वास्तविक अभिमानी जीव जाना जाता है और न प्रकट किया जाता है।

(४) तो भी हमारा जीवन दिव्यजीवनके साथ एकत्व रखनेके कारण अन्तमें वास्तविक वैयक्तिक जीवन होगा।

(५) इसलिए हम अपनेलिए जैसाकि हम अपने आन्तरिक प्रयत्नका अनुभव करके एक दूसरेसे प्रकट करते हैं, एक वास्तविक और बहुविध व्यक्तित्वके चिन्ह हैं जो हम पर अभी प्रकट नहीं हुये हैं और न इस तथा आगामी जीवनोंमें जो जीवन और मृत्युके मध्यमें प्राप्त होंगे, जब तक हमारे अधिकार ज्ञानोपार्जन करनेके प्रचलित साधनों तक परिमित रहेंगे, प्रकट हो सकते हैं।

(६) अन्तमें बहुविध वास्तविक व्यक्तित्व, इस समय जिसकी सत्ताको (कथन मात्रसे) प्रकाशित कर सकते हैं, ऐसे जीवनोंमें जिन्हें बाह्य शून्यवाद स्वीकार कर सकता है प्रकट

होगा, उसी समय हम अन्तिम सत्य और ईश्वरसे हमारा क्या सम्बन्ध है इन दोनों विषयोंका अनुभव कर सकेंगे। इन विषयों का बोध इस समय हमें उसी प्रकार नहीं होता है जिस प्रकार अन्धे दर्पणमें कोई वस्तु नहीं दिखलाई देती।

गुस्टाव थियोडोर फेकनर Fechnar (१८०१-१८८७)

फेकनरके जीव और ईश्वर सम्बन्धी विचार ये हैं:—जिस प्रकार जीवात्मा शरीरके व्यापारों और अवस्थाओंको संवित्की एकतामें इकट्ठा कर रहा है उसी प्रकार परमात्मा समस्त सत्ता और भावोंका ऐक्य है। समस्त प्रकृति ईश्वरका शरीर है। नक्षत्र वृक्ष आदि सब सात्मक और सजीव हैं। मृत और निर्जीवसे जीव नहीं पैदा हो सकता, इसलिए यदि पृथ्वी निर्जीव होती तो उससे जीव किस प्रकार पैदा हो सकते। मनुष्यकी आत्मा मध्यमें है उससे नीचकी श्रेणीमें वृक्षादिकी आत्मा है, और ऊपर ग्रह नक्षत्र आदिकी आत्मा है। इन सब आत्माओंका एक्य चित्स्वरूप परमात्मामें होता है। वैज्ञानिकोंके अनुसार चित्तके अतिरिक्त सब कुछ अन्धकारमय है पर यह बात सर्वथा असङ्गत है क्योंकि रूप रस शब्द आदि जीवजगत चितिशक्तिनिष्ठ आभासमात्र नहीं हैं। ये पारमार्थिक ईश्वरीय ज्ञानके अवयव हैं।

आत्मा और शरीर अयुतसिद्ध अर्थात् नित्य परस्परयुक्त हैं न निरात्मक शरीर हो सकता है न निःशरीर आत्मा ही। विलियम

जेम्स * ने फेक्नर के विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं। "फेक्नर कहता है कि हम सब पृथ्वी के व्यक्ति, पृथ्वी के जीव की इन्द्रियां हैं। हम उसके विषय ग्रहणसमर्थ जीवन को उस समय तक बढ़ाते रहते हैं जब तक कि हमारा जीवन समाप्त नहीं होजाता। वह (पृथ्वी का जीव) हमारे विचारों को ठीक उसी समय जब वे उत्पन्न होते हैं ग्रहण करके उन्हें अपने विशाल विद्या-मण्डल में ले लेता है और लेकर उन्हें स्वीकृत तत्त्वों में सम्मिलित कर देता है। जब हम में से कोई मरता है तो यह मरना पृथ्वी की एक आंख फूट जाने के सदृश है क्योंकि जितने विचार मरने वाले के द्वारा और प्राप्त होते अब प्राप्त नहीं हो सकते। परन्तु मरनेवालेसे सम्बन्धित स्मृति और विचार महान् पार्थिव जीवन में सदैव विविक्त रहते हैं और जिस प्रकार जीवित पुरुष के विचार स्मृतिमें एकत्र होकर नये सम्बन्ध और विचार उत्पन्न करते रहते हैं उसी प्रकार वे भी उत्पन्न होते रहते हैं। जीव अमरत्व के सम्बन्ध में फेक्नर के यही विचार हैं"।

एडवर्ड वनहार्ट मान जर्मनी का अन्तिम दार्शनिक जो १९ वीं शताब्दी के अन्त में हुआ, दुखःवादी था। इसके दर्शनिक विचार लोज और फेक्नर से मिलते जुलते हैं, इस को ईश्वर और जीव की सत्ता स्वीकृत है। वह कहता कि मूर्त-द्रव्य अणुशक्तियों की परम्परारूप हैं। शरीर की स्थिति स्वाभाविक और अचेतन है। सभी अवयवों के कुछ उद्देश्य हैं जिन

* A Pluralistic Universe by W. James.

का स्पष्ट ज्ञान अङ्गोंका नहीं है, सुखदुःखका मूल ज्ञान नहीं है? अज्ञानपूर्वकही इनका भी उद्भव है यहां तक कि किस नाडी से और मस्तिष्कके किस अंशके उत्तेजनसे क्या व्यापार होता है और कैसी चितवृत्ति होती है, यह मनुष्य स्वयं नहीं जानता। स्वभावतः ये व्यापार होते हैं पर स्वभाव अचेतन है। चेतना-शक्तिका कार्य्य केवल निषेध, परीक्षा, नियमन, परिमाण, तुलन, योजन, वर्गीकरण, व्याप्तिग्रह, अनुमान आदि हैं। वह अन्तमें कहता है कि शुद्ध और दुःखी संसारी जीवको ईश्वरके अभिमुख होकर मुक्तिका यत्न करने ही में वास्तविक शान्ति और सुख है नकि संसारका बखेडा बढाने में। तथापि जबतक ऐसी अवस्था नहीं आती तबतक दुखके भयसे कर्म नहीं छोड़ना चाहिये।

विलियम जेम्स William James मनोविज्ञानका प्रसिद्ध विद्वान्। अनेक पुस्तकों में इसके अनेक विचार मिलते हैं जिनका अति सूक्ष्म विवरण इस प्रकार है। यह जीवके अमरत्व में विश्वास रखताथा कभी इस विषयको मुख्य समझताथा कभी गौण। "प्रत्येक मनुष्यसे पृथक् परन्तु विशेष रूपमें निरन्तर उसके साथही, एक उससे अधिक बड़ी शक्ति रहती है जो उससे और उसके आदर्शोंसे सहानुभूति रखती है"। *

"जैम्स सत्ताकी एक और नाप" में विश्वास रखता है

*Varieties of Religious Experiences by W. James.

और बार २ अपने पुस्तकमें उसका कथन करता है। वह कहता है "चेतनाका विलक्षण विस्तार, बेसुध करने वाली क्लोरोफार्मकी तरहकी एक वस्तु विशेष (Anaesthesia) के प्रयोगसे होता है"।

एक दूसरे पुस्तक * में मनुष्यके जीवन पर विचार करते हुए वह कहता है कि आत्मिक जीवन सर्वथा मस्तिष्क के आधीन नहीं है, और यह कि "समस्त प्राकृतिक आनुभाविक जगत् समय का अप्रकट रूप है और वही अपरिमित विचारको जो मुख्यतया सत्य है, असङ्ख्य अंशों में विभक्त करके परिमित चेतना का प्रवाह बहा देता है, उन्हींको हम अपना २ जीव कहते हैं" जैम्स अपने इसी विचारको अधिक स्पष्ट करनेके लिये प्रसिद्ध कवि शेली (Shelly) का एक पद्य उद्धत करता है जिसका भाव यह है "जीवन अनेक रंगीन शीशोंके शिखरवत् है और नित्यताकी श्वेतज्योतिको मलिन करता है" † वह फिर आगे कहता है कि "जब अन्तमें मस्तिष्क का काम सर्वथा बन्द होजाता है अथवा (मनुष्य) मरजाता है, तब वह "परिमित चेतना प्रवाह" आज्ञानुवर्ती होकर इस प्राकृतिक जगत्से सर्वथा चला जाता है। परन्तु वह मुख्यसत्ता, जिसने चेतना प्रदान की थी, चेतना

* Jame's Book on Human Immortality.

† शेली के शब्द यह हैं :-

"Life like a dome of many coloured glass stains the white radiance of eternity."

प्रवाहके प्राकृतिक जगत् में रहने परभी (दूसरे) अधिक वास्तविकता रखने वाले जगत् में निर्दोष बाकी रहता है वह अबभी है और आगेभी रहेगा अवश्य हम उसके बाकी रहनेके ढंगोंसे अनभिज्ञ रहते हैं"।

अपने एक और पुस्तक * में वह अपना झुकाव, किसी प्रकारके एक अपौरुष जीवनमें विश्वास रखने की ओर प्रकट करता हुआ कहता है कि उससे हम वास्तविक जानकारी न रखते हुये भी अभिज्ञ होसकते हैं, इसी विचारको वह एक उदाहरण देकर स्पष्ट करता है "जिस प्रकार कुत्ते और बिल्ली हमारे पुस्तकालयोंमें रहते हुये पुस्तकको देखते और हमारी बात चीत सुनते हुये भी उनसे अनभिज्ञ रहते हैं इसी प्रकार हम संसारमें हैं।"

आलिवर वेडेल होम्स
Oliver Wendell Holms

होम्सने अपने पुस्तक "विचार और आचारमें यन्त्रव्यापार" † नामकमें अपने एक विलक्षण अनुभव और परीक्षणका उल्लेख किया है:—"एक बार मैंने 'ईथर' की पूरी मात्रा श्वास द्वारा इस विचारके साथ ऊपर चढ़ा ली कि चेतनाके लौटनेके साथ ही जो विचार मस्तिष्कमें हों उन्हें लेख-

* A Pluralistic Universe by W. James p. 309.

† Mechanism in thought and morals by O. W. Holms.

बद्ध किया जावे। मेरा मस्तिष्क विजयोत्सवसे सम्बन्धित वीरता-पूर्ण सुरीलेगानसे गुञ्जायमान होगया। अनन्तत्वका परदा उठगया था........इसलिये सब भेदखुलगया। (गानके) कुछ शब्दोंने मेरी बुद्धिको ऊंचा करके दिव्य जीवोंकी बुद्धिके सदृश करदिया। फिर मैं अपनी असली हालतमें आगया। मुझे वे विचार यादथे जो इसबीचमें उठे थे अतः शीघ्रता से डेस्कके पास जाकर उन्हें लिख लिया वे शब्द अबतक मेरे हृदयमें प्रकाशित होरहे हैं, और वे ये थे :–"बच्चे हंस सकते हैं, बुद्धिमान चिन्तन करेंगे"।* उस समय मेरा मास्तिष्क तारपीनकी तीव्रगन्ध से भरा हुआ सा था।

ई० एस० पी०हेनस
E. S. P. Hayness

"जीवके अमरत्व सम्बन्धी विश्वास" नामक पुस्तकमें "जीवन" पर विचार करते हुये लिखता है "प्राणियोंके जीवन साधारण अग्निके सदृश हैं, एक पात्र सहित जिसमें कुछ कोयले हैं। उपमाके विवरणमें जाकर हम "जीवन" को गर्मी और "चेतना" को ज्वाला कहते हैं। जब अग्निका प्रज्वलित होना प्रारम्भ होता है तो हम उसकी गर्म्मी और ज्वाला दोनोंका बहुत थोड़ा विचार करते हैं, अग्निकी इस अवस्थाको हम बालकपनके अनुकूल पाते हैं, अब अग्निके तीव्र होनेपर हम ज्वाला देखते हैं जिसका तात्पर्य्य यह है कि वायु

* अङ्गरेजी के शब्द यह हैं :–"Children may smile; the wise will ponder."

कोयलेमें इतनी गर्म होगई है कि अग्निको पकड़नेलगती है। कतिपय विरोधी हेतुओं और घटनाओंसे कोयले एकत्र होकर दब गये, अग्नि बुझ गई और ज्वालायें भी समाप्त होगईं, इस अवस्थाको हम अकालमृत्यु कहते हैं, परन्तु इस प्रकारकी दुर्घटनाओंको छोड़कर साधारण अवस्थामें अग्नि उस समय तक प्रज्वलित रहेगी जबतक कोयले बाकी रहेंगे। जब कोयले समाप्त होंगे तो ज्वालायें भी समाप्त हो जायंगी और अग्नि भी। हां कुछ गरम राख अवश्य बाकी रहेगी, और वह भी थोड़ी देरमें ठंडी हो जायगी, इस उपमामें कोयला, वायु और गर्मी मात्र, ज्वालाओंके हेतु हों, यह आवश्यक नहीं, सम्भव है कि किसी आर स्थानपर ज्वाला-ओंके प्रकट होनेके हेतु कुछ और भी हों, परन्तु उसके जाननेके साधन हमारे पास नहीं हैं, यह घटना कि ज्वाला कोयले और गर्मीके मेलहीसे रह सकती है आनुषङ्गिक परिवर्तन (Concomitant Variations) का रूप है।*

डाक्टर टैगार्ट Dr. M. C. Taggart

केम्ब्रिजका दार्शनिक आत्माके अमरत्वको स्वीकार करता है। उसने अमरत्वके विरोधियों को उत्तर देनेके लिये एक पुस्तक लिखा है। पुस्तकमें आत्मा और शरीरपर विचार करते हुये लिखा है कि "यदि एक आदमी एक मकान में बन्द कर दिया जावे तो खिड़कीके शीशों की पारदर्शिता, आवश्यक अवस्था

---

* The Belief in Personal Immortality by E. S. P. Haryness p. 60 and 61.

उसके आकाश प्रदर्शनकी होगी, परन्तु इससे यदि कोई यह परिणाम निकाले कि यदि वह मकानके बाहर होता तो आकाश न दिखाई देता क्योंकि देखनेके लिये खिडकियोंके शीशे नहीं हैं, यह बुद्धिमत्ताका परिणाम न होगा" * इस पुस्तकमें जीवके अनादित्वका भी समर्थन करनेके लिये एक अध्याय रक्खा गया है, जिसमें उसने जीवके अनेक जन्म होने की बात कहते हुये स्वीकार किया है कि पूर्व जन्मोंकी स्मृति आवश्यक नहीं। अनेक जन्मोंके सम्बन्धमें पुस्तकरचयिताके शब्द इस प्रकार हैः—परिवर्तन, † प्रयास और मृत्युकी प्रत्यावृत्ति सीमा रहित है; अथवा यह हो कि यह क्रम स्वयं नष्ट होकर उस पूर्णतामें मिल जावे जो समय और परिवर्तन दोनोंको अतिक्रम करता है। इसे प्रकारका अन्त सम्भव है कि आजाये परन्तु किसी अवस्था में भी वह समीप नहीं होसकता"।

जी. लोइस, डिकसिन
G. Lowes Dickinson

डिकसनने एक पुस्तक "धर्म और ‡ अमरता" नामका लिखकर जीवकी अमरताका समर्थन किया है। वह कहता है कि यह कहना, कि हम मृत्युके बाद बाकी नहीं रहते,

---

* Some Dogmas of Religion by Dr. M. C. Taggart p. 105.

† Do „ „ p. 138.

‡ Religion and Immortality by G. L. Dickinson.

स्वमताभिमानमात्र है और साथ ही यह कहना कि मरनेके बाद हम बाकी रहते हैं या नहीं, इसका जानना असम्भव है, दुराग्रह अथवा मूर्खता है" पुस्तकमें बतलाया गया है कि कोई व्यक्ति इस एक जन्ममें अपने आदर्शको प्राप्त नहीं कर सकता और न अपनी शक्यताका अनुभव कर सकता है इसलिए जीवका अमरत्वविधान अनिवार्य हैं।

पादरी मेकाइल मेहर Father Michael Mehor ने मनोविज्ञान पर एक पुस्तक लिखा है। पुस्तकके प्रारम्भमें एक अध्याय जीवके अमरत्व विषयके लिए भी अर्पण किया है। इस अध्यायमें उन्होंने "लुकरेटियस" (Luckretius) और उसके शिष्यों पर यह अपवाद लगाया है कि मृत्युके बाद प्राणीकी क्या अवस्था होगी, इस चिन्तामें बचनेके लिए उन्होंने मृत्युके बाद फलाफल प्राप्तिकी प्रत्येक पद्धतिसे, अपनेको पृथक् रक्खा है। पादरी साहिबका कथन है कि इस प्रकारकी किसी पद्धतिके न स्वीकार करनेका फल यह होगा कि मनुष्योंमें सदाचारका विचार अव्यर्थसा हो जायगा। इस कथनके बाद पुस्तकमें जीवकी स्वतन्त्र सत्ता, उसमें सादगी और आत्मतत्वका होना, प्रमाणित करते हुए, बलपूर्वक उसकी पृथक्ता प्रमाणितकी गई है। अध्यायके अन्तमें पादरी साहिबने यह भी कह डाला है कि जीवका ईश्वरने उत्पन्न किया

* Psycholgy by Micherl Mehor p. 491.

है और वही उसे नष्ट भी कर सकता है। पुस्तकके अन्तिम पृष्ठ पर यह भी बतलाया गया है कि पशुओंका जीवन प्राकृतिक शरीरसे भिन्न नहीं है अपितु शरीर पर ही निर्भर है और शरीरके नाश होनेके साथ ही उसका भी नाश हो जावेगा *

बर ट्रैण्ड रसल
Bertrand Russel

इसने "दर्शन उद्देश्य" नामक पुस्तक में लिखा है कि यह प्रश्न कि हम "आत्म सत्ता" से जो विचार और अनुभवोंसे पृथक है, अभिज्ञ है, बडा कठिन है और निश्चित रीतिसे इस विषयमें कुछ कहना बुद्धिमत्ता न होगी। जब हम आत्म तत्वको जाननेके लिए यत्नवान् होते हैं तो सदैव हमारे मस्तिष्कमें कोई न कोई विचार उठते अथवा किसी न किसी अनुभवकी स्मृति जागृति हो जाती है परन्तु जिसे हम "मैं" कहते हैं उसका कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता जिसके द्वारा विचार अथवा अनुभव होते हैं। सम्भवतः आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है परन्तु निश्चित रीतिसे इस विषयमें कुछ कहना उचित नहीं है †

---

* Psychology by Michael Mehor p. 500.

† Problems of Philosophy by B. Russell p. 78 and 80.

दूसरा परिच्छेद

यूरोपकी १९वीं शताब्दीका विज्ञान (साइंस) और आत्मा सम्बन्धी विचार।

डब्ल्यू के० क्लीफोर्ड W. K. Clifford

इसका मत है कि चेतना और उसके द्वारा जो परिवर्तन मस्तिष्कमें होते रहते हैं, उनके नियम नियत और परिमित हैं और उनके अनुकूल परिणाम अवश्यम्भावी हैं। चेतना एक मिश्रित वस्तु अणुओंके संयोग से बना है जिसको हम "बोधस्रोत" कहते हैं, मस्तिष्क भी एक मिश्रित वस्तु है और वहभी अणुओंके संयोग का परिणाम है जिसको हम "सन्देशतन्तुस्रोत" कहते हैं। व्यक्तिगतबोध सदैव व्यक्तिगत सन्देश तन्तुके साथ रहता है, अथवा यों कहिये कि "बोधस्रोत" सदैव "सन्देशतन्तुस्रोत" के साथ रहता है। यदि सन्देशतन्तु स्रोत सूखजावे तो क्या इसका यह फल न होगा कि बोधस्रोत भी सूखजावे? और इस प्रकार सूख जाने पर फिर बोधस्रोत चेतनाको प्रकट न कर सकेगा *।

प्रोफेसर मेस्टरबर्ग Professor Musterberg

"मानसिक कार्य मस्तिष्कके कार्यों पर निर्भर है" इस वादकी स्थापनाके लिए मस्टरबर्ग लिखता है यदि बहु रक्त प्रवाहसे मस्तकके अवयव निकम्मे हो जावें तो

---

* Prof. Clifford's lectures and Essays Vol. I p. 247--249.

उसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति अन्धा या बहरा हो जाता है। इसी प्रकार से मस्तिष्कके हो जानेसे वह बुद्धिभ्रष्ठ (पागल) हो जाता है। यदि शिर पर भारी चोट लग जावे जिससे मनुष्य बेसुध हो जावे तो उसका जीवन ही समाप्त हो जाता है रासायनिक तत्वोंसे मस्तिष्कको प्रभावित कर देनेसे हमारी वृत्ति और भाव दोनों बदल जाते हैं। मनुष्यके मन और बुद्धिका पूर्ण विकास मस्तिष्ककी पूर्णताके साथ ही होता है। एक अज्ञानी पुरुषका मानसिक जीवन विकास रहित मस्तिष्कसे सम्बन्धित होता है* । एक दूसरे स्थान लिखा है कि वे वैज्ञानिक जो मस्तिष्कके व्यापारवादसे जीवके अमरत्व सिद्ध होनेकी आशामें उन घटनाओंका अवलम्ब ढूंढते हैं जो शरीरशास्त्रसे निरूपत नहीं हो सकतीं उसी भूमि पर हैं जिस पर ऐसे ज्योतिर्विद् ठहरे हुए हैं जो अपने दूरदर्शक यन्त्रोंसे ब्रह्माण्डमें ऐसी जगह खोजना चाहते हैं जहां आकाश न हो । वही शून्यस्थान ईश्वर और शरीररहित अमर जीवोंके लिए हो सकता है †

रोमेन्स (Romanes) अपने एक पुस्तकमें रोमैन्सने लिखा है कि "एडीसनके लम्पमें प्रकाशको, जो दीपकसे निकल जाता है सामान्यत: कह सकते हैं कि एक

* Psychology & Physiology by Prof. Musterberg p. 41.

† Do. p. 91

‡ Romanes-Mind, motion & Monism p. 29&30.

सेकिण्डमें कतिपय कम्पनोंका जो कार्बनमें उठते हैं अथवा उसके शीतोष्ण का परिणाम है क्योंकि कम्पनोंका इतना मान कार्बनमें नहीं हो सकता सिवाय इसके कि उसका शीतोष्ण मापक यंत्र इतने दरजेका बनाया जावे जितनेसे हमारे नेत्रों तक प्रकाश पहुंचता है। इसी उदाहरणसे मस्तिष्क अथवा मनकी क्रियाओंसे एक विचार माला उत्पन्न होती है। इच्छाको उदाहरणमें आए प्रकाशकी जगह समझना चाहिये जो मनद्वारा मस्तिष्कमें उत्पन्न होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रकाश शीतोष्ण द्वारा कार्बनसे उत्पन्न होता है। और जिस प्रकार प्रकाश फोटोग्राफीके कार्य्योंका हेतु होता है उसी प्रकार इच्छा शारीरिक क्रियाओंका हेतु होती है। जिस प्रकार एक विशेष प्रकारकी प्राकृतिक गति जोकार्बन में उत्पन्न होकर फोटोग्राफीका कारण बनती है उसी प्रकार एक विशेष प्रकारकी प्राकृतिक गति जो शारीरिक क्रियाओं का हेतु होती है, बिना इच्छाके उत्पन्न नहीं होसकती। इसका परिणाम यह है कि इच्छा यदि एक ओर मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार गति उत्पन्न करती है तो दूसरी ओर उसी गतिके द्वारा शारीरिक क्रियाओंका भी हेतु होती है। रोमेन्सके मतमें इच्छा ही प्रत्येक कार्य्यका मूल कारण है और इसी आधारपर उसका मत है कि "मनोवैज्ञानिकतत्व" ही प्रत्येक घटनाका निर्णायक है। वह यह भी कहता है मन "गतिमान् प्रकृति" से भिन्न और कुछ नहीं है।

हर्बर्ट स्पेंसर
Herbert Spencer

प्रसिद्ध अज्ञेयवादी, आत्मा और परमात्मा यहां तक कि विज्ञान (साइन्स) के मूल कारण को भी मनुष्यके लिये अज्ञेय बतलाता है। उसका कथन है कि रूप परिणामवाद जिस प्रकार प्राकृतिक शक्तियोंमें काम करता है उसी प्रकार मानसिक शक्तियों में भी। रूपपरिणामवाद किस प्रकार व्यवहृत होता है और किस प्रकार स्थिति शक्तियां गति, ऊष्णता, अथवा प्रकाश चेतन का रूप धारण कर लेती हैं और किस प्रकार आकाशस्थ कम्पनों के लिए यह सम्भव है कि बोध उत्पन्न करें जिसे हम ध्वनि अथवा शब्द कहते हैं, अथवा किस प्रकार रासायनिक परिवर्तनों से शक्तियां मस्तिष्कमें प्रकट होकर भाव उत्पन्न करता है, ये सब गुप्त रहस्य हैं जिनका पता लगाना असम्भव है, अवश्य प्राकृतिक शक्तियोंके रूपान्तर परिणामकी अपेक्षा में यह गहनभेद नहीं है *

जोजिफ मेकब
J. Mecabe

मेकबने अपने एक पुस्तकमें लिखा है † कि गतिशक्तिके आयुधागारमें मस्तिष्ककी त्वचामें कमसे कम ६०० मिलियन ‡ खरब (Billion) परमाणुओंके होनेका अनुमान किया जाता है।

* First Principles (2ud Edition) by H. Spencer p. 217

† Evolution of mind by J. Mecabe p. 15 & 16.

‡ एक मिलियन दस लाखका होता है।

परमाणुओंसे अणु अप्रकट विधिसे बनते हैं और अणुओंसे इसी प्रकार गुप्त विधिसे कोष (घटक) बनते हैं। और इन कोषोंसे शरीरका ढांचा ऐसी अद्भुत रीतिसे बनता है कि यह निर्माण व्यवस्था हमको आश्चर्य के अथाह समुद्रमें डाल देती है इस शरीरमन्दिरके निर्माण अर्थात् छोटे बड़े अवयवोंके मिलानके लिए एक तरल पदार्थ प्रयुक्त हुआ है, जिसके एक कणमें एक सहस्र टनकी योग्यता है, और उसमें उतनी गति शक्ति काममें आई है जो १० लाख घोड़ोंकी शक्ति रखनेवाले बलगृहसे ४०मिलियन* वर्षोंमें उत्पन्न होसकती है। एक ओर तो यह महान् रहस्यपूर्ण कार्य, और यह हृदय हरिणी शक्यता, दूसरी ओर हम अभी तक यह भी नहीं जान सके हैं कि मस्तिष्क क्या कर सकता है और क्या नहीं। परन्तु "टिंडल" (Tyndall) बार २ कहा करता था कि "यह कहना कि हम मस्तिष्कसे मन या चित्तका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते, स्वमताभिमानमात्र है"।

अस्तु जब तक हम मस्तिष्ककी रस क्रिया और ढांचेका कुछ अच्छा ज्ञान न प्राप्त कर लेवें हमको दोनों ओरके अभिमान पूर्ण मतोंसे पृथक् रहना चाहिए। सम्प्रति मस्तिष्क एक ऐसी तमःपूर्ण गुफा है कि उसमें व्यवच्छेदकों और शरीरविद्याके पण्डितोंके दीपक, मस्तिष्ककी गुप्त समस्याओंको सुलझानेकी जगह और उलझन बढा रहे हैं।

---

* वैज्ञानिक संसारके गणितमें अरब और खरब छोटेसे छोटे अङ्क समझे जाते हैं।

मस्तिष्कके लिए यह कहना कि वह क्या २ विशेष कार्य कर सकता है और क्या नहीं उस समय तक सर्वथा अयुक्त होगा, जब तक हम उसकी निर्माण व्यवस्थाको इतना थोड़ा जानते रहेंगे जितना कि इस समय जानते हैं। हम मस्तिष्क और चित्त के कार्योंके अर्थवैपरीत्यका ही, उनको भिन्न २ समझकर, विवरण नहीं दे सकते हैं कि एक मानात्मक और दूसरा गुणात्मक है। यदि चित्त गुणात्मक ही हो तो भी गुणात्मक वस्तुओंके बहुतसे कार्य अन्तमें मानात्मक वस्तुओंका रूप ग्रहण करते हैं, अथवा कमसे कम हल करनेके लिए यह प्रश्न खुला हुआ है। ऐसी अवस्थामें (न जानते हुए भी) उनकी भिन्नताका विवरण पौराणिक कल्पनाओंसे बढ़ कर न होगा, जो प्रायः अप्रतिष्ठित होती हैं।

जान टिण्डल (John Tyndall)
१८२०-१८९३ ई०

चेतना व्यापार पर विचार करते हुए टिण्डलका कथन * है कि वह स्रोत कोई अलौकिक सत्ता नहीं है, किन्तु एक अनैन्द्रियिक शक्ति है; अर्थात् टिण्डलके मतानुसार समस्त शक्ति जो वनस्पति अथवा प्राणिसंसारमें है उस सबका केन्द्र सूर्य है..........मनुष्य अथवा पौदोंमें कोई उत्पादक शक्ति (जीव) नहीं है। समस्त शक्ति जो मनुष्य और पशुओंके अवयवोंमें पाई जाती या उनसे प्राप्त की जाती है अथवा

* Lectures & Essays by John Tyndall p. 94to96

वह शक्ति जो काष्ठ अथवा कोइलेके जलानेसे प्राप्त होती है,उसके उत्पन्न होनेका वास्तविक साधन सूर्य ही है । कुछेक अंश तक सूर्यके ठण्डा होनेका विवरण देते हुए टिण्डल सौर्य्य शक्तिका विवरण इस प्रकार देता है, कि प्रकाश और गर्मीकी शक्ति अपने को इस रूपमें प्रस्तुत करती है कि उस नवीन शक्ति को यान्त्रिकशक्ति सेसर्वथा भिन्न वस्तु कहा जा सकता है परन्तु ये दोनों शक्ति स्वतन्त्र हैं एक दूसरेसे नहीं प्राप्तकी जातीं । साधारण काष्ठका "शीतोष्ण" जलती हुई अग्नि तक पहुंचाया जासकता है । एक चतुर लुहार लोहेको पीटकर उसमें अग्निकी चमक पैदा करदेता है, इस प्रकार वह अपने स्थूल यन्त्र हथोड़ेहीसे प्रकाश और गर्मी दोनों पैदा करदेता है । यह साधन यदि उन्नत अवस्थामें पहुंचाया जावे तो उससे सूर्य्यका प्रकाश और गर्मी उत्पन्न होसकती है............इस प्रकार जब प्रकाश और गर्मी जड़ प्रकृतिके माध्यम से उत्पन्न होसकते हैं,तो इस प्रकार उत्पन्न हुए प्रकाश और गर्मीसे जीवनशक्ति भी उत्पन्न होसकती है, जिसका आधार, मानना पड़ेगा, कि यान्त्रिक कार्य ही है........ सूक्ष्म रासायनिक कार्य्यसे सूर्य्यके द्वाराही पौधोंकी उत्पत्ति होती है । मनुष्य और पशुओंके जीवनोत्पत्तिके लिये जो सूक्ष्म रासायनिक कार्य्य होते हैं वे कुछ गूढ हैं ।

हम बनस्पति खाते हैं और आक्सिजनको श्वास द्वारा अपने भीतर भेजते हैं । हमारे शरीरोंमें आक्सिजनके प्रवेशसे, जिसे

सूर्य्य ही ने कार्वन और हाइड्रोजनसे पृथक् किया था, वह गर्मी पैदा होती है जिसे "जीवनोष्णता" कहते हैं और जिससे प्राणियोंके आकार विकसित होते हैं । आणविक शक्ति भिन्न २ आकारोंको बनाती है । यह शक्तिभी सूर्य्य ही से आती है । कार्वन और अक्सिजनको पृथक् करते हुये यह शक्ति कुछ इस प्रकार की होजाती है कि एक सूरतमें गोभीका पौधा पैदा करदेती है, तो दूसरीमें बांझका पेड़ । इसके विपरीत कार्वन और आक्सीजनके पुनः सङ्घातकी कार्य्यप्रणालीसे वही शक्ति एक सूरतमें मेंडक का और दूसरीमें मनुष्यके शरीरका आकार बना देती है । पशुऔर मनुष्य शरीरके निर्माणमें जो प्रकृति व्यय होती है वह जड है । इन शरीरोंका कोई ऐसा अंश नहीं है जो प्रारम्भमें चट्टानों, जल और वायुसे न लिया गया हो । इन्हीं वस्तुओंमें भिन्न २ परिवर्तन होकर शरीरके समस्त चेतन और अचेतन भाग बन जाते हैं । इस प्रकार उसके मतमें जीवात्माकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । परन्तु यह अन्तमें उसे स्वीकार करना पड़ा कि इस बातको उदारतासे स्वीकार करलेना चाहिये कि इस समय तक रसायनवेत्ता कोई ऐसा परीक्षण नहीं कर सकते हैं कि जिस से जीवन शक्तिकी उत्पत्ति प्रमाणित होती हो ।

थौमस हेनरी हक्सले
Thomas Henry Huxly

हक्सलेने अपने जगत्प्रसिद्ध व्याख्यान "जीवनके प्राकृतिक आधार" में जो उसने १८६८ ई०में दिया.

था 'कललरस, की बनावट पर विचार करते हुए लिखा है कि "समस्त प्रकारके कललरसोंमें, जो अब तक जांचे गए हैं, चार मूल तत्त्व कार्बन, हाईड्रोजन, आक्सिजन और नाइट्रोजन पाए जाते हैं उनका सम्मेलन अत्यन्त गूढ़ है। इसी कारण इस संयोगके सम्बन्धमें यह निश्चित नहीं हो सका है कि किस २ मात्रामें कौन वस्तु इसमें सम्मिलित है। इसी संयोगको "प्रोटीन" नाम भी दिया गया है। परन्तु ठीक रीतिसे हम नहीं जानेत कि प्रोटीन किन२ वस्तुओंके संयोगसे किस प्रकार बना है। कललरस यद्यपि वनस्पति और प्राणियोंके शरीर दोनोंमें पाया जाता है, परन्तु दोनोंमें एक विलक्षण अन्तर देखा जाता है कि वनस्पति तो कललरस खनिज वस्तुओंके मिश्रित रूपोंसे स्वयं बना लेती है, परन्तु प्राणियोंमें यह योग्यता नहीं है। वे कलल रसके लिए वनस्पतियों पर निर्भर रहते हैं। दोनोंमें यह अन्तर क्यों है, यहभी अभी तक अज्ञात है। उसने फिर लिखा है कि उपर्युक्त चारों मूल भूत निर्जीव हैं। इनमेंसे जब कार्बन और आक्सिजन विशेष मात्रा और विशेष अवस्थामें मिलते हैं, तो कार्बोनिक एसिड उत्पन्न करते हैं। आक्सिजन और हाईड्रोजन से जल बनता है, और नाइट्रोजन और कुछ अन्य * मूल

* सारे व्याख्यानमें इस अन्य मूलभूतका पता हक्सलेने नहीं दिया, बिना इस मूलभूतके बतलाये, कललरसके लिये ही, यह नहीं कल्पना की जा सकती, कि उसके समस्त मूलभूतोंको हक्सले जानता था, चेतनाका ज्ञान तो दूरकी बात थी।

भूत जब मिलते है तो नाईट्रोजिनस साल्ट" पैदा करते है। ये तीनों मिश्रित वस्तुतत्त्व किसी विशेष * रीतिसे मिलते हैं तो अपनेसे भी अधिक दुर्बोध वस्तु कलल रसको पैदा करते हैं और इसी रससे जीवनके दृश्य प्रकट होते हैं। वह इसी व्याख्यानके एक दूसरे भागमें कहता है यदि कार्बोनिक एसिड, जल और नाइट्रोजिनस साल्टको पृथक् करके उनके स्थानमें उस कललरसको सममात्रामें ले लें, जो प्रथमसे वर्तमान कलल रस के प्रभावसे प्रभावित हो, तो क्या स्थितिमें कुछ भेद † पड जायगा? ‡

हक्सलेने एक और पुस्तक "पशुओंके वर्गीकरण" नामककी भूमिकामें लिखा है § "न पाशविक जगत् में ऐसा कोई अन्य वर्ग है जो अधिक प्रशंसनीय रीतिसे इस उत्तमतया स्थापित वादको कि "जीवन शरीर रचनाका हेतु है परिणाम नहीं" ¶

---

* वह विशेष रीति भी हक्सलेको अन्त तक नहीं मालूम हुई।

† अवश्य पड जायगा, यदि अन्तर न पड़ेगा तो प्रथमसे वर्तमान कलल रसके प्रभावसे प्रभावित (under the influence of pre-existing living protoplasm) के अर्थ ही क्या हुए।

‡ Lectures and Essays by T.H. Huxley p. 47-53.

§ Classification of animals by T. H. Huxley p. 10.

¶ अंगरेजी का वाक्य इस प्रकार है " Life is the cause and not the consiquence of organisation,"

और जिसे जान हंटरने बहुधा समर्थन किया है, स्पष्ट करता हो, क्योंकि इन तुच्छ कोटिके जन्तुओंमें शरीर रचनाके नाम योग नाममात्रको भी कोई बात नवीन आविष्कृत यन्त्रोंकी सहा-यता पूर्वक खुर्दवीनोंके द्वारा देखनेसेभी प्रकट नहीं हुई है........ यह आकार और इन्द्रियशून्य जन्तु हैं, जिनके शरीरके अवयव भी परिमित रूपसे नहीं विभक्त हैं, तोभी उनमें आवश्यक लक्षण और गुण चेतनाके पाये जाते हैं" ।

डार्विन के सिद्धान्त ।

अपने ग्रहण सिद्धान्तके आधारपर डार्विनने निम्न बातें निर्धारित की हैं :-

(१) एक ही योनिके जीवोंकी अन्तः प्रकृतियोंमें भी कुछ न कुछ व्यक्तिगत विभिन्नता होती है और "स्थिति साम-ञ्जस्य" के नियमानुसार उनमें भी ठीक उसी प्रकार फेरफार होजाता है जिस प्रकार शरीरके अवयवों में ।

(२) इस परिवर्तनसे जो विशेषतायें (स्वभाव परिवर्तनके कारण) उत्पन्न होजाती हैं, वे आगे होने वाली सन्ततिको भी अंशतः प्राप्त होती हैं और इस प्रकार वंशपरम्पराक्रमसे उत्तरोत्तर अधिक प्रवर्द्धित रूप प्राप्त करती जाती हैं ।

(३) ग्रहण धर्मके अनुसार मनोवृत्तिकी जो २ विशेषतायें सबसे अधिक उपयोगी होती हैं, वे रक्षित रहती हैं जो स्थितिके

अनुकूल न होनेके कारण उपयोगमें नहीं आती, नष्ट होजातीहैं।

(४) इस रीतिसे मनोवृत्तिकी जो अनेक विभिन्नतायें उत्पन्न होजाती हैं उनसे अनेक पीढ़ियोंके पीछे उसी प्रकार नई २ अन्तः प्रवृत्तियोंकी सृष्टि होती है, जिस प्रकार अवयवोंके भेदसे नये आकारके जीवोंकी। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती हैं (१) मूल (२) उत्तर।

मूल प्रवृत्तियां वे हैं जो अचेतनक्षोभके रूपमें मनोरस में जीवकी आदिम अवस्था ही से रहती हैं। विशेषकर आत्मरक्षा वंशरक्षा (प्रसव और शिशुपालन) की प्रवृत्ति। सजीव द्रव्य की ये दोनों प्रवृत्तियां क्षुधा और प्रीति (समागम की वासना) सर्वथा अज्ञानकी दशामें उत्पन्न होती हैं, बुद्धिका इनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उत्तर प्रवृत्तियोंका क्रम और है, आरम्भमें तो ये बुद्धिके उपयोग द्वारा विचार और सङ्कल्प द्वारा ज्ञानकृत उद्दिष्टकर्म द्वारा उत्पन्न हुईं, पर पीछे धीरे २ वे इतनी मंजगईं कि अज्ञानकी दशामें भी प्रकट होने लगीं, यहां तक कि परम्पराके विधानसे वे आगेकी पीढ़ियोंमें स्वभावसिद्ध सी होगईं।

उन्नतजीवोंकी अज्ञानकृत क्रियायें जो शरीरधर्म्म कहलाती हैं (पलकमारना आदि) पूर्वज जीवोंमें ज्ञानकृत थीं,पर पीछे स्वभाव सिद्ध प्रवृत्तियोंमें दाखिल होगईं।

हेकलका मत

शरीर और जीवन दोनोंका प्राकृतिक आधार कललरस है।

यह एक चिपचिपा और कुछ दानेदार पदार्थ है। समस्त प्राणियोंके सूक्ष्म घटक इसीके होते हैं। यह चार मूल द्रव्योंका मिश्रण है:—

(१) नाइट्रोजन, (२) आक्सिजन, (३) हाइड्रोजन, (४) कार्बन। इनके सिवा जल और लवणका भी इसमें मेल होता है।

प्राणियोंके समस्त अवयव त्वचा, मांस, हड्डी, बाल, सींग, नाखून, दांत, मांसपेशी और धमनियां इत्यादि, इसी कललरस से बनी हैं। प्राणियोंके जीवनके आधारभूत द्रव्यको मनोरस कहते हैं। यह कललरस निर्मित्त अवयवोंका समुदाय मात्र है। "रासायनिक विश्लेषणसे इसके दो भाग होते हैं, जिनसे वह बना है (१) अण्डसार रस, (२) अङ्गारक। अण्डसाररस भी एक गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ है, जो अण्डोंकी ज़र्दी और जीवोंके रक्त आदिमें रहता है, और आक्सिजन कार्बन, नाइट्रोजन, और हाइड्रोजन और कुछ गन्धकके मेलसे बना होता है। समस्त चेतन व्यापारोंका मूल यही मनोरस है।

प्राणियोंका शरीर निर्माण

सबसे पहले पुरुष और स्त्री घटक (वीर्य और रजके अणु) अपने केन्द्रों सहित मिलकर एक हो जाते हैं। गर्भाशयके भीतर बहुतसे क्षुद्र कीटाणु गर्भाणु (स्त्री घटक) को घेरते हैं, पर केवल एक ही उसके भीतर केन्द्र तक घुसता है। घुसने पर दोनोंके केन्द्र एक अद्भुत शक्ति द्वारा, जिसे प्राणसे मिलती जुलती एक प्रकारकी

रासायनिक प्रकृति समझना चाहिए, एक दूसरेकी ओर वेगसे आकर्षित होकर मिल जाते हैं। इस प्रकार पुरुष और स्त्रीके सम्वेदनात्मक अनुभव द्वारा, जो एक प्रकारके रासायनिक प्रेमाकर्षण के अनुसार होता है, एक नवीन "अङ्कुरघटक" उत्पन्न हो जाता है जिससे माता पिता दोनोंके गुणोंका समावेश होता है।

इस अङ्कुर (मूल) घटकके उत्तरोत्तर विभाग द्वारा बीज कलाओंकी रचना, द्विकल घटकी उत्पत्ति तथा और २ अङ्गोंका विधान होता है। और इस प्रकार भ्रूणपिंड क्रमशः बढ़ते २ बालकके रूपमें पहुंच जाता है।

बालक गर्भान्तर्गत पूर्ण अवयवोंको प्राप्त कर लेने पर भी चेतना रहित ही रहता है। बल्कि उत्पन्न होनेके बाद जब तक बालक बोलने नहीं लगता उस समय तक भी उसमें चेतना नहीं होती। "प्रेइर" (Preyer) के मतानुसार चेतनाका विकास उसमें उस समय होता है, जब वह बोलने लगता है।

चेतनाका विकासक्रम

जीवनके आरम्भमें प्रत्येक प्राणी एक अत्यन्त सूक्ष्म घटकके रूपमें होता है। फिर दो (पुरुष स्त्री) घटकोंके मेलसे अङ्कुर घटककी उत्पत्ति होती है। (जैसा ऊपर कहा जा चुका है) दोनों बीजघटकोंमें से प्रत्येकमें एक घटकात्मा होती है, अर्थात् दोनोंमें एक विशेष रूप की सम्वेदना और गति होती है।

गर्भके विधानके समय दोनों घटकोंके कलल रस और बीज

(केन्द्र) ही मिलकर एक नहीं हो जाते, बल्कि उनकी घटकात्मायें भी परस्पर मिल जाती हैं, अर्थात् दोनोंमें जो निहित या अव्यक्त गतिशक्तियां होती हैं, वे भी एक जीवन शक्तिकी योजनाके लिए मिलकर एक हो जाती हैं। अङ्कुरघटककी वह नवयोजित शक्तिही बीजात्मा है।

अतः प्रत्येक मनुष्यके शारीरिक और मानसिक गुण माता पितासे ही प्राप्त होते हैं। अंशक्रमानुसार माताके गुणोंका कुछ अंश गर्भाण्ड द्वारा और पिताके गुणोंका कुछ अंश क्षुद्र कीटाणु द्वारा प्राप्त होता है।

सम्पूर्ण मनोव्यापर कललरसमें होनेवाले परिवर्तनोंके अनुसार होते हैं। कललरसके उस अंशका नाम, जो मनो व्यापारोंका आधार स्वरूप प्रतीत होता है, मनोरस है, जैसा ऊपर कहा गया है। उस (मनोरस) की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। आत्मा या मनको हम जीवनतत्त्वमें हुए अन्तर्व्यापारोंकी समष्टि मात्र समझते हैं। उसी समष्टिको मनोरस कहते हैं। आत्मा अथवा मनोरसकी क्रियायें शरीरके द्रव्य वैकल्य धर्मसे सम्बद्ध हैं।

जीवात्मा का कार्य्य, मनोरसकी कुछेक रासायनिक योजना और कुछेक भौतिक क्रिया हुये बिना नहीं होसकता।

सम्वेदन समस्त जीव सम्वेदनग्राही हैं और अपने चारों और स्थित पदार्थोंका प्रभाव ग्रहण करते हैं और शरीरकी स्थितिके कुछ परिवर्तनों द्वारा उन पदार्थोंपर भी प्रभाव डालते हैं।

प्रकाश, ताप, आकर्षण, विद्युदाकर्षण, रासायनिक क्रियायें और भौतिक व्यापार सब के सब सम्वेदनात्मक मनोरसमें क्षोभ या उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। मनोरसके सम्वेदन की क्रमशः ५ अवस्थायें हैं :—

(१) जीवन विधानकी प्रारम्भिक अवस्थामें समस्त मनोरस सम्वेदनग्राही होता है और बाहर स्थित पदार्थोंसे उत्तेजना ग्रहण करके कार्य्य करता है। क्षुद्रकोटिके जीव और पौधे इसी अवस्था में रहते हैं।

(२) दूसरी अवस्थामें शरीरपर विषय विवेक रहित इन्द्रियों के पूर्व रूप कललरसके सुतड़ों और इन्द्रियोंके रूपमें प्रकट होते हैं। ये चक्षु और स्पर्शेन्द्रियके पूर्व रूप होते हैं जो उन्नत अणुजीव और क्षुद्र जन्तुओं और पोधों में पाये जाते हैं।

(३) इन्हीं मूल विधानोंसे विभक्त होकर इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं।

(४) चौथी अवस्थामें समस्त सम्वेदना विधानों (इन्द्रिय व्यापारों) का एक स्थान पर समाहार होता है। इस समाहारसे अचेतन अन्तः संस्कार उत्पन्न अर्थात् इन्द्रिय सम्वेदनके स्वरूप अङ्कित होते हैं।

(५) अङ्कित इन्द्रियसम्वेदनाका प्रतिबिम्ब सम्वेदनासूत्र जालके केन्द्र स्थलमें पड़ता है, जिससे अन्तःसाक्ष्य या स्वान्तर्वृत्ति बोध उत्पन्न होता है, जो मनुष्यों और उच्च कोटिके पशुओंमें पाया जाता है।

गति समस्त जीवोंमें एक "स्वतःप्रवृत्त गति" होती है।

सजीव मनोरसमें कुछ ऐसे आन्तरिक कारण होते हैं, जिनसे उसके अणु अपना स्थान बदलते हैं। ये कारण अपनी सत्ता मनोरसके रासायनिक संयोग ही में रखते हैं। मनोरसकी स्वतः प्रवृत्त गतियोंका कुछ तो ज्ञान परीक्षणोंसे हुआ है, और कुछ उनके कार्योंको देखकर समझी गई है।

ये "स्वतःप्रवृत्त गति ५ अवस्थाओंमें पाई जाती है।

(१) क्षुद्र जीवोंकी प्रारम्भिक अवस्थामें वहगति अङ्ग-वृद्धिकी अवस्थामें पाई जाती है।

इस गतिको हम परीक्षणोंद्वारा जान नहीं सकते, किन्तु उसके फल अङ्गवृद्धिको देखकर केवल उसका अनुमान कर सकते हैं।

(२) बहुतसे उद्भिदाकार सूक्ष्म जन्तु आगेकी ओर एक लसीला पदार्थ निकाल कर शरीर ठेलते हुए रेंगते या तैरते हैं।

(३) बहुतसे क्षुद्र समुद्रीय अणु जीव कभी घटस्थ वायुको निकालकर और कभी तरलाकर्षण शक्तिके द्वारा अपने गुरुत्वमें अन्तर डालकर पानीमें नीचे जाते या ऊपर उठते हैं।

(४) बहुतसे पौधे, जैसे लज्जालु (छुईमुई), अपने शरीरके बनावमें फेरफार डालकर पत्तियों तथा और अवयवोंको हिलाते हैं।

(५) आकुञ्चनगति सजीव पदार्थोंके बाहरी अवयवोंकी स्थिति में जो अन्तर पड़ता है, वह शरीरस्थ द्रव्योंके आकुञ्चन और प्रसारण द्वारा। यह आकुञ्चनात्मक गति चार प्रकारकी देखी जाती है:—

(क) जलमें रहने वाले अस्थिराकृति अणुजीवोंकी सी गति।

(ख) घटके भीतर कललरसकी वैसीही गति ।

(ग) रोईं या सुतड़े वाले अणुजीवों, शुक्रकीटाणुओं की कुटिल गति ।

(घ) मांस पेशियोंके सञ्चालनकी गति जो अधिकतर प्राणियों में देखी जाती है:—

प्रतिक्रिया

जीवन, सम्वेदन और गति (जिनका ऊपर वर्णन हुआ है) से पैदा होजाता है। सम्वेदन और गतिके संयोगसे जो मूल या आदिम मनोव्यापार उत्पन्न होता है उसे प्रतिक्रिया कहते हैं।

प्रतिक्रियाकी ७ अवस्थायें देखी जाती हैं:—

(१) क्षुद्र अणुजीवोंमें वाह्यजगत्‌की उत्तेजना (ताप, प्रकाश, विद्युत आदि) से केवल वह गति उत्पन्न होती है, जिसे अङ्गवृद्धि और पोषण कहते हैं:—

(२) डोलने फिरने वाले अणुजीवोंमें बाहरकी उत्तेजना शरीरतलके प्रत्येक स्थान पर गति पैदा करती है, जिससे आकृति बदलती रहती हैं।

(३) उन्नत कोटिके अणुजीवोंमें दो अत्यन्त सादे अवयव, एक स्पर्शेन्द्रिय, दूसरी गतिकी इन्द्रिय देखी जाती हैं। ये दोनों इन्द्रिय कललरसके बाहर निकले हुये अङ्कुरमात्र हैं।

स्पर्शेन्द्रिय पर पड़ी हुई उत्तेजना घटकस्थ मनोरस द्वारा गतिकी इन्द्रिय तक पहुंचती है और उसे आकुञ्चित करती है।

(४) मूंगे आदि अनेक घटक जीवोंका प्रत्येक सम्वेदन सूत्रात्मक और पेशीतन्तुयुक्त घटक, प्रतिक्रियाका एक २ कारण है। इसके ऊपर एक मर्मस्थल और भीतर एक गत्यात्मक पेशी तन्तु है। मर्मस्थल छूतेही पेशीतन्तु सिकुड जाती है।

(५) समुद्रमें तैरने वाले कीटोंमें बाहर सम्वेदनाघटक और चमड़ेके भीतर पेशीघटक होते हैं। इनके बीचमें मिलाने वाला एक मनोरस निर्मित सूत्र है, जो एक घटकसे दूसरे तक उत्तेजना पहुंचाता है।

(६) विना रीढ़ वाले जन्तुओंमें दो २ के स्थान तीन २ घटक मिलते हैं। तीसरा स्वतन्त्र घटक सम्बन्धकारक सूत्रके स्थानमें है, उसे मनोघटक या सम्वेदन ग्रन्थिघटक कहते हैं। इसीके साथ अचेतना अन्तःसंस्कार उस घटक ही में पैदा होते हैं। उत्तेजना सम्वेदनग्राही घटकसे मध्यस्थ मनो घटक पेशीघटक में पहुंचती है, जहांसे क्रियोत्पदक पेशीघटकमें पहुंचकर गति की प्रेरणा करती है।

(७) रीढ़वाले जन्तुओंमें तीनके स्थानमें चतुर्घटकात्मक करण पाया जाता है। सम्वेदनघटक और क्रियोत्पादक मिलते हैं। बाहरी उत्तेजना पहले सम्बेदनग्राही मनोघटक फिर सङ्कल्पात्मक घटक और फिर अन्तमें आकुञ्चनशील पेशीघटकमें जाकर

गति उत्पन्न करती है। ऐसे अनेक चतुर्घटात्मक करण और नये २ मनोघटकोंके संयोगसे जटिल चेतन अन्तःकरण पैदा होता है।

प्रतिक्रियाके उपर्युक्त विवरणोंसे स्पष्ट होगया कि वही आदिम मनोव्यापार है। प्रतिक्रियामें चेतनाका अभाव होता है। उत्तेजना पहुंचनेसे (बारूदके सदृश) गति उत्पन्न होजाती है। चेतना केवल मनुष्य और उन्नत जीवोंमें मानी जासकती है, उद्भिदों ओर क्षुद्र जीवोंमें नहीं। उद्भिदों और क्षुद्र जीवोंमें उत्तेजना पाकर जो गति उत्पन्न होती है, वह प्रतिक्रियामात्र है, अर्थात् सङ्कल्पित अथवा अन्तःकरणकी प्रेरित क्रिया नहीं है।

अन्तःसंस्कार

इन्द्रियोंकी क्रियासे प्राप्त बाह्य विषयका जो प्रतिरूप भीतर अङ्कित होता है, उसे अन्तःसंस्कार या भावना कहते हैं। अन्तःसंस्कार चार रूपमें देखा जाता है:—

(१) घटक गत अन्तः संस्कार क्षुद्र एक घटक अणु जीवोंमें अन्तः संस्कार समस्त मनोरसका सामान्य गुण होता है।

एक प्रकारके अत्यन्त सूक्ष्म गोल सामुद्रिक अणु जीव होते हैं जिनके ऊपर आवरणके रूपमें एक पतली चित्र विचित्र खोपडी होती है। इस खोपडीकी चित्रकारी सबमें एकसी नहीं होती भिन्न २ होती है। खोपडीकी रचना और चित्रकारीके विचारसे इस जीवके हजारों उपभेद दिखाई पडते हैं किसी एक विशेष

चित्रकारी वाले जीवसे विभाग द्वारा जो दूसरे एक घटक जीव उत्पन्न होते हैं उनमें भी चित्रकारी बनी मिलती है। इसका कारण केवल यही बतलाया जा सकता है कि निर्माणकर्ता कलल-रसमें अन्तःसंस्कारकी वृत्ति होती है और परत्व, अपरत्व संस्कार और उसके पुनरुद्भावनकी शक्ति होती है।

२ तन्तु जाल गत अन्तः संस्कार

समूह पिण्ड बनाकर रहने वाले एक घटक अणु जीवों और स्पंज आदि सम्वेदनसूत्ररहित क्षुद्र अनेकघटक जीवों तथा पौधोंके तन्तु जालमें हमें अन्तःसंस्कारकी दूसरी श्रेणी मिलती है। इसमें बहुतसे परस्परसम्बद्ध घटकोंका एक सामान्य मनोव्यापार देखा जाता है। इन जीवोंमें किसी एक इन्द्रियके उत्तेजनसे प्रतिक्रियामात्र उत्पन्न होकर नहीं रह जाती, बल्कि तन्तु घटकोंके मनोरसमें संस्कारभी अङ्कित होते हैं।

(३) सम्वेदनसूत्र ग्रन्थिगत अचेतन अन्तःसंस्कारः—यह उन्नत कोटिका अन्तः संस्कार अनेक छोटे जन्तुओंमें देखा जाता है। इसका व्यापार मनोघटक हीमें होता है। यह उन्हींमें प्रकट होता है जिनसे प्रतिक्रियाके लिए त्रिघटात्मक करणका विकास होता है। अन्तःकरणका स्थान सम्वेदनाघटक और पेशीघटकके बीचका "मध्यस्थघटक" होता है।

(४) मस्तिष्कघटकगत चेतन अन्तःसंस्कार।

उन्नत जीवोंमें अन्तर्बोध या चेतना मिलने लगती है। वह सम्वेदनके मध्यभागके एक विशिष्ट करणकी एक विशेष वृत्ति

है। उन्नत जीवोंमें अन्तःसंस्कार चेतन होते हैं; अर्थात् उनका बोध भीतर होता है। इस अन्तर्बोधके साथ २ ही चेतन अन्तः संस्कारकी योजनाके लिए मस्तिष्कके विशेष २ अवयव स्फुरित होते हैं, तब अन्तः संस्कार उन वृत्तियों या व्यापारोंके योग्य हो जाता है, जिन्हें विचार, चिन्तन बुद्धि और तर्क कहते हैं।

स्मृति स्मृति अन्तः संस्कारोंसे सम्बद्ध है, जिस पर सारे उन्नत मनोव्यापार अवलम्बित हैं। बाह्य विषयोंके इन्द्रियों पर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे मनोरसमें अन्तःसंस्कारके रूपमें जाकर ठहर जाते हैं और स्मृति द्वारा पुनरुद्भूत होते हैं।

अन्तः संस्कारोंकी श्रेणियोंके अनुसार स्मृतिके विकासके भी चार दरजे हैं।

(१) घटक गत स्मृति। "स्मृति सजीव द्रव्यका एक सामान्य गुण है" इवैल्ड हेरिंग (Ewald Hering) ने ३० वर्ष हुए यह महत्व पूर्ण सिद्धान्त प्रकट किया था। इसीको मैंने विकासवादके अनुसार सिद्ध किया है और दिखलाया है कि "अचेतन स्मृति कललाणुकी एक सामान्य और व्यापक वृत्ति है। क्रियावान् कललरसके इन मूल कललाणुओं हीमें पुनरुद्-भूति होती है; अर्थात् इन्हींमें स्मृति शक्ति आदि रूपमें रहती है निर्जीव द्रव्य अणुओंमें नहीं, यही सजीव और निर्जीव सृष्टिमें अन्तर है। वंशपरम्परा ही कललाणुकी धारणा या स्मृति है। एकघटक अणु जीवोंकी आदिम स्मृति उन कललाणुओंकी अण्वात्मक स्मृतिके योगसे बनी है, जिनके मेलसे उनका एक

घटकात्मक शरीर बना है। एक अणु जीवकी जो विशेषतायें होती है, वे उससे उत्पन्न दूसरे अणुजीवोंमें रक्षित रहती हैं। यही ऐसे जीवोंकी स्मृति है।

(२) तन्तुअगत स्मृति घटकोंके समान घटक जालमें भी अचेतन स्मृति पाई जाती है। उसके उदाहरण क्षुद्र जन्तुओंके व्यक्तिगत शरीर और वृक्षोंके पितृपरम्परामें पाये जाते हैं।

(३) उन्नत जीवोंकी चेतनारहित स्मृति है, जिनमें सम्वेदन सूत्रजाल रहते हैं। यह अचेतन स्मृति उन अचेतन अन्तः-संस्कारोंकी पुनरुद्भावना है, जो कुछेक सम्वेदनसूत्र श्रेणियोंमें सञ्चित होते जाते हैं।

(४) चेतन स्मृतिका व्यापार मनुष्यादि उन्नत प्राणियों के कुछेक मस्तिष्क घटकोंमें होता है। वह व्यापार अन्तः संस्कारों का प्रतिविम्ब पड़नेसे होता है। क्षुद्र पूर्वज जन्तुओंमें स्मृतिके जो व्यापार अचेतन रहते हैं, वे ही उन्नत अन्तःकरण वाले जीवोंमें चेतन हो जाते हैं।

अन्तः संस्कारों की शृंखला या भाव योजना

यह आदि रूपमें अचेतन रहती हैं, और "प्रवृत्ति" कहलाती हैं; फिर क्रमशः उन्नत जीवोंमें चेतन होकर बुद्धि कही जाती है। जिस हिसाबसे अधिकाधिक अन्तः संस्कारोंकी योजना होती है, और जिस प्रकार "शुद्ध बुद्धि की विवेचना" से यह योजना व्यवस्थित होती जाती है, उसी हिसाबसे अन्तःकरण की वृत्ति पूर्णताको पहुंचती जाती है। स्वप्नमें इस विवेचनाके न रहने

से पुनरुद्भूत संस्कारोंकी जो योजना होती है उससे अलौकिक दृश्य दिखलाई देते हैं। यही अव्यवस्था कविकल्पित रचना, इन्द्रजाल, भूत, मृत्पुरुषोंकी आत्माओंका साक्षात्कार, इलहाम आदि अनेक अन्धपरम्पराओंका कारण है *।

भाषा

वाणीकी योजना भी न्यूनाधिक क्रमसे जीवों में पाई जाती है। यह नहीं है कि एकमात्र मनुष्य ही को यह प्राप्त हो। यह पूर्ण रूपसे सिद्ध होगया है कि भिन्न २ मनुष्य जातियोंकी जितनी समृद्ध भाषायें हैं, सबकी सब सीधी सादी, कुछेक आदिमभाषाओं से धीरे २ उन्नति करती हुई बनी हैं।

अन्तःकरण के व्यापार

अन्तःकरणके व्यापारोंके द्वारा, जो उद्वेग कहलाते हैं, मस्तिष्कके व्यापारों और शरीरके दूसरे व्यापारों, जैसे हृदय की धड़कन, इन्द्रियों के क्षोभ और पेशियोंकी गतिके बीचका सम्बन्ध अच्छी तरह स्पष्ट होजाता है। समस्त उद्वेग, इन्द्रियसम्वेदन और गति इन्हीं दो मूल व्यापारोंके योगसे प्रतिक्रिया और अन्तः संस्कारों द्वारा बने हैं।

राग और द्वेषका अनुभव इन्द्रियसम्वेदनके अन्तर्गत और उनकी प्राप्ति और अप्राप्तिका उद्योग गतिके अन्तर्भूत हैं।

---

* हेकल की कल्पनायेंभी इसी अव्यवस्था का परिणाम प्रतीत होती हैं।

"आकर्षण" और "विसर्जन" इन्हीं दोनों क्रियाओंके द्वारा "सङ्कल्प" की सृष्टि होती है जो व्यक्तिका प्रधान लक्षण है।

मनोयोग भी उद्योगका विस्तार मात्र है।

सङ्कल्प

सङ्कल्प मनोरसका एक व्यापक गुण है। जिन जीवोंमें प्रतिक्रियाका त्रिघटात्मक करण अर्थात् सम्वेदना ग्राहक घटक और क्रियोत्पादक घटकके बीचमें एक तीसरे मनोघटककी स्थापना होती है उन्हींमें सङ्कल्प नामक व्यापार देखा जाता है। क्षुद्र जीवोंमें यह सङ्कल्प अचेतना रूपमें रहता है। जिन जीवोंमें चेतना होती है अर्थात् इन्द्रियोंकी क्रियाका प्रतिबिम्ब अन्तःकरणमें पड़ता है उन्हींमें सङ्कल्प उस कोटिका देखा जाता है जिसमें स्वतन्त्रताका आभास जान पड़ता है।

मनोव्यापार

मनुष्यादि समस्त जीवोंके मनोव्यापार एक मानसिक यन्त्र या करणके द्वारा होते हैं। इस यन्त्रके तीन मुख्य विभाग हैं:—

(१) बाह्यकरण या इन्द्रियां जिनसे सम्वेदन होता है।

(२) पेशियां जिनसे गति होती है।

(३) सम्वेदन सूत्र जो इन दोनोंके बीच मस्तिष्करूपी प्रधान करणके द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

मनोव्यापारके साधनके इस भीतरी (मानसिक) यन्त्रकी उपमा तारसे दी जाया करती है। सम्वेदन सूत्र तार है। इन्द्रियां छोटे स्टेशन हैं। मस्तिष्क सदर स्टेशन है। गतिवाहक सूत्र

सङ्कल्पके आदेशको केन्द्र या मस्तिष्कसे वहिर्मुख गति द्वारा पेशियों तक पहुंचाते हैं, जिनके आकुञ्चनसे अङ्गोंमें गति होती है। सम्वेदन वाहक सूत्र इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त सम्वेदनोंको अन्तर्मुख गतिसे मस्तिष्कमें पहुंचाते हैं।

मस्तिष्क या अन्तःकरण रूपी मनोव्यापारकेन्द्र ग्रन्थिमय होता है। इन सूत्रग्रन्थियोंके घटक सजीव द्रव्यके सबसे समुन्नत अंश हैं। इनके द्वारा इन्द्रियों और पेशियोंके बीच व्यापार सम्बन्ध चलता ही है। इसके सिवा भावग्रहण, बोध और विवेचन आदि अनेक मनोव्यापार होते हैं।

सम्वेदन सूत्रोंके सिवा गति सूत्रभी मस्तिष्क तक गये हैं, जिनके द्वारा क्रियाकी प्रेरणा होती है।

अन्तःकरणका केन्द्र मस्तिष्क है।

चेतना

चेतना एक प्रकारकी अन्तर्दृष्टि है, वह दो प्रकारकी होती है (१) अन्तर्मुख (२) बहिर्मुख अन्तर्मुख चेतनाका क्षेत्र सङ्कुचित होता है, उसमें हमारे इन्द्रियानुभव, संस्कार और सङ्कल्प प्रतिबिम्बित होते हैं।

चेतनाका परिज्ञान हमें चेतनाहीके द्वारा होसकता है। उसकी वैज्ञानिक परीक्षामें यही बड़ी भारी अड़चन है। परीक्षक भी वही और परीक्ष्यभी वही है। द्रष्टा अपनाही प्रतिबिम्ब अपनीअन्तः प्रकृतिमें डालकर परीक्षणमें प्रवृत्त होता है, अतः हमें दूसरोंकी चेतनाका परीक्षात्मक बोध पूरा कभी नहीं होसकता। चेतना

सम्बन्धी दो प्रकारके वाद हैं (१) सर्वातिरिक्त अथवा आत्माकी, शरीरसे भिन्न स्वतन्त्रसत्ता होना (२) शरीरधर्मवाद अथवा शरीरके मेलका परिणाम। जडाद्वैतवाद दूसरेवादका पोषक है।

चेतनाका अधिष्ठान मस्तिष्कके भूरे मज्जापटलका एक विशेष भाग है। "फ्लेशज़िक" (Paul Flechsig of Leipzig) एक जर्मनके वैज्ञानिकने सिद्ध किया है कि मस्तिष्कके भूरे मज्जा क्षेत्र इन्द्रियानुभवके चार अधिष्ठान या भीतरी गोलक हैं जो इन्द्रियसम्वेदनाको ग्रहण करते हैं:—

(१) स्पर्शज्ञानका गोलक मस्तिष्कके खड़े लोथड़े में, (२) घ्राणका सामनेके लोथड़े में, (३) दृष्टिका पिछले लोथड़े में, (४) और श्रवणका कनपटीके लोथडे में है।

इन चारों भीतरी इन्द्रियगोलकोंके बीचमें चार विचारके गोलक हैं, जिनके द्वारा भावोंकी योजना और विचार आदि जटिल मानसिक व्यापार होते हैं।

तुरन्तके उत्पन्न बच्चेमें चेतना नहीं होती। प्रेयर नामक शरीर वैज्ञानिकने दिखलाया है कि, चेतना बच्चेमें उस समय स्फुरित होती है जब वह बोलना आरम्भ करता है*। क्रमशः चेतनाका विकाश होता है:—

---

* यदि कोई मनुष्य गूंगाही पैदा हो और अन्तकाल तक न बोल सके तो क्या उसमें चेतना उत्पन्नही न होगी और वह ईंट पत्थरकी भांति जड़ हीरहेगा ?

प्रथम, १० वर्षकी अवस्था तक ज्ञानकी वृद्धि और चेतना का विकास शीघ्रतासे होता है।

द्वितीय, १० वर्षकी अवस्था तक चेतनाकी वृद्धि होती रहती है, परन्तु पूर्णताको नहीं पहुंचती।

तृतीय, १० वर्षकी अवस्था तक विचार परिपक्व और चेतना पूर्ण होती है।

चतुर्थसे षष्ठ १० वर्षकी अवस्था तक परिपक्व चेतनाका फल मनुष्य चखता है *

६० वर्षके बाद शिथिलता प्रारम्भ होकर क्रमशः बढ़ती जाती है। †

एफ. डब्ल्यू. एच. मेयर्स
F.W.H. Mayers

मेयर्सका उल्लेख "पश्चिममें अध्यात्मवाद सङ्घ" के कार्य विवरणोंमें अनेक जगह आया है, आगेके पृष्ठोंसे उसके मतकी आभा प्रकाशित होगी। यहां संक्षेपसे उसके स्थिर किए हुए सिद्धान्तोंका उल्लेख किया जाता है। ये सिद्धान्त उसने अपने ४० वर्षकी खोजके बाद स्थिर किए थे। उसने अपनी खोजोंका सविवरण उल्लेख अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मनुष्यके व्यक्तित्व" (Human Personality)नामकी दो जिल्दोंमें, किया है। उसके स्थिर किए हुए सिद्धान्त ये हैं:—

---

* लेखक की पुस्तक भी इसी अवस्थामें लिखी जा रही है।

† हेकलने इसी अवस्थामें अपना पुस्तक (Riddle of the Uuiverse) लिखा था।

(१) मनुष्यका व्यक्तित्व शरीरकी मृत्यु होनेके बाद बाकी रहता है, निःशेष नहीं हो जाता।

(२) इस प्रकार शरीर छोड़े हुए व्यक्ति (जीवात्मा) में वही विचार, उद्वेग, अनुभव, स्मृति, मानसिक और सदाचार सम्बन्धी सामर्थ्य, मृत्युके बाद पूर्ववत् बाकी रहते हैं। वह मृत्युके बाद न तो देव हो जाता है और न असुर, किन्तु उसी अवस्थामें और वही रहता है जो मृत्युसे पहिले। अन्तर केवल इतना हो जाता है कि उसके साथ स्थूल शरीर बाकी नहीं रहता।

(३) विशेष अवस्थाओंमें यह शरीर रहित व्यक्ति पृथ्वीस्थ जीवित (सशरीर) प्राणियों (मनुष्यों) से संलाप कर सकता है।

प्रोफेसर शेन स्टोन
Prof. Shan Stone
1906 A. D.

वान हेलमौण्ट (१५७७–१६४४) के समयसे अब (१९०६) तकके लेख और परीक्षण आदि जो विज्ञान द्वारा किए गए थे, देखनेके बाद, "शेन स्टोन" अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं:—

"सब कुछ जो हम उचित रीतिसे कह सकते हैं, वह यह है कि पुष्ट हेतु इस बातके विश्वास करनेके लिए नहीं हैं कि रसायनशालामें आज तक भी चेतना जडप्रवृत्तिसे उत्पन्न कर दी गई हो।*

* Materialism by Dareb Dinsha Kanga p.37 and 38.

रॉबर्ट केनेडी डंकन (Robert Kennedy Duncan 1911 A.D.

जीवनको शरीरके मेलका परिणाम बतलानेके सम्बन्धमें डंकनका मत इस प्रकार है:—
शरीर एक यन्त्र है जिसमें प्रत्येक पेशी, ग्रन्थि और तन्तुओंके कार्य रासायनिक नियमानुकूल होते हैं। यह विश्वास प्रतिदिन बढ़ रहा है। यदि जीवनसे अभिप्राय किसी ऐसी अध्यात्मसत्तासे है, जो इन रासायनिक कार्योंमें हस्तक्षेप करती हो, तो उसकी सत्तासे उचित रीतिसे इनकार किया जा सकता है। परन्तु जीवनसे यदि ऐसी अध्यात्मसत्ता अभिप्रेत है, जो शरीरमें रहकर बिना उसके कार्योंमें बाधक हुए, परिमितरूपमें शारीरिक कार्योंको नियमित और अनुशासित करती है, तो हम सम्भवतः उसकी सत्तासे इनकार नहीं कर सकते और इसकी सत्ताकी स्वीकृति विज्ञानके विरुद्ध नहीं है। *

डाक्टर जैप प्रधान रसायन विभाग लण्डन

डा. जैपने (Dr. Jap, The President of the Chemical Section, London.) ब्रिटिश एसोसियेशनके एक अधिवेशनमें जो १८९९ ई० में सङ्घटित हुआ था, "जीवन" पर व्याख्यान देते हुए जीवन (जीवात्मा) के कार्योंको एक प्रवर्त्तकके कार्यसे उपमा देकर कहा था कि एक प्रवर्तकका कार्य यह होता है कि वह अपने ज्ञान और इच्छा को प्रयोगमें लाता हुआ, इस उद्देश्यसे कार्य करता है जिससे कि

* Materialism p. 38 and 39.

† ,, 39.

परिमित फल प्राप्त हो। फिर कहते हैं कि प्रवर्तक (जीव) नियमन शक्तिको जो फलसे सम्बन्धित होती है, जीवित शरीर पर काममें लाता है, और स्पष्ट रूपसे अपना आशय इस प्रकार प्रकट करते हैं कि जीवनके कार्योंकी केवल यान्त्रिक व्याख्या निश्चित रीतिसे अधूरी रहेगी।

प्रोफैसर कोहन Prof. Cohen जिनकी पुस्तक * बम्बई यूनिवर्सिटीमें बी. एस. सी. के विद्यार्थियोंको पढ़ायी जाती है, अपने पुस्तकमें नील, अंगूरकी चीनी, मद्यसार आदिके कृत्रिम बनाये जानेकी बात कहते हुये, लिखते हैं कि सफ़ेदी सर्व स्वीकृत जीवित शरीरका उपादान, सम्भव है कि एकदिन रासायनिक संयोगसे बन सके; परन्तु यह बात याद रखनी चाहिये कि जीवित व्यक्तियोंके शरीरोंके अत्यन्त गूढ संयोग और साधारण जीवित घटकके मध्यमें असीम अन्तर इस समय भी है, और अधिक सम्भावना है कि भविष्यत् में भी रहेगा।

तीसरा परिच्छेद

(आत्मा सम्बन्धी खोज और पश्चिमी अध्यात्मसङ्घ)

Psychical Research and Spiritualism.

आत्मा सम्बन्धी खोज करनेके लिये पश्चिमी देशोंमें "अध्यात्म के नामसे सभायें बनी हैं, जिनके खोजके प्रकार भिन्न होते

* Theoretical Organic Chemistry by Professor Cohen.

हुये भी प्राय: सभी प्राकृतिक हैं। इन खोजोंको कुछेक सज्जन आशा, कुछेक निराशाकी दृष्टिसे देखते हैं। आशावादियोंने आत्माकी सत्ता प्रमाणित करनेके लिये कतिपय साधन खोजे हैं। उनमें से मुख्य २ ये हैं:—

(१) प्लेन्चिट। (२) स्वयंचलद् यन्त्रोंके लेख (३) उज्वल स्वप्न। (४) परचित्त ज्ञान। (५) भूतोपसृष्ट गृहोंमें भूत अथवा पिशाचोंकी उपस्थिति आदि विषय जो "परचित्तज्ञान" से विदित नहीं होते।

प्लेंचिट

"प्लेन्चिट" एक यन्त्र है, जो अब उतना प्रचलित नहीं है जितना आरम्भमें था। यह एक हृदयाकार सपाट लकड़ी दो छोटे २ पहियों पर ठहरी हुई होती है, और एक पेन्सिलभी उसके साथ जुड़ी रहती है। एक साफ मेज़पर एक कागज़ रखकर उसपर यह यन्त्र रक्खा जाता है और सपाट लकड़ीपर एक पुरुष हाथ रखता है। थोड़ी देरमें वह लकड़ी घूमती है और पेन्सिलसे कागज़ पर कुछ चिन्ह अथवा अक्षर बन जाते हैं। जिनके लिये समझा जाता है कि वे किसी शरीरसे भिन्न वस्तु (आत्मा) का कार्य्य है। टुकेल महाशयने अपने एक पुस्तक * में प्लेन्चिटकी सत्ता प्रकट करते हुये उसे तन्तुप्रकृतिका परिणाम

---

* Evidence for the Supernatural by Tuckall p. 89 and 90.

बतलाया है और यह कि वह "स्वयं प्रस्ताव" की अवस्था होती है।

हेनस महाशयने प्लेन्चिटके सम्बन्धमें अपनी एक अनुभव कथा लिखी है। १९०२ में उन्होंने उसका परीक्षण कियाथा। प्लेन्चिटका प्रयोग उनसे सम्बन्धित एक देवी करतीथी, जिनकी एक कन्या परीक्षणतिथिसे दो तीन वर्ष पूर्व मरचुकी थी। प्लेन्चिट द्वारा कतिपय वे बातें बतलाई गई, जो मृतकन्या और उनसे हुई थी। उसके बाद उनके एक मृत ऐमरीकन मित्रकी आत्मा बुलाई गई, जो लेफरोय पर्वतसे गिरकर १९२६ में ३० वर्षकी आयुमें मर चुकाथा। हेनसका कथन है कि इन्होंने इस अपने मित्रकी आत्मासे पूछा कि पहाड़से गिरनेके समय उसकी आयु क्या थी। उत्तर मिला कि ३३ वर्षकी, जबकि आयु ३० वर्षकी थी। हेनसने कहाकि आयु तो ३० वर्षकी थी। तब प्लेन्चिटने उत्तर दिया कि मरते समय ३० वर्षकी आयु थी, परन्तु अब ३३ वर्ष की है। इसपर हेनसने कहा कि अबतो (१९०२ में) आयु ३६ वर्षकी होनी चाहिये। उसपर उस (आत्मा) की ओरसे अप्रसन्नताके चिन्ह प्रकट हुये। तब हेनसने पूछा कि अच्छा उस पहाड़का नाम क्या है जिससे वह गिराथा, तो मालूम हुआ कि बुलाई हुई दोनों आत्मायें अप्रसन्न होकर चली गई।*

---

*The Belief in Personal Immortality by E.S. P. Haynes p. 93 and 94.

स्वयं चलद् यन्त्र के लेख।

मेयर्सने अपने एक पुस्तक * स्वयंचलद् यन्त्रके लेखमें इस यन्त्रकी लेखन प्रणालीका वर्णन करते हुये, उसे एक प्रकार का स्वयंचालक यन्त्र बतलाया है, साथही उसने यह भी स्वीकार किया है कि यन्त्रकी स्वयमेव वाह्य गतिसे यह प्रमाणित नहीं होता कि जो कुछ लिखा जाता है, उसका पूर्वरूप लेखक (प्रयोगक) के मस्तिष्कमें नहीं था। मेयर्सका कथन है कि अधिक सूरतोंमें यन्त्रका लेख ठीक सिद्ध होता है। और किसी वस्तु के सम्बन्धमें अनेक ऐसी विलक्षण बातें मालूम होजाती हैं जो और प्रकारसे मालूम न होतीं। परन्तु विपक्षियोंका कथन उपर्युक्त कथनके सर्वथा विरुद्ध है। एक विपक्षी कहता है कि एक बार वह आंखें बन्द करके बैठ गया और सामने रक्खे हुये कागज़ पर कलमकी इच्छानुसार चलनेके लिये छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि कुछ अनर्गल और ऐसीही बातें लिखी गईं कि जिन का पूर्वरूप उसके मस्तिष्कमें मौजूद था। वहभी कहता है कि १० मिनट इस प्रकार व्यय करनेकी जगह यदि वह पूरा दिन इसी अभ्यासमें व्यय करता, तो परिणाम और भी सन्तोषजनक निकलता।

इस यन्त्रके सम्बन्धमें एक बहुमूल्य परीक्षण मेयर्सने किया था और वह इस प्रकार था कि उसने एक पत्र लिखकर और कई

* Human Personality by Myers, p. 27.

लिफाफोंके भीतर उसे बन्दकरके ऊपरसे मुहर लगादी, और उसे अपने बैंकरके पास इस अभिप्रायसे छोड़ दिया कि पत्रमें अङ्कित विषय यन्त्र द्वारा मालूम किया जावे। वीरल देवी (Mrs. Verrall) द्वारा यन्त्रसे पत्रका विषय जाना गया और एक सभामें प्रकट कर दिया गया, परन्तु उसी सभामें जब असल पत्र १३-१२-१९०४ को बैंकसे वह लिफाफा मंगाकर खोला गया, तो उसका विषय यन्त्र द्वारा वर्णित विषयसे सर्वथा भिन्न निकला। इस परीक्षणके विरुद्ध सर आलिवर लाजने अपने एक पुस्तकमें अनेक ऐसे उदाहरण दिए हैं, जो यंत्रके लेखको प्रमाणित करते हैं। एक उदाहरण उपर्युक्त पुस्तकसे यहां उद्धृत किया जाता है:—

एक बार "स्टेन्टन मासेज" महाशय डाक्टर स्पीरके पुस्तकालयमें बैठे स्वयं चलद यन्त्रके अदृश्य लेखकसे बात कर रहे थे।

नोट—वह अदृश्य लेखक पहले "फिन्यूइट" (Phinuit) परन्तु अब "रेक्टर" (Rector) अपना नाम बतलाता है।

उनका एक प्रश्नोत्तर इस प्रकार है :—

मोसेज़—मुझे बतलाया गया है कि आप पढ सकते हैं क्या यह ठीक है और क्या आप कोई पुस्तक पढ सकते हैं?

नोट—मोसेज़ अपना प्रश्न मुख से कहते थे रेक्टर का उत्तर स्वयंचलदयन्त्रसे लिखा जाता था। मोसेजका कथन है कि स्वयंचलदयन्त्रका लेख प्रणाली बदल गई है क्योंकि पहले कोई और लिखता था अब उसका अदृश्य लेखक रेक्टर है।

रेक्टर—हां, कठिनतासे।

मोसेज़—क्या आप कृपा करके एनील्ड (Aeneild) के प्रथम पुस्तककी अन्तिम पंक्ति लिखेंगे ?

रेक्टर—प्रतीक्षा करो—(फिर उसने लिख दिया) "Omnibas errantem terris at fluctibus aestas".

मोसेज़—(यह ठीक था) ठीक ऐसा ही है....... क्या आप पुस्तक कोष्ट तक जायंगे और दूसरे कोष्टके अन्तिम पुस्तकके ९४वें पृष्टका अन्तिम वाक्य पढेंगे ? (मोसेज़ने लिखा है कि उन्होंने यह प्रश्न अनायास कह दिया था उनको मालूम भी नहीं था कि वह कौनसा पुस्तक है जिसके पढनेको उन्होंने कह दिया था ।)

थोड़ीसे देरके बाद यन्त्रने ये लिख दिया :—

I will curtly prove by a short historical narrative, that Popery is a novelty, and has gradually arisen or grown up since the primittive and pure time of Christianity, not only since the apostolic age, but even since the lamentable union of Kirk and state by constantive."

नोट—पुस्तक निकाल कर जांच करनेसे विदित हुआ कि रेक्टरका लेख शुद्ध है केवल एक भूल उसमें यह थी कि लेखमें "account" की जगह "narrative" लिखा गया था ।

जिस पुस्तकका यह उद्धरण है उसका नाम था "Roger's Antipopriestian"*

* Survival of man by Sir Oliver Lodge p.104-106.

लाज महाशयने इस यंत्रके सम्बन्धमें अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है:—"वे अविशिष्ट जीव, जो निकट भविष्यतमें इस पृथ्वी पर थे और अब मर चुके हैं, कभी २ और कठिनता के साथ ऐसे मध्यवर्ती यन्त्र रचना द्वारा जो उनके अधिकारमें दी जाती है हमसे संलाप करते हैं। वह यन्त्र रचना निमित्तपुरुष माध्यम की मस्तिष्क तन्तु होती है। जब निमित्तपुरुष अस्थायी रीति से अपने मस्तिष्कसे काम लेना बन्द कर देता है तब वे अवशिष्ट जीव उससे काम लेते हैं; इस उद्देश्यसे कि अपने विचार उसमें भरें, और वही उनके इस प्रकार भरे हुए विचार प्राकृतिक जगत् में संलाप अथवा लेख द्वारा प्रकट होते हैं। और अवशिष्ट जीवोंका इस प्रकार ऐसे प्राकृतिक साधनों (मस्तिकादि) के काममें लाने हीको जो वास्तवमें उनके नहीं हैं, स्वयंचलद् यन्त्र कहते हैं*

उज्वल स्वप्न

पश्चिमी अध्यात्मवादका अङ्ग उज्वल स्वप्न भी है, जिसमें उसके अनुयायी अलौकिक घटनाओंके ज्ञान प्राप्तिकी सम्भावना स्वीकार करते हैं। सर आलिवर लाजने लिखा है † कि ज्ञान तो अवश्य किसी माध्यमके द्वारा प्राप्त होता है; परन्तु उस (माध्यम) का ज्ञान हमको कुछ भी नहीं है, और किस प्रकार यह अलौकिक ज्ञान हम तक पहुंचता है यह बात भी अभी तक अप्रकट है।

* Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 106

† „ „ p. 112.

सर आलिवर लाज तथा अन्य अध्यात्मवादियोंने इस वादके स्थापनार्थ अनेक घटनायें उपस्थित की हैं, जिनमेंसे उदाहरणार्थ लाज महोदयकी वर्णित एक घटना यहां लिखी जाती है।

"पादरी इ. के. इलियट जब अटलाटिक महासागरमें एक जहाज़ पर जा रहे थे, जहां तार और चिट्ठी नहीं पहुंच सकती थी, उन्होंने १४ जनवरी १८८७को अपनी दिनपत्रिका में लिखा है कि "पिछली रात्रिमें मुझे स्वप्न हुआ कि मेरे चचा एच. इ.का पत्र आया है, जिसमें मुझे मेरे प्यारे भाईकी ३ जनवरी को मृत्यु होजानेकी सूचना दी है। उससे मुझे बडा दुःख हुआ। मेरा भाई स्वीटज़रलैण्डमें बीमार अवश्य था, परन्तु उसका अन्तिम समाचार, जो इंगलैण्ड छोडते समय मुझे मिला था वह यह था कि अब व अच्छा है। जब मैं अपनी यात्रा समाप्त करके इंगलैण्ड वापिस आया तो जैसाकि मुझे प्रतीक्षा थी, मुझे पत्र मिला जिसमें ३ जनवरीको भाईकी मृत्यु होनेकी सूचना मुझे दी गई थी *

"परचित्तज्ञान"

एक चित्तके दूसरे चित्त पर, उन साधनोंसे, जिनका ज्ञान इस समय तक विज्ञानको नहीं है, कार्य करनेको "परचित्तज्ञान" कहते हैं †

---

* Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 106 and 107.

† अर्थात् दो जीवित पुरुषों अथवा एक मृत और दूसरे जीवित पुरुषके चित्तमें, बिना किसी बाह्य और ज्ञात साधनके, विचार परिवर्तन का विधि परचित्तज्ञान कहलाती है।

माईसकी सम्मति है कि मानुषिक मस्तिष्कका बड़ा भाग अप्रकाशित है और वह अप्रकाशित भाग न केवल अपनी किन्तु पूर्वजोंकी भी स्मृतियोंका पुञ्ज है। इसीको उसने उत्कृष्ट चेतनाका नाम दिया है। माईस का यह वाद सेमुएल बटलर (Samuel Butler) के अज्ञात स्मृतिवादसे मिलता जुलता है। माईसने इस वादका विवरण इस प्रकार दिया है † "वर्षों से यह बात अधिक और अधिक मात्रामें सोची और समझी जाती रही है कि किस प्रकार एक व्यक्तिका जीवन, पूर्वजोंके अनुभवोंका, अज्ञात परिवर्तनयुक्त, विषम रूप है। जन्मसे लेकर मरणपर्य्यन्त रंग रूप, कार्य्य और प्रकृति आदिमें हम उन्नत जीवनोंका, जो पृथ्वीपर करोड़ों वर्षसे प्रादुर्भूत होते रहे हैं, रूपान्तरमात्र हैं। निरन्तर विस्तृत परिस्थितिके साथ सम्बन्धित होने से क्रमशः चेतनाका द्वार अपना स्थान छोड़ता सा गया। जिस का प्रभाव यह हुआ कि चेतनाकी वह धारा, जो एक बार हमारी सत्ताके मुख्य भागमें प्रवाहित होती थी, अधिकतर बन्दसी हो गई। हमारी चेतना, विकासके एक दर्जे पर पहुंचे, असार (संसार) समुद्रमें, एक लहरके सदृश है। और लहर ही के सदृश वह न केवल वाह्य सत्ता रखती है, किन्तु अनेक तहों वाली भी है। हमारा आत्मसंयोग न केवल सामयिक सङ्घात है किन्तु अस्थिर भी है और वह चिरकालीन अनियमित विकासका परिणाम है। और अब तक भिन्न २ अवयवोंके सीमित श्रमसे

† Human personality by Mayers Vol. I p. 16.

युक्त है।" मस्तिष्कका ठीक ज्ञान न होनेसे मस्तिष्कके नाम अथवा कामसे सम्बन्धित जो बात भी कही जाती है, कोई दूसरा पुरुष जो उस बातको न भी मानता हो, निश्चित रीतिसे उस का प्रतिवाद नहीं कर सकता। यही हेतु है जिससे परचित्तज्ञान सम्बन्धी विश्वास पश्चिममें बढ़ रहा है। इस विषयसे सम्बन्धित अनेक पुस्तक जिनमें परचित्तज्ञान के अनेक परीक्षणोंका उल्लेख है, प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हींके आधार पर दो एक परीक्षण यहां लिखे जाते हैं। वैरेटकी पुस्तक* में एक घटना जो इस वादकी पोषक है, अङ्कित है, और वह इस प्रकार है:—

"फरवरी १८९१ ई० में एक एमेरीकन कृषक, घरसे १०० मीलकी दूरी पर "डूवक" नाम वाले नगरमें, अचानक मर गया। पुराने वस्त्र जो वह पहन रहा था वहीं फेंककर उस का पुत्र शवको घर ले आया। अपने पिताका दुःखदायी मृत्यु समाचार सुनकर उसकी पुत्री बेहोश होगई और कई घंटे उसी अवस्थामें पड़ी रही। जब उसे सुध हुई तो उसने कहा "कहा हैं पिताके पुराने वस्त्र? वे अभी मेरे पास आये थे। सुफेद कुरता और अन्य काले वस्त्र और सैटिनके स्लीपर पहने हुये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि घर छोड़नेके बाद उन्होंने बिलोंकी एक लम्बी सूची अपने खाकी कुरतेके भीतर लाल कपड़ेके टुकड़ेसे सी ली थी; वह और रुपया भी उसीमें है" दफ़न करते समय जो वस्त्र शवको पहनाये गये थे, वे वही थे जिनका विवरण

---

* Psychical Research by Prof. Barrett p. 130

लड़कीने दिया था। और लड़कीको इन वस्त्रोंके पहनानेका कुछ भी ज्ञान न था। इसके सिवा कुरतेकी भीतरवाली जेब और रुपयोंका हाल न उसे और न अन्य किसीको मालूम था। लड़कीको सन्तुष्ट करनेके लिये उसका भाई "डूवक" गया, जहां उसका पिता मरा था। वहां उसने पुराने वस्त्र पाये जो एक छप्परमें रक्खे थे। कुरतेकी भीतरी जेबमें वह लम्बी सूची भी बिलोंकी मिली, जो ३५ डालरके थे, और ठीक उसी प्रकार लाल कपड़ेके टुकड़ेसे सिले थे जैसा लड़कीने बतलाया था। जेबके टांके बड़े और अनियमसे लगे थे जैसे किसी पुरुषने सिये हों।" प्रोफेसर बेरेटने इस घटनाके आधार पर परचित्तज्ञानकी सत्यता पर विश्वास किया था। मेइर्सने भी इस घटनाका सविवरण उल्लेख करते हुये इस वादकी पुष्टि की है * एक दूसरे परीक्षणका भी उल्लेख किया जाता है। यह परीक्षण सर आलिवर लाजने किया था और उन्होंने ही इसे अपने एक पुस्तकमें † अङ्कित किया है। परीक्षणका विवरण इस प्रकार है :—

"दो पुरुष अपने विचार, एक तीसरे पुरुषमें जिसकी आंखे, अच्छी तरह कपड़ेसे बान्ध दी गई थीं, पहुंचानेके लिये बैठे। एक मोटे कागजके एक ओर एक शक्ल वर्गाकार ☐ इस प्रकारकी बना दी गई थी और कागजकी दूसरी ओर दो व्यस्त रेखायें + इस प्रकारकी खींच दी गई थीं।

* Human Personality Vol. II p. 37 by hyers.
† The Survival of man by Oliver Lodge p. 28-29.

वे दोनों पुरुष एक मेजपर आमने सामने बैठे और दोनोंके बीच में वह कागज इस प्रकार रक्खा गया था कि एक पुरुष अपने ओर वाले एक चित्रको और दूसरा अपने ओर वाले दूसरे चित्र को देखता रहे। परन्तु उन दोनोंको भी यह जानने का अवसर नहीं दिया गया था कि कागजके दूसरी ओर क्या है। तीसरे पुरुष को जो "ग्रहण क्षम" था और जिसकी आंखों से पट्टी बन्धी थी, वहीं मेजके पास बिठलाया गया और तीनों के बीच में कोई दो फुटका खुला अन्तर रक्खा गया था। दोनों पुरुष अपने २ सामने के चित्रों को संलग्नताके साथ इस विचार से देखने लगे कि उन्हें ग्रहण क्षमके हृदय में चित्रित करदें। थोड़ी देरके बाद उस ग्रहणक्षम ने इस प्रकार कहना शुरू किया :—

"कुछ हिल रहा है और मैं एक चीजको ऊपर और दूसरी को नीचे देख रहा हूं। साफ २ दोनोंको नहीं देख सकता" तब वह कागज जिस पर चित्र खिंचे थे छिपा दिया गया और ग्रहण क्षमकी आंखोंसे पट्टी खोलकर कहा गया कि जो चीजें उसके विचारमें आई थीं उन्हें कागज पर लिख देवे। उसने एक चित्र इस प्रकारका खींच दिया" लाजका कथन है कि यह परीक्षण अनेक पुरुषोंकी उपस्थितिमें किया गया था। उन पुरुषोंमें कुछेक वैज्ञानिक भी थे। और यहांके परीक्षणने सफलतासे सिद्ध कर दिया कि एक ही समयमें न केवल एक किन्तु दो पुरुषोंके विचार
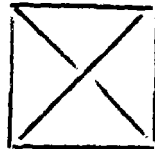
भी एक तीसरे पुरुषमें डाले जा सकते हैं। आलिवर लाजने यह भी लिखा है कि वैज्ञानिक होनेकी हैसीयतसे व इस परचित्त ज्ञानका कोई हेतु नहीं दे सकते सम्भव है कि इसका सम्बन्ध आकाश (ईथर) से हो । यदि यह सिद्ध हो गया तो अवश्य यह वाद भौतिक विज्ञानकी सीमामें आजायगा । लाजने इसका वैज्ञानिक हेतु देनेका यत्न किया है और वह इस प्रकार है * "एक दर्पणको एक अक्षाग्र (धुरी) में इस प्रकार जड दो कि जिससे वह कुछ हिल जुल सके । उससे कुछ दूरी पर फोटाग्राफीका कागज और उसीका मध्योन्नत कांच रक्खो, यदि सूर्यकी किरणें आइने पर पडेंगी और कागज आदि सब व्यवस्थाके साथ रक्खे हुए होंगे तो परिणाम यह होगा कि उस कागज पर एक रेखा खिच जायगी और इसी प्रकार प्रत्येक खटकेसे जो दर्पणको दिया जायगा, रेखा खिचती जायगी । सूर्य और उस दर्पणके मध्यमें कोई तार अथवा अन्य इसी प्रकारका कोई प्राकृतिक माध्यम सूर्यकी किरणें और आकाशके सिवाय नहीं है । इसी प्रकार दो मस्तिष्कोंमें से जिनमें आनुरूप्य सम्बन्ध हो और जो एक दूसरे से पृथक् हो, एकको उत्तेजना देनेसे दूसरा प्रभावित होगा" आनुरूप्य सम्बन्धका तात्पर्य भौतिक विज्ञानमें लाजके कथनानुसार, यह है कि जिस प्रकार रेलके स्टेशनों पर सिगनल देनेके लिए खम्भोंमें हाथ लगे होते हैं और दूरी पर लगे हुए एक दूसरे यन्त्रको हिलानेसे जिस प्रकार ऊपर या

* Survival of man by Sir O. Lodge. p. 61-64.

नीचे करनेके लिए उसे हिलाते हैं उस प्रकारका प्रभाव वह उस हत्थेमें उत्पन्न कर देता है और उसी प्रभावके अनुसार वह नीचे अथवा ऊपर हो जाता है तो उस यन्त्र और हाथमें समझा जायगा कि अनुरुप्य सम्बन्ध है। यह हिलानेका खटका, जो उस यन्त्रसे हत्थे तक पहुंचता है और जिसका माध्यम लोहेकी शृङ्खला अथवा कोई रस्सी होती है, एक सैकिण्डमें तीन मीलकी चालसे जाता है। सर आलिवरने अपने पुस्तकमें यह भी लिखा है * कि इङ्गलैण्ड और हिन्दुस्तानका अन्तर आनुरुप्य सम्बन्धमें बाधक नहीं हो सकता। जिस प्रकार इङ्गलैण्डमें तारकी मशीन खटखटानेसे तिहरानकी मशीन प्रभावित होकर वैसा ही खटका पैदा कर देती है, इसी प्रकार मानसिक विचार परिवर्तन इङ्गलैण्ड और हिन्दुस्तानके बीच ऐसे साधनोंसे, हो सकता है जो इस समय तक ज्ञात नहीं हुए है"

विलियम जेम्स प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक भी इस वादके समर्थक हैं। उन्होंने और सर आलिवर लाजने दिवङ्गत आत्माओंको बुलाने और उनसे बात करनेकी बात भी अपने पुस्तकमें लिखी है। इसी प्रकार बुलाई हुई एक "रुह" ने कहा कि "कुछ निजू कागज पत्र है जिन्हें मैं देना नहीं चाहती † बुलाई हुई आत्माओंकी कतिपय विलक्षणता बातें भी लाजने लिखी है। एक रूहकी

* Survival of man by Sir O. Lodge 70 and 71.

† „ „ p. 162

‡ „ „ p. 161.

कविताका उल्लेख किया है * एक रूहके आने और हंसनेका कथन किया गया है † एकने आकर विलियम जेम्सको "अत्यन्त स्वमताभिमानी" कह डाला ‡ एक "रूह" ने आकर अपनी स्थितिका वर्णन इस प्रकार किया है "हम सब तेजोमय आकाशसे बना हुआ शरीर रखते हैं जो २ हमारे रक्त और मांस के शरीरके भीतर रहता है" § माइर्स भी जिनके कतिपय लेख पहले दिये गये हैं, मरजाने के बाद एक सिजविक नामी पुरुष की पत्नी द्वारा बुलाये गये। उन्हों ने आकर उसदेवी से अनेक बातें की, उनमें से एक यह भी थी :—

"प्रिय देवी, तुम्हें भविष्यत् में मृत्युका भय अथवा कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये क्योंकि वह कुछ नहीं है और मरने के बाद निश्चित रीति से सज्ञान जीवन रहता है" ७।

भूतप्रेतवाद।

पश्चिमी विद्वान् जो आत्माके अमरत्वके पोषक हैं उनमेंसे कुछेक इस वादके भी पोषक हैं। उनका विचार है कि प्राणी जब मरता है तो वहीं प्राकृतिक शरीर से भिन्न रहता है और उसे बुलायाभी जासकता है, और उससे बातचीतभी की जासकती है इस प्रकारसे उनके बुलाने और बातचीत करनेके अनेक

* Survival of man by Sir O. Lodge p. 162.

† " " p. 162.

‡ " " p. 190.

§ " " p. 216.

उदाहरण दिये जाते हैं उनमें से एक उदाहरण यहां उद्धृत किया जाता है।

"मेडम मरतविलं" डच राजदूतकी विधवा थी और स्टाक होल्म नगर में रहती थी। पतिकी मृत्यु होजाने के बाद उनसे एक सुनार ने चांदी के दाम मांगे जो उनके पतिने क्रय की थी। मेडमको विश्वास था कि उनके पतिने अपने जीवनकाल में रुपया चुका दिया था परन्तु सुनारकी रसीद नहीं मिलती थी। मेडमने "स्वीडनवर्ग" नामी पुरुष को जो मृतजीवों को बुलाने और उनसे बातचीत करनेमें सिद्धहस्त समझा जाता था, बुलाया और उससे कहा कि उनके मृतपति की आत्मासे रसीद का हाल पूछदें। तीन दिनके बाद स्वीडनवर्ग ने पूछकर मेडम को उत्तर दिया कि चांदी का रुपया चुकाया जा चुका है और रसीद उस अल्मारीमें है जो ऊपरके कमरे में है। मेडमने उत्तर दिया कि उस अलमारीके सब कागज़ देखे जाचुके हैं उसमें रसीद नहीं मिली। स्वीडनवर्ग ने यह सुनकर बतलाया कि उनके पति की आत्मा ने बतलाया था कि अल्मारी की बाईं दराज़ खींचने के बाद एक तख्ता दिखलाई देगा, उसे खींच लेना चाहिये। तब एक गुप्त कोष्ठ निकलेगा उसमें डचराज सम्बन्धी कुछेक निजूपत्र हैं और वह रसीद भी। इस गुप्त कोष्ठ का हाल मेडम नहीं जानती थी अतः वे कतिपय अन्यपुरुषोंके साथ जो उस समय वहां उपस्थित थे वहां गईं, और बतलाई हुई विधि से अल्मारी

खोली तो उसमें वह गुप्तकोष्ठ निकल आया और उसमें बतलाये हुये कागज और रसीद भी निकली * ”। सर ओलिवर लाज, जिनके पुस्तक से यह घटना लीगई है, इसवादके भी समर्थक हैं। वे कहते हैं कि कल्पना करो कि भूत प्रेतों की कोई सत्ता (प्राकृतिक) नहीं और वे चित्त संस्कार अथवा छाया मात्र हैं जो ग्राहक के मस्तिष्क में पड़ा है और जो उस संस्कार अथवा छाया के अनुरूप है जो किसी दूसरे पुरुष के मस्तिष्क में पहले से था और अब एक तीसरे व्यक्ति द्वारा पहले व्यक्ति के मस्तिष्क में परिवर्तित किया गया है †। यही हेतु है जो वे भूतों के दिखलाई देनेका दे सकते हैं।

प्रोफैसर बैरेट ने इस वाद की व्याख्या इस प्रकार की है :—

“अन्य उदाहरण भी दिये जासकते हैं जिनसे पहले दो की भान्ति यह बात प्रकट होती है कि भूत कालिक घटनायें, जो विशेष२ व्यक्तियों पर घटित हुई थीं अथवा अब होती हैं, प्राकृतिक ढांचों अथवा स्थानापर, जिनसे उन व्यक्तियों का सम्बन्ध था, कुछ इस प्रकारकी अपनी छाप लगी छोड़जाती हैं कि उनकी छाया अथवा गूंज का उन पुरुषों को अनुभव होने लगता है जो अब वहां रहते हैं और जो चलेन्द्रिय अथवा मृदु प्रकृति वाले होते हैं। यद्यपि यह वाद सातिशय और विश्वास के अयोग्य सा प्रतीत होता है परन्तु भौतिक विज्ञान अथवा आत्मिक

* Survival of man by Sir, Oliver Lodge p. 96.

† Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 78

खोज की सीमा में इसके अनुरूप उदाहरणों की कमी नहीं है। एक सिक्के को एक कांच के टुकड़े पर कुछ देरके लिये रखदो, उसके बाद हटाने पर कुछ चिन्ह सा कांच पर रह जाता है। उस कांचको श्वास से प्रभावित करने से वह सिक्का दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार लकड़ी, कोईला अथवा अन्य किन्हीं वस्तुओंके टुकड़े, फोटोग्राफी के प्लेटपर रखने और कुछ देर के बाद हटाने से, उनके चिन्ह प्लेट पर रहजाते हैं और प्लेटको नियमानुसार विकसित करने से वही वस्तु दिखाई देने लगती है इसे और इस प्रकार अन्य दृश्योंके हेतु भौतिक विज्ञानसे दिये जा सकते हैं। परन्तु आत्मजगत् में इस प्रकारके किसी उदाहरण से यह (भूत) वाद प्रमाणित नहीं किया जासकता" *

* Psychical Research by Prof. Barret p. 197 and 198.

सातवां अध्याय

पश्चिमी विज्ञान की २०वीं शताब्दी।

पहला परिच्छेद

डाक्टर मोमेरी
Dr. Momerie

डाक्टर मोमेरी ने जीवके अमरत्वको न केवल अपने लिये स्वीकार किया है किन्तु उनको आग्रह है कि अन्य भी उसे स्वीकार करें— उन्होंने अपने एक पुस्तकमें लिखा है "जीवके अमरत्वकी अस्वीकृति ईश्वरका अपमान करना है........अमरत्व का विश्वास एक ऋण है और रचयिता ऋणबद्ध है कि हमें चुकावे और चुकानेही में उसकी प्रतिष्ठा है। यदि हम अमर नहीं हैं तो वह सदाके लिये अपमानित रहेगा" * फिर एक दूसरे स्थान पर लिखा है "क्या यह सम्भव है कि जब तुम्हारा शरीर पञ्चत्व को प्राप्त हो तो वह तुमको भुला देवे और तुम आत्म जगत्में न जासको ? यदि वह (ईश्वर) खेतमें उपजी घासको भी नग्न नहीं रखता तो क्या इससे भी उत्तम वस्त्रोंसे वह तुम्हें न

* Sermons on immortality by Dr. Momerie p. 33.

ढकेगा ? * वे फिर लिखते हैं कि "अमरत्व ईश्वरके रचना कार्य्यकी जो सहस्त्रों कोटियोंमें आश्चर्य्य जनक और दिव्य रीतिसे हो रहा है, सम्भव की पराकाष्ठा है † इसी पुस्तकमें "मोमेरी" ने इस बातपर विचार करते हुए कि शरीर छोडने पर जीव जब आत्म जगत्में जावेंगे तो बिना शरीरके होंगे और बिना शरीरके किस प्रकार अपने साथियोंको पहचान सकेंगे, लिखा है कि वे "आवाज से एक दूसरे को पहचान लेंगे ‡। उसकी सम्मति है कि "जिसकी अकालमृत्यु होजावेगी उनके लिये पुनर्जन्म आवश्यक होगा क्योंकि मनुष्य जातिके लगभग सभी उच्च विचारकोंने उसे स्वीकार किया है §।

डाक्टर साल मॉड

साल मॉडने ईसाईमतका वर्तमानरूप प्रकट करनेके लिये एक पुस्तक में लिखा है और उसमें अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की है कि "जीव अपनी प्रकृति के लिहाजसे मरणशील है और (मरने पर शरीरके साथ) नष्ट होजावेगा सिवाय उस सूरतके कि इस साधारण कार्य्यप्रणाली में ईश्वर हस्ताक्षेप करे ¶ इसलिये

* Sermons on immortality by Dr. Momerie p. 39.

† " " p. 39

‡ Do. p. 78 पर बिना शरीर के आवाज कहां से आवेगी ?

§ " p. 87

¶ Christian Doctrine of Immortality p. 485.

सालमोंड जीवके अमरत्वको "सोपाधिक अमरत्व" लिखता है परन्तु भावी जीवनके विश्वासको 'सार्वत्रिक विश्वास' बतलाया है। ईसाई मतका मेल, जीवके बुद्धि पूर्वक विश्वास आदिसे न पाकर सालमोंड लिखता है कि "सत्यमत अपनी परिमित शिक्षा देगा और प्रत्येक कठिनताका उत्तर देनेका सङ्कल्प न करेगा........ जिस बातका निर्णय करनेके लिये ईसाकी सम्मति न मिलेगी उसमें वह चुप रहने ही पर सन्तोष करेगा और जो बात मनुष्य के इस अथवा भावी जीवनसे सम्बन्धित अन्धकारमें है उसे वह अनादि सर्वज्ञके लिये यह समझ कर छोड़ देगा कि इसे वह गुप्त रखना चाहता है*

डब्ल्यू. एन. क्लर्क (न्यूयार्क) ने अमरत्वके सम्बन्धमें लिखा है कि "अमरत्वके लिये निर्णायक साक्षी नहीं है........ और जो है वह न्यूयाधिक परिमित है"। "मनुष्य मनोविकार और मनोभावमें कितना आत्मिक बल है, इससे अनभिज्ञ नहीं है "आत्मिक बल शरीर मूलक है" यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है और इस पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि मनुष्यकी सत्ता और पराक्रम नष्ट होनेके लिये है"। अन्तमें वह लिखता है कि मनुष्य यहां मरकर जीना सीख रहा है।†

---

* Christian Doctrine of Immortality p. 514 by Dr. Salmond.

† An outline of Christian Theology by Dr. W. N. Clarke p. 192-198.

प्रोफेसर राइस। राइसने १९०४ ई० में एक पुस्तक जीवके सम्बन्धमें लिख कर अपना मत इस प्रकार प्रकट किया हैकि जीवन अप्राकृतिक और निरवयवहै। वह लाज (Lodge) से इस विषयमें सहमत है कि अमरत्वके लिये कोई आध्यात्मिक प्रमाण नहीं है। उसका मत है कि सम्भव है कि मस्तिष्कका एक प्रतिरूप समस्त अङ्कित स्मृतियोंके साथ आकाशमें हो परन्तु यह कल्पितवाद इस मन्तव्यके विरुद्ध है कि मस्तिष्कका इस अंशमें आकाश है और कि वह विद्युतकणोंके समुदाय रूप परमाणुओंका सङ्घात है। *

१. साइम (आस्ट्रेलिया) १९०३ में जीवके सम्बन्धमें साइमने एक पुस्तक प्रकाशित की थी। पुस्तक में जीवके अप्राकृतिक होनेके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया था और यह भी लिखा था कि कोरके समयसे प्रायः सभी लोगों ने जिन्होंने इस विषयको मनन किया, अध्यात्मवादको जीवके अमरत्वका पोषक नहीं समझा। परन्तु पुस्तकमें फिर एक तर्क उपस्थित किया गया है कि सृष्टि के प्रत्येक कार्य्य में नियम, उद्देश्य, और अविरोध पाये जाते हैं। हमारे धार्मिक आवेग और नैसार्गिक बुद्धि दोनों स्वाभाविक और जगत् सम्बन्धित विकासके परिणाम हैं। जीवके अमरत्वका विश्वव्यापी विश्वास नैसार्गिक

* Christian truth in age of Science by Prof. Rice of Wesley University p. 279-283.

बुद्धि पर निर्भर है। तर्क बहुधा असत्य सिद्ध होता है परन्तु नैसर्गिक बुद्धि असत्य नहीं होती। इससे सिद्ध होता है कि जीव अमर है। वह फिर कहता है कि "यदि जीवने अपना वर्त्तमान शरीर बना लिया तो वह एक दूसरा भी बना सकता है," जिसका तात्पर्य्य यह है कि वह आवागमन को भी मानता है।

उसके मतानुसार स्मृति एक असाधारण शक्ति है और उसे कीटके रूपमें शरीरमें उपस्थित रहना चाहिए क्योंकि वही पैतृक संस्कार गर्भमें लाती है और वह स्वप्नमें यहां तक कि मरते समय भी सुस्पष्ट रहती है। और इस प्रकार मर जानेके पश्चात् भी किसी दूसरी परिस्थितिमें बाकी रहती है। सायमने एक और भी तर्क उपस्थित किया है कि जब *चेतनअणु बिना चक्षुके देख बिना श्रोत्रके सुन, और बिना ज्ञान तन्तुओंके अनुभव कर सकता है तो उससे उच्च कोटिका वस्तु मनुष्यका जीवात्मा क्यों उसीके सदृश सब कार्य नहीं कर सकता। यदि जीवने, उसके विचारानुसार, कीटाणुसे यह शरीर बना लिया तो वह अवश्य इस शरीरसे पृथक् होनेकी योग्यता रखने वाली वस्तु है †

---

* Book on the Soul by Dr. Syme quoted by Mr. Hayness in his book on Immortality p.119-120

† मोनार्ड जिसका यहां सङ्केत किया गया है जीवन विद्यानुसार (Biology) एक अत्यन्त सूक्ष्म अमिश्र प्राणि सम्बन्धी रचना है जिसे जीवन विद्याके विद्वान् (Biologists) जानते हैं। वास्तवमें मोनार्ड देखता सुनता आदि है या नहीं इसमें विभिन्न मत हैं।

न्यूमैन स्मिथ (अमरिका) इसने लिखा है कि " विकासवाद उस प्रवृत्तिका नाम है जो पूर्णताकी ओर मुंह रखती है, और यहां पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकती; इसलिए आवश्यक है कि ऐसी परिस्थितमें भेजा जावे जो उसकी आत्मीयताके अधिक अनुकूल हो । यह आवश्यक नहीं कि वहां वह बिना शरीरके रहे वहांके प्राकृतिक साधन और परिस्थिति अधिक आल्हादप्रद होगीxxxजीव और शरीरका सम्बन्ध बहुत मामूली और सुगम परिवर्तनीय है। स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं। मनुष्य शरीरका प्रारम्भ एक बिन्दुसे है जिसे सूक्ष्म दर्शक यन्त्रके बिना नहीं देख सकते और जिसमें जीवकी हालत शरीरके अनुकूल ही होती है । यदि शरीर कीटका है तो जीव भी कीट ही होगा और इसी प्रकार भविष्यत्में शरीरानुकूल उसकी अवस्था रहेगीxxx। शरीरके नाशसे किसी व्यक्तिके उन सम्बन्धोंका नाश नहीं होता जो बाह्य जगत्से हैxxxअवशिष्ट जीवनका मूल्य व्यक्तिकी उन्नत अवस्था पर निर्भर है । प्राकृतिक नियम अधिकतर जाति पर दत्तावधान रहते हैं परन्तु मनुष्यता व्यक्तित्वको लक्ष्यमें रखती है । इसलिए हम विश्वास नहीं कर सकते कि यह बहु मूल्य व्यक्तित्व नाश हो जावेगाxxमनुष्यमें जीनेकी इच्छा ज्वालावत् है यह भला किस प्रकार प्राकृतिक साधनोंसे बुझाई जासकती है *।

* Through Science to faith by Mr. Newdman Smith p. 262 and 263.

एच. सोली. सोलीने १९०५ ई० में एक पुस्तक प्रकाशित करके जीवके अमरत्वका समर्थन किया है। इसका मुख्य हेतु उसने यह दिया है कि प्राकृतिक शरीरोंकी रचना कुछ काल तक काम देने के लिए होती है। किन्हीं सूरतोंमें वह समय थोडा होता है किन्हींमें बहुत। परन्तु नियत समय बीतने पर स्वाभाविक रीतिसे वह नष्ट हो जाते हैं, परन्तु उससे सर्वथा पृथक है क्योंकि चेतना, चित्त, और आवेगके विकासकी कोई अवधि नहींहै*

एडवर्ड कारपेन्टर ने एक नाटक † मृत्यु और जीवनके सन्बन्धमें १९१२ ई० में प्रकाशित किया था। जीवके अमरत्वका विचार करते हुए उसने लिखा है कि "सीरियाके जंगलोंमें एक पौदा होता है जिसका नाम "जेरीचो" है और वह एक प्रकारका गुलाब है। उसका विस्तार "डेसी" (इङ्गलैण्डका एक फूल) की भान्ति है और लगभग वैसा फूल भी उस पर आता है। सूखी ऋतुओंमें जब उसकी जडके पासकी मिट्टी रेतके सदृश हो जाती है तो उस रेतीली भूमिकी पकडसे अपनेको बचानेकी उसे चिन्ता होती है और वह अपने जड आदि समस्त अवयवोंको गेंदकी भान्ति वायुके वेगसे घुमाता है। वायु उसे मैदानोंकी ओर उडा ले जाती है। वह उस समय तक बराबर चलता ही जाता है जब तक किसी आर्द्र और आश्रयदा भूमिको नहीं प्राप्त

* Know thyself by Mr. H. Solly.

† The Drama of Life and Death by Edward Carpenter p. 97 and 98.

कर लेता है। वहां पहुंच कर उसकी जड उस भूमिको पकड लेती है और इस प्रकार वह पौदा वहां हरा भरा होकर फिर फूलित होने लगता है। इसी जेरोची गुलाबके पौदेकी तरह मानुषी जीव अपनी जड खीचकर प्राकृतिक बन्धनसे अपनेको पृथक् कर लेता है और आकाशस्थ सूर्य भी जिसे वह विशेषतासे अपने जीवनका हेतु समझता है, जब सान्धकार हो जाता है तब भी जीव दृढता और प्रसन्नतासे एक मजबूत गेंदके रूपमें होकर भावी घटनाओंके घटित होनेकी प्रतीक्षामें घूमता है"। उपर्युक्त विवरण देते हुए कारपेन्टरने जीवको "अनादि" "अमृत्यु" "मनुष्योंका जीव" पशुओंका जीव" आदि कहा है। वह इस अनादि आत्माको एक प्रकारका "विश्वात्मा" अथवा "जातीयात्मा" कहता है। जीवात्मा अति सूक्ष्म, निरवयव और चरित्रके अत्यन्त सूक्ष्म अणुओंसे युक्त है। उसकी सत्ता अपने मित्रोंमें हम अच्छी तरह देखते हैं परन्तु फिर उसका वर्णन करदेना अत्यन्त कठिन है*। मृत्युके बाद जातीय (विश्व) आत्मा असंख्य प्राणियोंकी उत्पत्ति का हेतु होता है। नष्ट होनेवाली वस्तु केवल दृश्य शरीर है जो मृत्यु होने पर छिन्न भिन्न होजाता है। फिर मनुष्य और पशुओं के जीवों के सम्बन्ध में बतलाया गया है†। "पशुओं और मनुष्यों के प्रारम्भिक जीवन में विश्वात्मा" ही होता है और प्रत्येक व्यक्तिगत जीव उसी से ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जैसे

---

* Do p. 85.

† Drama of Life and Death P. 237.

एक वर्धमान वृक्षकी शाखाओंसे कलियां उत्पन्न होती हैं और मृत्यु होने पर उसी (विश्वात्मा) में लीन होजाती हैं। जातीय-आत्मा के सिवा और कोई व्यक्तिगत जीव जो मरनेके बाद बाकी रहता हो, उत्पन्न नहीं हुआ है"।

मानुषी जीवनके सम्बन्धमें कारपेंटर लिखता है * कि "जातीयात्मा इन सब अवस्थाओंमें व्यक्तिगत अनुभवोंको एकत्र करता, व्यक्तियोंके संयुक्त ज्ञानसे ज्ञानवान् होता और उनकी गणित स्मृतियों से सम्पन्न होता हुआ, आगे बढ़ता है। फिर अनुभव ज्ञान और स्मृतिके उन्नत क्षेत्र, जो अपरिच्छिन्न और औत्सर्गिक रूप में होते हैं कभी २ तीव्र, परिच्छिन्न और विस्तृत रूप में होकर उससे उत्पन्न व्यक्तिगत जीवोंमें चले जाते हैं। इस तरह से एक प्रकार का आंशिक पुनर्जन्म होता है जिसके द्वारा स्मृति रेखा और स्वभाव उत्तरोत्तर कालीन व्यक्तियोंमें जाते हैं और शायद इसी हेतु से जीवके अमरत्व और पूर्वजन्म सम्बन्धी विचार निकाले जाते हैं"। फिर एक और स्थान पर लिखा गया है कि "उत्तरोत्तर काल में उन्नत होता हुआ व्यक्तिगत जीव दिव्य-रूप ग्रहण करता है और अन्तःवर्ती सूक्ष्मशरीर को इतना उन्नत करता है कि वह फिर नष्ट नहीं होता। इस प्रकार इस उन्नत अवस्थाको प्राप्त करके मानुषी जीव पूर्ण रीति से पुनर्जन्मों को प्राप्त होता है और अब वह अमर हो जाता है और जातीय आत्मामें लय होकर अब उसके नष्ट होनेका भय बाकी नहीं

* Drama of Life and Death p. 228.

रहता"। कार्पेन्टर जीवात्माकी सत्ता प्राकृतिक शरीरसे भिन्न मानता है*। इस प्रकार जीवका विवरण देते हुए पुस्तकके अन्तमें कारपेन्टरने आधुनिक पाश्चात्य अध्यात्मवादियोंकी शिक्षाको स्वीकार किया है, अर्थात् जीवोंका फोटो लेना, उनको तोललेना आदि विषयोंको वह सम्भव मानता है। उसने जीवका तोल ¾ से एक औंस तक लिखा है। उसने फिर एक प्रोफैसर की परीक्षाके आधारपर लिखा है कि "मानवी जीवका तोल एक औंसका कोई भाग है परन्तु उसका रूप उसका आवृत्ति और लम्बाई चौडाई मनुष्य शरीरके सदृश है और जब वह पूर्णताको प्राप्त कर लेगा तो उसकी ऊंचाई बहुत होगी अर्थात् वह ३५ से ३८ मील † तक पृथ्वी पर ऊंचा होगा"

डाक्टर आलफ्रेड रसेल वालेस

कुछेक वैज्ञानिक जीवन और शरीर दोनोंका प्राकृतिक आधार कललरसको बतलाते हैं। यह तत्त्व केवल ४ मूल द्रव्योंका संयोग है। उनमेंसे तीन वायव्य द्रव्य हैं (१) नेट्रोजन, (२) हैड्रोजन (३) आक्सिजन और चौथा द्रव्य कार्बन है। प्राणियोंके समस्त अवयव त्वचा, मांस, अस्थि, वाल, सींग, नाखुन, दांत मांस पेशी, शिरा और धमनी इत्यादि इन्हीं मूल द्रव्योंसे बनते हैं। किसी २ अवयवके निर्माणमें थोडी मात्रामें गन्धक, फास

* Drama of Life and Death p. 172.

† तबतो तुलसीदासजीका कुम्भकरण सम्बन्धी वर्णन ठीक सा प्रतीत होता है।

फोरस चूना अथवा सिलिका (Silica) भी प्रयुक्त होते हैं । ये समस्त अवयव प्राणियोंके भोजन वनस्पति और फल आदि अथवा सिंह आदि मांसाहारियोंके भोजन मांस से बनते हैं । परन्तु ये भोज्य पदार्थ और समस्त वे अवयव जो प्राणियोंके शरीरों में और वे समस्त वस्तुयें जो वनस्पतियोंसे उत्पन्न होती हैं, उन सबके उपादान यही ४ मूल द्रव्य होते हैं । इन मूल्य द्रव्यों में भी प्रोफेसर एफ. जे. एलनके मतानुसार नाइट्रोजन मुख्य है । ये द्रव्य यद्यपि जड और निश्चेष्ट है परन्तु शक्तिके सञ्चारसे रासायनिक संयोगोंमें सम्मिलित हो जाते हैं ।

नाइट्रोजन और हाइड्रोजनका संयोग ही अमोनिया (Amonia) है, यह अमोनिया अन्तरिक्षमें विद्युत प्रवाहसे प्रकट होता है । अमोनिया और नैट्रोजनके कतिपय अम्ल जो उपर्युक्त भान्ति उत्पन्न होते हैं, इन्हींके द्वारा नैट्रोजन वनस्पतियोंका आहार होता है और वनस्पतियोंके द्वारा प्राणियोंके आहारका रूप ग्रहण करता है ।

वनस्पतियां अपने पत्तोंके माध्यमसे आक्सिजन और कार्बन डायोक्साइड (Carbon Dioxide) को लकडीका भाग बनानेके लिए ग्रहण करती है । और जडके द्वारा पानी जिसमें अमोनिया और नैट्रोजनके कुछ अम्ल सम्मिलित रहते हैं ग्रहण करती हैं और इन्हींसे वनस्पतियोंमें कललरस उत्पन्न होता है जो फिर समस्त वनस्पतियोंके निर्माण का हेतु बनता है । इन नैट्रोजनसे बने मि-

श्रित वस्तुओंके लिए बननेसे पूर्व अपेक्षित शक्तिके मिल जानेसे उनकी उत्पत्ति गगन मण्डल में होकर वर्षाके द्वारा ये पदार्थ पृथ्वी पर आते हैं और वनस्पतियों द्वारा प्राणियोंमें पहुंच कर उच्च जीवित प्राणियोंकी उत्पत्तिकी लम्बी शृङ्खलाका प्रारम्भ करते हैं। नैट्रोजनके शीघ्र प्रभावित होनेके गुण और परिवर्तन होनेकी और उसके रुजहानकी न्यूनाधिकता पृथ्वी तलके शीतोष्णकी मात्रापर निर्भर है। प्रोफेसर एलनके मतानुसार यदि पृथ्वी तलकी शीतोष्ण मात्रा जमे हुए पानी ७२ और १०४ के मध्यमें हो तो अत्यन्त आवश्यक घटनायें घटित और प्रदर्शित होती हैं परन्तु यदि यह मात्रा इन अङ्कोंके इधर उधर हो जाय तो जीवन का गति मार्ग सर्वथा बदल जायगा।

जीवनके लिए एक और आवश्यक वस्तु गगन मण्डलमें कार्वोनिक एसिड गैसका उचित मात्रामें होना है और इसीसे स्थावर और जङ्गम जगत्में प्रारम्भमें अङ्गार तत्व (कार्बन) ग्रहण किया जाता है। वृक्षोंकी पत्तियां नभ मण्डलसे कार्बन गैसको लेती है और एक और विलक्षण द्रव्य "क्लोरीफिल" (Chlorophyll) से हरा रंग। इस प्रकार उपलब्ध कार्बनसे वृक्षोंका शरीर बनता है और सूर्य किरणों के प्रभावसे औक्सिजन उनके शरीरोंसे बाहर हो जाता है। पत्तियां नभोमण्डलसे कार्बन गैसको पृथक करके ग्रहण करनेमें आकाश (ईथर) की तरङ्गोंकी सहायता

लेती है * यह कार्य आकाश तरङ्ग ही कर सकती है।

कललरसके सम्बन्धमें डाक्टर वालेसका मत इस प्रकार है—†

इस प्रकार जब थोड़ा मात्रामें गन्धक अणुओंके संस्थानोंमें

---

* चेम्बरकी इन्साइक्लोपेडिया (Article—"Vegitable Physiology' in Chamber's Encyclopaedia) में पत्तियोंके इस कार्यका विवरण इस प्रकार दिया गया है:—"हमने देख लिया है कि किस प्रकार हरी पत्तियोंको भिन्न वायु, जल और विलीन लवण प्राप्त होते हैं और किस प्रकार वे आकाश तरङ्गोंको ग्रहण कर सकती हैं। इन तरङ्गोंकी गतिमयशक्ति शुद्ध निरेन्द्रिय मिश्रितोंको विषम सेन्द्रिय मिश्रितोंमें परिणत करनेके लिये प्रयुक्त होती है जो श्वासोच्छ्वास क्रियासे पुनः अमिश्रित द्रव्योंके रूपमें परिवर्तित हो जाती है और सप्रभावशक्ति गतिप्रयोगक (Kinetic) अवस्थामें जीवित शरीरोंके अवयवोंमें ये आहारपरिवर्तनकार्य्य जीवित कोशोंमें तीव्र गतिके साथ होते हैं। कललरस और कोशमार्ग द्वारा यह प्रवाह, प्रत्येक दशामें और कोशोंके मध्यमें भी जो कललरसके माध्यमसे संयुक्त हो जाते हैं, प्रवाहित होता है। वायु जो श्वासोच्छ्वास और परिपाक क्रियाओंमें प्रयुक्त हुआ और छोड़ दिया गया, भीतर और बाहर फैल जाता है और कललरसका प्रत्येक प्रदीप्त अथवा अप्रदीप्त कण संक्षोभका केन्द्र बन जाता है। विशुद्ध कललरस भी इसी प्रकार कतिपय लाल किरणों और विशेष कर विनफ़शाई किरणोंसे, जो "क्लोरोफिल" से संयुक्त होती हैं, प्रभावित होता है। ये किरणें विशेषकर लाल किरणों कार्बोनिक एसिडको पृथक् करके कार्बनको पचाती और आक्सिजनका बहिष्कार करती है"।

† Man's place on the Unviverse by Dr. A. R. Wallace p. 163.

सम्मिलित हो जाती है तो एक वस्तु जिसका नाम "प्रोटीड" है, बन जाती है।

प्रोफैसर डब्ल्यू. डी. हेलीबर्टन (W. D. Haliburton) के कथनानुसार यह प्रोटीड जङ्गम और स्थावर योनियोंकी जीवितरस संस्कार शालाओंमें तय्यार होती है और कललरसमें उपस्थित वस्तुओंमें सबसे अधिक आवश्यक है। यह अणु (प्रोटीड) अत्यन्त विषम है और ५ और अधिकतर ६ या ७ मूल द्रव्योंसे मिश्रित है। इस मिश्रितका ठीक २ समझ लेना आवश्यक था परन्तु समझनेके लिये जो उद्योग कियाजा रहा है उसकी चाल धीमी है। जब यह पूर्णतया समझकी जावेगी तो शरीर विज्ञानके अनेक अन्धकारमय पहलुओं पर प्रकाश पड जायगा। कललरसमें एक अद्भुत गुण यहभी है कि जिससे वह अनेक मूलभूतोंको, जीवितप्राणियोंके भिन्न २ शरीर अवयवों में, विलीन करदेता है, और आवश्यकतानुसार उन्हें विशेष २ कार्य्योंके लिये मोड़माड़ भी देता है।

"सिलिका" वनस्पतिपरिवारके तनोंमें, चूना और मेगनेशिया जङ्गम योनियोंकी हड्डियोंमें, लोहा रक्तमें पाया जाता है। उन चार मूलद्रव्योंके सिवा जो कललरसके निर्माता है, अधिकांश जङ्गम और स्थावर योनियोंके किसी २ भागमें गन्धक, फास्फोरस क्लोराइन, सिलिकन, सोडियम, पोटासियम, कैलसियम, मैगनेशिया और लोहा पायेजाते हैं। और फ्लोराइन (Flor ne) आयोडाइन (Iodine) ब्रोमाइन (Bromine) लिथियम (Lithium)

ताम्बा, मैंगनीज Manganese) और एलोमिनियम (Alumi-nium) भी विशेष २ अवयवोंमें न्यूनांश में पाए जाते हैं, इन मूलद्रव्योंके अणु कललरसके प्रवाह द्वारा जहां २ अपेक्षित होते हैं पहुंचा दिये जाते हैं और वहां जाकर येसब जीवित प्राणियों के शरीरके अवयवों को ठीक उसी प्रकार निर्माण करते हैं जैसे ईंट, पत्थर, चूना, लोहा, लकड़ी, शीशा आदियोंके उपयोगी स्थान पर पहुंचनेसे एक भवन बनजाता है * । परन्तु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि इस प्रकार प्राणी और वनस्पतियोंके शरीर बनते नहीं किन्तु बढ़ते रहते हैं । इनका प्रारम्भ तो केवल एक घटकसे होता है । यह घटकभी शरीरके किसी भाग विशेषका निर्माण नहीं करता किन्तु समस्त शरीरको यथाभागशः बढ़ाया करता है । यह कार्य्यभी नमी और उष्णतासे प्रभावित कललरसका बतलाया जाता है परन्तु आधुनिक शरीर वैज्ञानिक नहीं बतला सकते कि किस प्रकार एक घटक अथवा वीर्य्याणु से समस्त शरीर बन जाता है । यह अभी अलौकिक कार्य्य समझा जाता है, यद्यपि उन्हें आशा है कि भविष्यमें यह गुप्त भेद खुल जायगा ।

एक घटकसे शरीर बननेके अलौकिक कार्य्यने "क्लर्क मैक्सवेल" (Clerk Maxwell) को चकित कर दिया । वे कहते हैं कि पुनरुत्पादक घटकमें लाखों करोड़ों अणुओंके समान

* इसी प्रकारका विवरण प्रोफेसर एफ. जे. एलनके पुस्तक (What is life by F. J. Allen) में भी दिया हुआ है ।

को तो जगह ही नहीं है जिनकी अपक्षा शरीर निर्माणमें होती है। फिर किस प्रकार एक ही घटकसे समस्त शरीर बन जाता है? इस पर प्रोफेसर केंड्रिके (Pr. Kendrik) कहते हैं कि अब यह कल्पना कर लेनी चाहिये कि उत्पादक घटकमें अरबों ऐन्द्रियिक अणु रह सकते हैं। यह विवरण है जो अर्वाचीन शरीर वैज्ञानिक जड़ मूल भूतोंके चेतनामय शरीरके उत्पन्न होने का देते हैं। परन्तु यह विवरण उससे अधिक समझमें आने योग्य नहीं है कि जो १७वीं शताब्दीमें पत्थरकी कुल्हाड़ी अथवा वसूला बननेका दिया गया था, और वह इस प्रकार है:— १६४९ ई० में "एडरियानस टौलियस" (Adrianos Tollius) ने कुछ चित्र पत्थरके मामूली वसूलों और हथोडोंके देकर कहा था कि पदार्थ शास्त्रज्ञोंने बतलाया है कि आसमान पर उनका प्रादुर्भाव इस प्रकार हुआ "बिजलीकी सदृश, चमकती हुई वाष्प गोलेके रूपमें बादलोंमें शब्दतरङ्गसे एकत्रित हुई, अति वेगवती उष्णता उसके साथ थी। उसके साथ आर्द्रताके मेलने उसके हिलते हुये शुष्कभागको नोकीला बनादिया और दूसरा भागजो स्थिरथा घना होगया। इस प्रकार वह उत्पन्न शस्त्र वाष्प के प्रबल दबावसे बादलोंपर चोट मारता है और उस चोटका परिणाम यह होता है कि शब्द और प्रकाश अर्थात् गरज और चमक उत्पन्न होजाती है। *

---

* टाइलरने अपने पुस्तकमें इस कहानीको उद्धृत किया और उस का मज़ाक उड़ाया है। वह पूछता है कि ये शस्त्र (वसूला या कुल्हाड़ी)

इस प्रकार की तुकबन्दियोंसे अचेतन मूलद्रव्योंसे चेतनामयशरीर उत्पन्न नहीं हो सकता। सचतो यह है कि अभीतक वैज्ञानिक इस बात कोभी अच्छी तरह नहीं समझ सके हैं कि वृक्षोंमें जल (रस) किस प्रकार ऊपर चढता है। * फिर उससे कहीं गहनतम विषयों, शरीरके विकाश, जीवन पुनरुत्पत्ति आदिको समझने और व्याख्या करनेकी तो कथाही क्या।

डाक्टर वालेसने उपयुक्त विवरण देकर परिणाम यह निकाला है कि चेतनाका प्रकृति आधार नहीं है किन्तु वह प्रकृतिसे स्वतन्त्र है और उसकी उन्होंने कई श्रेणियां भी बतलाई हैं †

सर आलिवर लाज

चेतनाका विचार करते हुये सर आलिवर लाजने लिखा है ‡ कि वह वस्तु जो शरीरको प्रेरित करती है स्नायु है, स्नायुमें आवश्यक शक्ति है जिसको सोद्योग करनेके लिये उत्तेजना अपेक्षित होती है जिससे वह प्रकट उद्योगमें परिणत होकर प्रयोजनीय कार्य्यमें लगे। जीवित

गोल तो नहीं होते। इसके सिवा उनमें एक सूराख भी होता है वह कैसे होगया? (Early History of Mankind by E. R. Tylor Ed. p. 227)

* विज्ञानाचार्य्य जगदीश चन्द्र बोसने हालमें अपने एक आविष्कार द्वारा बतलाया है कि किस प्रकार पानी वृक्षोंकी जड़ोंसे शाखाओंमें पहुंचता है।

† World of life by Dr. Wallace.

‡ Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 133 & 134.

शरीरमें स्नायुको प्रेरित करनेके लिये धमनि सूत्रोंका दुर्बोध प्रबन्ध है। वे जब अनेक प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे स्वय-मेव उद्दीपित होते हैं तो स्नायुओंमें सङ्कोच पैदा करते हैं। धमनिसूत्रोंका उद्दीपन, आकस्मिक घटनाओंसे होता है या किसी यान्त्रिक कार्य्यसे या वैद्युत अङ्कुशके उत्पन्न किये हुये उत्तापका परिणाम है, वैज्ञानिक इसे नहीं बतला सकते। कहा जाता है कि जीवित प्राणियोंमें ऐसे मध्यवर्ती घटकसे जैसा कि मस्तिस्ककी त्वचा अथवा धवलद्रव्यमें है शक्तिके प्रस्राव द्वारा अधिक सार्थक और सुगम रीतिसे यह उद्दीपन उत्पन्न हो सकता है। धमनीसूत्रोंके उद्दीपन करनेका सरल साधन सूत्र ग्रन्थि घटक को भी बतलाया जाता है, जिससे स्नायुओंमें सङ्कोच और उस सङ्कोचसे क्रिया उत्पन्न होती है। परन्तु यह तारतम्य भी वैज्ञा-निकों द्वारा पूर्णतया समझा नहीं गया है। इसको सिद्ध स्वीकृत कर लेने पर भी प्रश्न यह होता है और यही वस्तुत: प्रश्न है कि वह क्या वस्तु है जो मस्तिष्कको उत्तेजना देती है और चाहती है कि अमुक कार्य्य किया जावे, और जो शक्तिको मस्तिष्कके उचित कोशसे मुक्त करती है। इसके लिये कहा जाता है कि कुछेक सूरतोंमें तो वह वस्तु केवल प्रतिक्रिया है। अर्थात् वह आं-शिक उत्तेजना है जो गोलाकार ज्ञान तन्तुओंके अन्तसे आती है। और वही सूत्रग्रन्थि घटक अथवा पृष्ठास्थि (रीढ़) तन्तुओंको उत्ते-जित करती है जहांसे वह उत्तजना निकटवर्ती तन्तुओं और फिर बहिर्मुख धमनि सूत्रोंमें पहुंचती है। परन्तु यह स्पष्ट है

कि इन अवस्थाओंमें चेतना उत्पन्न नहीं होती। आत्मिक तत्त्व का अभाव ही रहा। इस सब कार्य्य प्रणालीमें न तो ज्ञानकी उत्पत्तिका कहीं चिन्ह है न कहीं इच्छाका निशान।........अचेतन प्रतिक्रियाको एक ओर छोड़ कर परिमित रूपसे मेरा विचार यह है कि एक आत्मिक सत्ता चित्तमें है जो यह सब कार्य्य करती है। वही इच्छाको प्रभावित्ति करती हुई निश्चय करती है कि अमुक कार्य्य हो। तदनुकूल वाह्य जगत्में कार्य्य होता है। इसी सत्ता द्वारा उत्तेजना आत्म जगत्से प्राकृतिक जगत में पहुंचती है और वही शक्तिको मस्तिष्कके केन्द्रसे मुक्त करती है"।........यद्यपि यह कार्य्य प्रणाली इस समय गुप्त रहस्य सा है परन्तु प्रत्यक्ष रीतिसे काममें आ रही है और बुद्धि पूर्वक है और अवश्य अन्तको एक दिन ज्ञेयसे ज्ञातकी कोटिमें आवेगी" मस्तिष्क और चित्त पर विचार करते हुए लाज कहते हैं कि "कहा जाता है कि मस्तिष्क ही चित्त है। यह इसलिए कहा जाता है कि यदि मस्तिष्क नष्ट होजावे तो प्रतीत होता है कि चित्त भी चला गया परन्तु वह नष्ट नहीं होता वह बाकी रहता है। अवश्य वह प्रकट नहीं होता क्योंकि वह यन्त्र (मस्तिष्क) जिसके द्वारा वह प्रकट हुआ करता था, नष्ट होगया। मस्तिष्क चित्तका कार्यसाधक यन्त्रहै........जब यह अनुभव कर लिया जावे कि चेतना शरीरकी अपेक्षा उच्चतर वस्तु है और शरीरसे पृथक् और उसकी चलाने वाली है तब स्वाभाविक रीतिसे मान लेना पड़ेगा कि शरीरके नष्ट होने पर वह बाकी रहती है। यह

कल्पना युक्तियुक्त न होगी कि मरने पर जीव भी मर जाता है। जीवकी आयु कतिपय वर्षोंकी ही नहीं है जिनमें वह पृथ्वी पर जीवित रहता है। जीव बिना शरीरके ही रह सकता है इस-लिए यह निश्चित है कि जीव अमर है। यह बात मैं वैज्ञानिक हेतुओंके आधार पर कह रहा हूं *

एक और स्थान पर लाजने लिखा है कि "मैं इस बातके निश्चय करनेमें दोषमुक्त हूं कि (मरनेके बाद) शरीर रहित जीवों और हमारे मध्य सज्ञान सहयोग होना सम्भव होगया है.... मरनेके बाद जीवके बाकी रहनेकी साक्षियां चिरकालसे मिलती चली आ रही हैं और अब स्वयंचलदयन्त्रके लेखोंसे वे निश्च-यका रूप ग्रहण कर रही हैं·······पहली और एक मात्र बात (इन परीक्षणोंसे) जो हमने सीखी है वह जीवका अमरत्व है···········स्मृति, शील, स्वभाव, शिक्षा, चरित्र और प्रेम ये सब और कुछ अंश तक आस्वाद और लाभालाभका अनुराग जो मनुष्यके आवश्यक गुण हैं मरनेके बाद भी जीवमें रहते हैं †

सर विलियम क्रक्स Sir William (Crookes)

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक क्रक्स सन् १८९७ ई० में "वृटिश ऐसोसिएशन" के सभापति निर्वाचित हुये थे। यह अधिवेशन

* Science and Religion by Seven Men of Science p. 23-25.

† Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 231-235.

ब्रिस्टलमें सङ्घटित हुआ था। अपने भाषणके अन्तमें क्रूकसने कहा था "मेरे वैज्ञानिक जीवनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध कार्य्य वह है जो मैंने गत वर्षों में आत्मिक खोजों के सम्बन्धमें किया था। ३० वर्ष बीते कि मैंने अपना परीक्षणवृत्तान्त प्रकाशित किया था, जिसका फल यह था कि हमारे वैज्ञानिक ज्ञानकी सीमा से बाहर एक शक्तिकी सत्ता है, जो ज्ञानपूर्वक प्रयुक्त होती है परन्तु यह ज्ञान उस साधारण ज्ञानसे विभिन्न है, जो मरण-धर्म्मा प्राणियोंमें पाया जाता है। मेरे जीवनकी इस घटनासे वे भलीभांति परिचित हैं जिन्होंने यहां सभापति होनेके लिए मुझे निमन्त्रित किया था" फिर इस बातको कहते हुए कि ये विषय (आत्माकी खोजसे सम्बन्धित) वैज्ञानिक अधिवेशनोंमें वादानुवाद किये जाने के अयोग्य नहीं है उन्होंने अपने भाषण में कहा कि "मैं अपने पूर्व प्रकाशित कथनों पर अब भी दृढ हूं। उसमेंसे कुछ निकालना नहीं अपितु जोडना अवश्य है, मेरा विचार है कि अब मैं कुछ और अधिक देखता हूं और जो कुछ विलक्षण दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं उनमें अविरोधकी झलक दिखाई देती है अर्थात् उन अव्यक्त शक्तियों और वैज्ञानिक नियमोंके मध्यमें कुछ लगाव सा प्रतीत होता है" उन्होंने "परचित्त-ज्ञान" को निश्चित नियम बतलाते हुए कहा कि "विचार और प्रतिमायें एक मस्तिष्कसे दूसरे मस्तिष्कमें विना इन्द्रियोंके माध्यम के परिवर्तित हो सकती हैं" उन्होंने रिण्डलके उस कथनका प्रतिवाद करते हुए जो उसने २३ वर्ष पहले इसी एसोसियशन

की सभापतिकी स्थितिसे किया था, कहा "एक उत्कृष्ट पूर्वाधिकारीने इसी गद्दीसे आघोषित किया था कि उसने अनुभवात्मक साक्षियोंकी सीमाका उल्लङ्घन करते हुए प्रकृतिमें समस्त पार्थिव जीवनकी शक्ति और योग्यता होनेके चिन्ह पाए, जो अब तक उसकी अप्रकट शक्तियोंके अज्ञानसे गुप्त थे। परन्तु इस कथन को उलट कर कहनेको तरजीह देता हूं अर्थात् मैं "जीवनमें समस्त प्रकृतिकी शक्ति और योग्यताओंको पाता हूं"

डाक्टर जे.ए. फ्लीमिङ्ग

इंगलैण्डके वैज्ञानिक सप्ताहमें जो १९१४ ई० में मनाया गया था, दूसरे दिनके व्याख्याता फ्लीमिङ्ग थे। इन्होंने इस व्याख्यानमें कहा था कि "हमें पूर्णतया निश्चय हैं कि ब्रह्माण्डमें एक सविचार आत्मा है, जो स्वरूपमान जगत्का चित्र रचनासे पूर्व अपने मस्तिष्कमें रखती थी ....परन्तु जब हम न केवल बाह्य जगत् पर दृष्टि डालते हैं किन्तु मानुषी सत्ताको भी लक्ष्यमें रखकर अपने हृदयोंको देखते हैं, तब हमको प्रतीत होने लगता है कि न केवल ब्रह्माण्ड और उससे ऊपर एक चेतन शक्ति है, किन्तु एक शक्ति है जो हमारे चरित्रोंसे सम्बन्धित है, परन्तु वह शक्ति हमारी (शरीरकी) नहीं है। इस बातको हम सब जानते हैं कि हमारे भीतर एक शक्ति है जो हमको धर्माधर्मका ज्ञान देती है और जो हम कुछ काम (अधर्मके) करते हैं तब हमको व्याकुल बना देती है और जब कुछ दूसरे प्रकारके काम (धर्मसम्बन्धी) करते हैं तब हमको हर्षित कर देती है। इसी शक्तिको हम अन्तःकरण

कहते हैं।........दृढतासे यह बात प्रकट होती है कि परमात्मा के द्वारा उसके अलौकिक नियम मनुष्योंके हृदयोंमें, जब वे पाप करना चाहते हैं प्रकट होते हैं, और उन्हें उस बुराईसे बचाने की प्रेरणा करते है..........यह सिद्ध करनेके लिए यह पर्याप्त है कि नास्तिकवाद दर्शन और विज्ञान दोनोंके विपरीत है। सर फ्रांसिस बेकनने अपने एक निबन्धमें, जो नास्तिकवाद पर लिखा गया था लिखा था कि "थोडा दार्शनिक ज्ञान मनुष्यको नास्तिकवाद की ओर झुकाता है परन्तु जब वह दर्शन शास्त्र की गहराई में पहुंचता है तब उसका झुकाव धर्म की ओर होने लगता है, जब मनुष्य निकटवर्ती प्रकट हेतुओं को देखता है तो कभी २ उन्हीं में चक्कर लगाता रह जाता है और आगे नहीं जाता परन्तु जब वह उनके भीतर घुसकर उनमें स्थित हेतुओं की अलौकिक कड़ी को देखता है जो परस्पर सम्बन्धित और संयुक्त हैं तो उसे विवश होकर ईश्वर की शरण लेनी पड़ती है" .... व्याख्यान का उद्देश्य यह प्रकट करना है कि विज्ञान और धर्म न परस्पर विरुद्ध हैं न उनमें शत्रुता पाई जाती है और यह भी नहीं कि उन्हें एक दूसरे की अपेक्षा हो किन्तु उनमें घनिष्ट सम्बन्ध है अथवा यों कहना चाहिये कि एक ही विस्तृत राज्य के वे दो विभाग हैं, एक बाह्य विभाग है जिसमें मनुष्य प्राकृतिक नियमों और उनके ऊपर स्थित एक उत्कृष्ट शक्ति को देखता है। दूसरा आन्तरिक विभाग है, जिसमें मानुषी आत्मा दिखलाई देती है जो स्वाभाविक और साधारण ज्ञानकी अपेक्षा उच्चज्ञानसे

काम ले रही है, और जब आवश्यकता होने पर सहायतार्थ अपना हाथ फैलाती है तो सर्वनियन्तासे बल और सहायता प्राप्त करती है" *

प्रोफेसर डब्ल्यू. बी. बोटमली

भौतिक अथवा रासायनिक विज्ञान मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। इनसे बढ कर और भी कोई वस्तु है। हममेंसे प्रत्येक के हृदयमें कोई वस्तु है जो उच्च और मनुष्यको मनुष्य बनाने वाले उद्देश्योंकी ओर प्रेरित करती है। परन्तु प्रत्येक वस्तुकी विज्ञान से व्याख्या नहीं की जा सकती, वह वस्तु प्राकृतिक जगत्से ऊपरकी वस्तु है..........और वही जीवात्मा हैं †

प्रोफेसर एडवर्ड हल (Prof. Edward Hull)

"भूगर्भविज्ञान जगत्के शासक और रचयिताकी सत्ता प्रमाणित करता है। ६० वर्ष अर्थात् अपने शिक्षाकालसे अब तक भूगर्भ विद्याको मैं बराबर ऐसा ही समझता और मानता चला आरहा हूं। भूगर्भविद्या बतलाती है कि एक समय था जब किसी प्रकारका जीवन पृथ्वी पर नहीं था, परन्तु अब जीवन मौजूद है इसलिए अवश्य उसका प्रारम्भ किसी समय हुआ होगा, और इसके साथ ही यह बात भी है कि अभाव से अभाव

* Science and Religion by Seven men of Science p. 50-56.

† Do. p. 70

ही उत्पन्न होता है........इसलिये अवश्य जगत्के रचयिताकी सत्ता माननी पड़ती है और उसीने प्राकृतिक जगत् रचा और जीवनको प्रादुर्भूत किया, यह भी स्वीकार करना पड़ता है" *

प्रोफेसर जी. सिम्स वुडहेड

"यह असम्भव है कि एक भी प्रमाण इस बातका दिया जासके कि जीवित तत्त्व अजीवित तत्त्वसे उत्पन्न हुआ, जहां जीवन नहीं है वहां जीवन पैदा भी नहीं किया जा सकता.........जगत्की कार्यप्रणाली पर नजर डालते हुए जो अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है यह है, कि समस्त इच्छाओं शासकशक्तियों, बुद्धि और आत्मामें व्यक्तिगत भाव पाया जाता है। यदि हम छोटीसे बडी सब वस्तुओंके सम्बन्धसे विचार करें तो हमको एक शक्ति जो संसारमें सबसे बड़ी शासक और नियामक है पाई जाती है परन्तु उसमें व्यक्तित्व पाया जाता है........जीवनके प्रारम्भकी खोजमें हम यह विश्वास नहीं खो सकते कि जगत्में एक सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ ईश्वरकी सत्ता है" †

प्रोफेसर सिलवानस थौम्पसन

जो सच्चाई समस्त संसारके मतोंमें पाई जाती हैं और वास्तवमें सचाई हैं वे यह हैं,—

(१) मनुष्यसे बड़ी शक्ति ईश्वरकी सत्ता, (२) आगामी जीवनकी हस्ती, यद्यपि आम तौरसे नहीं, जीवकी अमरता, (३)

---

* Science and Religion by Seven men of Science p. 77 and 78.

† Do. p. 108-110

मनुष्योंमें सद्भाव न्याय, दया, कर्तव्यपरायणताका होना । इसी प्रकार विज्ञानके निश्चित नियम ये हैं:—

(१) प्रकृतिका अविनाशी होना, (२) कतिपय रासायनिक मौलिकोंकी निल्यता (३) रासायनिक सङ्घातका स्थिर मात्रासे होना (४) शक्तिकी निल्यता........इस प्रकार धर्म और विज्ञान दोनोंकी सचाइयोंमें कहां विरोध है ?........

स्थिरता जिसप्रकार प्राकृतिक वस्तुओंमें पाई जाती है उसीप्रकार उसका अध्यात्मिक तत्त्वों (जीव+ईश्वर) में होना अनिवार्य्य है *

---

* Science and Religion by Seven men of Science p 115-129.

आठवा अध्याय

(भारतीय विद्वानोंके मत)

पहला परिच्छेद ।

(दर्शनकार)

गौतम

न्यायदर्शनके रचयिता गौतम मुनि ईश्वर, जीव और प्रकृतिकी स्वतन्त्र और नित्य सत्ता स्वीकार करते हैं। उनके दर्शनका सार यह है कि जीवको दुःख मिथ्याज्ञानसे प्राप्त होते हैं, मिथ्याज्ञानसे दोष, (राग और द्वेष) दोषसे प्रवृत्ति, (सकाम कर्मकी इच्छा) प्रवृत्तिसे जन्म और जन्मसे दुःख उत्पन्न होते हैं। इसलिये मिथ्याज्ञानका उच्छेद करना चाहिये, मिथ्याज्ञानका नाश तत्त्वज्ञानसे होता है इसलिये न्यायाचार्य जीवको तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी शिक्षा देते हैं। वह तत्त्वज्ञान इन १६ पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानसे प्राप्त होता है:—

(१) प्रमाण, प्रमा के साधन का नाम प्रमाण है, वह ४ प्रकार का है:—(१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) उपमान और शब्द (आप्तोपदेश)

(२) प्रमेय, प्रमाण का विषय, प्रमेय १२ तरह के हैं:— (१) आत्मा (२) शरीर (३) इन्द्रिय (४) अर्थ (पंच भूत

और उनके गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) (५) बुद्धि (६) मन (७) प्रवृत्ति (८) दोष (९) प्रेत्यभाव(पुनर्जन्म) (१०) फल (कर्मफल) (११) दुःख (१२) अपवर्ग (मुक्ति)

(३) संशय ।

(४) प्रयोजन ।

(५) दृष्टान्त ।

(६) सिद्धान्त (विषय का निश्चय ।

(७) अवयव—न्यायका एक देश ।

(८) तर्क ।

(९) निर्णय——परपक्षदूषण और स्वपक्षस्थापन द्वारा विषयका निश्चय ।

(१०) वाद ।

(११) जल्प ।

(१२) वितण्डा ।

(१३) हेत्वाभास ।

(१४) छल ।

(१५) जाति ।

(१६) निग्रहस्थान—जिसमें विवादीकी प्रतिपत्ति या अप्रतिपत्ति प्रकाशित हो ।

इन पदार्थोंके तत्त्वज्ञानके लिये न्यायदर्शनमें जो कुछ कहा गया है उसे स्थूलरूपसे तीन भागों में विभक्त कर सकते

हैं (१) न्यायांश, (२) तर्कांश, दर्शनांश। न्यायांश में पञ्चावयव* न्यायकी गवेषणाभरी आलोचना दिखाई पड़ती है, तर्कांश में जल्प, वितण्डा और छल आदि का विचार किया गया है, दर्शनांश में आत्मा, परमात्मा, शरीर, मन और इन्द्रियों की आलोचना की गई है।

---

* न्यायके जगद्गुरू मुनि गौतमने न्यायके पांच अवयव ठहराये थे। अरस्तूने इन्हीं पांच अवयवी अनुमान (Syleogism) को संक्षिप्त रूप देकर ५ की जगह ३ कर दिया है। दोनोंकी तुलना इस प्रकार की जा सकती है:—

	गौतम	अरस्तू
१ प्रतिज्ञा	यह पर्वत वन्हिमान् है।	...
२ हेतु	क्योंकि यह धूम्रवान् है।	...
३ उदाहरण	जो धूम्रवान् होता है वह वन्हिमान् होता है जैसे चूल्हा।	सब धूम्रवान् पदार्थ वन्हिमान् होते हैं।
४ उपनय	यह भी धूम्रवान् है।	यह पर्वत धूम्रवान् है।
५ निगमन	इस लिये यह पर्वत भी वन्हिमान् है।	इस लिये यह पर्वत वन्हिमान् है।

अतः स्पष्ट है कि एक समय अरस्तूने न्यायका पाठ गौतमके न्याय दर्शनसे ग्रहण करके यथामति फेरफारके साथ उसे यूनानमें प्रचलित किया था। अरस्तूसे बहुत पहले न्यायदर्शनका रचा जाना, पाइथागोरस और सिकन्दरका हिन्दुस्तानमें आना, और यहांसे बहुतसे पुस्तकों और विद्वानोंका लेजाना, आदि घटनायें उपर्युक्त परिणाम पर पहुंचनेके लिये पर्याप्त हैं। इस विषयमें पं० गंगा प्रसाद एम. ए. लिखित "तर्क शास्त्र निमज्जन" की भूमिका पढ़नेके योग्य है।

निदान इन साधनोंसे तत्त्वज्ञान, और उससे मुक्ति प्राप्त होती है।

कणाद

वैशेषिक दर्शनके रचयिता कणादमुनि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनोंकी स्वतन्त्रसत्ता स्वीकार करते हुए अपने दर्शनमें उन विधियोंको बतलाते हैं जिनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके अभ्युदय (लोकोन्नति) और निःश्रेयस, (मोक्ष) को प्राप्त करता है। वह तत्त्वज्ञान द्रव्य, गुण, कर्म्म, सामान्य, विशेष, और समवाय इन पदार्थोंके साधर्म्य और वैधर्म्यके ज्ञानसे उत्पन्न होता है।

(१) द्रव्य नौ प्रकारका है :–(१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिशा (८) आत्मा और (९) मन।

(२) गुण १७ प्रकारके हैं:– (१) रूप (२) रस (३) गन्ध (४) स्पर्श (५) संख्या (६) परिमाण (नाप तोल आदि) (७) पृथक्त्व (८) संयोग (९) वियोग (१०) परत्व (११) अपरत्व (१२) बुद्धि (१३) सुख (१४) दुःख (१५) इच्छा (१६) द्वेष (१७) प्रयत्न।*

(३) कर्म—५ प्रकारके हैं (१) उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना)

---

* प्रशस्तपाद तथा अन्य टीकाकारों ने इन १७ गुणों में सूत्रमें आये 'च' शब्दके आधार पर ७ गुण और मिला कर गुणों की संख्या २४ बतलाई है। वे ७ गुण ये हैं:— (१) गुरुत्व (२) द्रवत्व (३) स्नेह (चिकनापन) (४) संस्कार (५) धर्म (६) अधर्म (७) शब्द।

(२) अवक्षेपण (नीचे फेंकना) (३) आकुञ्चन (४) प्रसारण ५) गमन।

(४) सामान्य दो प्रकारका है (१) पर (२) अपर। गाय, बैल, घोड़ा आदि (अपर) की अपेक्षा पशु (पर) है।

(५) विशेष–जिस असाधारणधर्मसे निरवयव पदार्थके परस्पर भेदकी सिद्धि हो वही विशेष है।

(६) समवाय–नित्यसम्बन्ध। इन्हीं ६ पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे स्वतन्त्र जीवकी मुक्ति होसकती है यह वैशेषिककारका प्रदर्शित मुक्तिपथ है।

कपिल का मत

कपिल मुनिने अपने रचे सांख्यदर्शनके द्वारा जीवकी स्वतन्त्रसत्ता स्वीकार करते हुए, उसका परम कर्तव्य-आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति ठहराया है। यह कर्तव्य प्रकृति और पुरुषकी सत्ताका यथार्थज्ञान होनेसे पूरा हो सकता है। यथार्थज्ञान होने पर जीवको पुरुष और प्रकृतिकी सत्ताओं का पार्थक्यज्ञान प्राप्त और दृढ हो जाता है। इस ज्ञानके दृढ होने ही से वह प्राकृतिक बन्धनोंसे छूट कर मोक्ष प्राप्त करता है। उपर्युक्त यथार्थज्ञान प्राप्त करनेके लिए २५ तत्त्वोंका ज्ञान जीवको प्राप्त करना चाहिए। उन २५ तत्त्वोंमें २४ (विकार सहित) प्रकृति और पच्चीसवां पुरुष है।

१—सत्, रज और तमकी साम्यावस्था रूप मूल प्रकृति	
२—महत्तत्त्व	२३ विकृति
३—अहङ्कार	
४—पञ्चतन्मात्रा और मन सहित १० इन्द्रियां	
५—पञ्चस्थूलभूत	योग २४

२५वां पुरुष न प्रकृतिमें है न विकृतिमें, किन्तु दोनोंसे पृथक् अप्राकृतिक सत्ता वाला है * दोनों पुरुष और प्रकृति नित्य हैं। प्रकृति चेतन और अचेतन समस्त जगत्का उपादान कारण नहीं है † किन्तु केवल अचेतन जगत्का उपादान कारण है‡

प्रकृतिको अव्यक्त भी कहते हैं इसलिए कि वह प्रलय अवस्थामें व्यक्त नहीं होती, किन्तु अप्रकट अवस्थामें रहती है। जब सृष्टि उत्पन्न होती है तब वह व्यक्त (प्रकट) अवस्थामें होती है। प्रलय होने पर फिर अप्रकट अवस्थामें हो जाती है। यह चक्र भी (जगत्की उत्पत्ति और फिर प्रलय होनेका) प्रवाहसे अनादि है। प्रकृति परिणामवाली

---

* सांख्यके रचयिताको विशेष रीतिसे प्रकृति और उसके विकारों का ही वर्णन करना था इसलिए उसने ईश्वर और जीव दोनोंको, जिनका विशेष वर्णन करना नहीं था, एक कोटिमें रखकर पुरुष नाम दिया है।

† परिच्छिन्नं न सर्व्वोपादानम् ॥ सांख्य सूत्र १७६ ॥

‡ प्रकृतेराद्योपादानता ॥ सांख्य ६ । ३२ ॥

है। यह परिणाम उससे नित्य सम्बन्धित रहता है। फिर प्रलय में क्यों परिणाम दिखाई नहीं देता, इसका उत्तर वाचस्पति मिश्र ने सांख्यतत्त्वकौमुदीमें इस प्रकार दिया है (देखो १६ वीं कारिकाका भाष्य) कि प्रकृतिके परिणाम दो तरहके होते हैं (१) सदृश परिणाम, (२) विसदृश परिणाम। प्रलय काल में सदृश परिणाम रहता है अर्थात् सत्व सत् रूपमें, रजस् रजस् के रूपमें और तस् तमोरूपमें परिणत हो जाता है।

पतञ्जलिका मत।

पतञ्जलि मुनिने ईश्वर जीव और प्रकृति तीनोंकी नित्य और स्वतन्त्र सत्ता स्वीकारकी है। और अपने रचे हुए योगदर्शन द्वारा उन उपायोंको बतलाया है जिससे जीव ईश्वरको प्राप्त करके मुक्ति लाभ कर सकता है। पतञ्जलिने सांख्यके २५ तत्त्वोंको स्वीकार करते हुए अपने दर्शनकी रचना की है इसलिए योग दर्शनका दूसरा नाम "सांख्यप्रवचन" भी है।

ईश्वरके सम्बन्धमें पतञ्जलिने लिखा है कि क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल) आशय (वासना) के सम्बन्धसे रहित है। वह सर्वत्र है और कालकृत सीमासे बद्ध नहीं है। और पूर्व आचार्य्योंका भी ज्ञानदाता है।

क्लेश पांच तरहके होते हैं (१) अविद्या (मिथ्याज्ञान) (२) अस्मिता (अन्तःकरण और आत्मामें अभेदकी प्रतीति)

(३) राग (मोह, अनुराग) (४) द्वेष (घृणा, विराग) (५) अभिनिवेश (मृत्यु आदिका भय)

कर्म—दो प्रकारका है (१) शुभ (२) अशुभ ।

विपाक—कर्मफल तीन प्रकारके हैं (जन्म, आयु और भोग)

आशय—कर्मफलके अनुरूप वासना ।

ईश्वर नित्यमुक्त और आनन्दस्वरूप होनेसे इन क्लेशोंसे रहित है, परन्तु जीव इनमें ग्रस्त रहता है। पतञ्जलिने मुख्यतया यही बतलाया है कि जीव किस प्रकार इन क्लेशोंसे छूटकर मुक्त हो सकता है। उसी प्रकारका नाम योग है। योग चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको कहते हैं। चित्तकी ५ अवस्थायें हैं। (१) "क्षिप्त" जिसमें चित्तकी वृत्तियां अनेक सांसारिक विषयोंमें गमन करती हैं। (२) "मूढ" जिसमें चित्त कृत्याकृत्य को भूलकर मूर्खवत् होजाता है। (३) "विक्षिप्त" जिसमें चित्त व्याकुल और अशान्त रहता है। (४) "एकाग्र" जिसमें चित्तकी वृत्तियां अनेक ओरसे खिंचकर एक ओर लग जाती हैं (५) "निरुद्ध" जिसमें चित्तकी वृत्तियां चेष्टा रहित हो जाती हैं। प्रथम तीन अवस्थाओंमें योग नहीं हो सकता, अन्तिम दो अवस्थाओंमें योग हो सकता है। चित्तकी वृत्तियोंके एकाग्र होनेसे जो योग होता है उसे सम्प्रज्ञात और निरुद्ध होनेसे हुए योगको असम्प्रज्ञात योग कहते हैं।

चित्तकी वृत्ति ५ प्रकारकी होती है:—(१) प्रमाण, (२) विपर्य्य (३) विकल्प (४) निद्रा, (५) स्मृति। इनमेंसे

प्रमाण तीन प्रकारका है प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शब्द प्रमाण)। "विपर्य्यय" मिथ्याज्ञानको कहते है। विषयके न होने पर शब्द ज्ञानके प्रभावसे जो वृत्ति उत्पन्न होती है उसका नाम विकल्प है। (जैसे आकाशकुसुम इत्यादि। निद्रा सुषुप्तिको कहते हैं। अनुभूत विषयका स्मरण स्मृति है।

चित्तके साथ जीवात्माका संयोग होनेसे वृत्तियोंका उदय होता है। पुरुष (जीव) स्वच्छ और निर्मल है। जिस प्रकार स्फटिक स्वच्छ होता है। परन्तु समीपवर्ती वस्तुके रूपको ग्रहण करके तदाकार हो जाता है, इसी प्रकार निर्मल जीवमें जब चित्तवृत्तियां प्रतिबिम्बित होती हैं तब उनके साथ सारूप्य लाभ करके अपनेको दुःखी सुखी मान लेता है वास्तवमें जीव दुःखसुखादि द्वन्दोंसे रहित है। दुखी सुखी होना वृत्तिका उपराग मात्र है। योग द्वारा जब इन वृत्तियोंका निरोध हो जाता है, तो फिर जीव अपने स्वच्छ स्वरूपमें अवस्थित होजाता है। चित्तकी वृत्तियोंका निरोधः—

(१) अभ्यास और वैराग्यसे होता है। इनके द्वारा योगीको श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, एकाग्रता और विवेककी सहायतासे प्रथम सम्प्रज्ञात समाधिकी सिद्धि होती है। और बादको चित्तके पूर्णतया निरुद्ध होजाने पर असम्प्रज्ञात योगकी सिद्धि होती है।

(२) ईश्वरकी भक्तिसे भी समाधिकी सिद्धि होती है।

सुखी दुःखी पुण्यात्मा और पापीके विषयमें क्रम पूर्वक मैत्री करुणा, मुदिता और उपेक्षाकी भावनासे भी चित्त शान्त होता

है। और इस प्रकार चित्तमें एकाग्रता होकर स्थैर्य्यकी प्राप्ति होती है।

(३) प्राणायामसे भी चित्त स्थिर होता है।

(४) अथवा इन्द्रियविशेषमें धारणा करनेसे भी चित्त स्थिर होता है। अर्थात् नासिकाके अग्रभाग जिह्वामूल, नेत्रादि में धारण करनेसे अलौकिक गन्ध, रस और रूपादिका अनुभव होता है, और यही दिव्य विषयज्ञान योगीके चित्तको स्थिर कर देता है।

(५) हृदयपुण्डरीकमें धारण करनेसे एक अपूर्व ज्योति का प्रकाश होता है उससे भी चित्त स्थिर हो जाता है।

(६) अथवा वीतराग (विषयविरक्त=निष्काम) महात्मा का ध्यान भी चित्त स्थैर्य्य का एक उपाय है।

(७) अथवा स्वप्न ज्ञान वा निद्रा का अवलम्बन करनेसे भी चित्त स्थिर होजाता है।

(८) अथवा अभिमत विषयका ध्यान करनेसे भी चित्त ठहर जाता है। साधनावस्थामें अभ्यास करनेसे योगीको कई अलौकिक शक्तियां प्राप्त होती हैं, उन्हींको विभूति (सिद्धि) कहते हैं। तृतीय पादमें इन सिद्धियोंका वर्णन है, परन्तु समाधिरहित योगीके लिये यह सब विभूतियां ज्ञात होती हैं, परन्तु समाधियुक्त योगीके लिये यह केवल बाधक हैं। योगके ८ अङ्ग हैं:—

(I) यम=((१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४)

ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह, (भयरहित)

(२) नियम=((१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर प्रणिधान।

(३) आसन—सुखसे बैठनेका नाम आसन है।

(४) प्राणायाम—प्राणोंका संयम प्राणायाम है।

(५) प्रत्याहार—इन्द्रिय निरोधका नाम है।

(६) धारणा—एकदेशमें चित्तके ठहरानेको कहते हैं।

(७) ध्यान—चित्तवृत्तिका एकाग्रप्रवाह ध्यान है।

(८) समाधि—ध्यान परिपक्व होकर जब ध्येयाकारमें परिणत होजाता है, और चित्तवृत्ति होते हुये भी जब न होने की तरह भासमान होती है, तब उस अवस्थाको समाधि कहते हैं।

समाधि दो प्रकारकी होती है, (१) सबीज (२) और निर्बीज।

(१) सबीज समाधिमें चित्तका आलम्ब रहता है, उस अवस्थामें चित्तकी सूक्ष्म सात्विक वृत्तिका तिरोभाव नहीं होता, इसीलिये इस समाधिको "सम्प्रज्ञात" कहते हैं।

(२) निर्बीज समाधिमें चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियोंका तिरोभाव होता है। केवल संस्कार शेष रह जाता है इसी लिये इस समाधिको "असम्प्रज्ञात" कहते हैं।

सबीज समाधि ४ प्रकारकी होती है (१) सवितर्क (२) निर्वितर्क (३) सविचार (४) और निर्विचार। इन सबके निरुद्ध हो जानेसे निर्जीव समाधिकी सिद्धि होती है। इसीको

कैवल्य सिद्धि कहते हैं, यही मोक्ष कहलाती है। यही पातञ्जल दर्शनका चरमलक्ष्य है, और यही जीवात्माकी अन्तिम गति है।

जैमिनि का मत।

जैमिनि ने अपने रचे पूर्व मीमांसा दर्शन में अपना मत इस प्रकार दिया है:—"वेद नित्य निर्भ्रान्त और अपौरुषेय (ईश्वरीय ज्ञान) हैं। वेद को किसी मनुष्य ने नहीं रचा, ऋषि केवल मन्त्र द्रष्टा हैं। वेद नित्य और स्वतः सिद्ध प्रमाण हैं। वेद जीव के लिये धर्म प्रतिपादन करते हैं वह धर्म यज्ञ है, यज्ञ हीसे जीव अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है।"

'वेद में पांच प्रकार के वाक्य हैं' (१) विधि वाक्य जिससे कर्तव्यरूप अज्ञात विषय ज्ञात हों (२) मन्त्र जिनमें यज्ञ के उद्दिष्ट देवताओं के भाग देने आदिका विधान है और जो यज्ञ में उच्चारण किये जाते हैं।

(३) नामधेय = प्रतीकोंके द्वारा विधेय विषय का सङ्कोच करना।

(४) निषेध अर्थात् अकर्तव्य विधायक वाक्य।

(५) अर्थवाद अर्थात् विधि के प्रशंसक अथवा निषेधके निन्दक वाक्य।

वेद के देवता स्वतन्त्रसत्ता वाले व्यक्ति नहीं किन्तु मन्त्रात्मक हैं अर्थात् मन्त्र में शब्दोंका जो क्रम, विषयकी दृष्टिसे

* कुछेक व्यक्ति भ्रमवशात् पूर्वमीमांसामें ईश्वर विषय विवरण

रक्खा गया है वेही देवता हैं। मन्त्रमें शब्दोंके बदलने अथवा फेरफार करने और अशुद्ध उच्चारण आदिसे मन्त्र निष्फल हो जाते हैं"।

मीमांसाकार इस प्रकार जीवके कर्तव्योंका वेदकी व्याख्या पूर्ण वर्णनके द्वारा, विधान करते हुये उसकी स्वतन्त्रसत्ता स्वीकार करते हैं।

व्यासका मत।

व्यासका मत उनके रचे वेदान्त दर्शन, योगदर्शन भाष्य और महाभारतमें मिलता है। वेदान्त दर्शन हीको उत्तर मीमांसा

न होनेसे मीमांसाकार जैमिनिको निरीश्वरवादी समझ लेते हैं जैसे "विद्वोन्माद तरङ्गिणी" के रचयिताने मीमांसकोंको अनीश्वरवादी होना लिख डाला है अथवा म० म० महेशचन्द्र न्यायरत्न अपने सम्पादित मीमांसा दर्शनकी भूमिकामें लिखते हैं:—"But, though dealing so largely with the sacred scriptures of the Hindus and thus commanding a large share of their respect, oddly enough, it propounds a godless system of religion. The main drift of its arguments is to shew that, if bliss be the fruit of good works, the inter position of a Deity is simply superfluous." परन्तु ये हम लोगोंके विचार मीमांसाके नवीन ग्रन्थोंके आधार पर निर्मित हैं। जब जैमिनि वेदको अपौरुषेय कहता है तो किस प्रकार उसको अनीश्वरवादी कह सकते हैं। अपौरुषेयका अर्थ ईश्वर कृत ही समझा जा सकता है।

और भिक्षु* सूत्र कहते हैं † वेदान्त दर्शनमें प्रधानतः पांच विषयोंका वर्णन है :—

(१) जगत् सत्य है या मिथ्या ?

(२) जीव ब्रह्मसे भिन्न है या नहीं ?

(३) ब्रह्मका स्वरूप क्या है ?

(४) ब्रह्म प्राप्तिका उपाय क्या है ?

(५) ब्रह्म प्राप्तिके फल क्या हैं ?

वेदान्त दर्शनके टीकाकार मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं :—(१) अद्वैतवादी (२) द्वैतवादी। विशिष्टा-द्वैतवादियोंको द्वैतवादके ही अन्तर्गत समझना चाहिये। इन टीका-कारों ने अपने २ विचारानुकूल वेदान्त सूत्रों की टीकायें की हैं। उन्हीं सूत्रों को एकने द्वैत और दूसरेने अद्वैत परक समझा है। उपर्युक्त पांचों प्रश्नोंके उत्तर दोनों पक्षोंके टीकाकारों की, की हुई टीकाओं के अनुसार, दिये जाते हैं:—

श्री शङ्कराचार्य्य के उत्तर जिन्हें अद्वैतवाद का प्रतिनिधि समझना चाहिये, इस प्रकार हैं:—

(१) वेदान्तसूत्र १।१।२ तथा अन्यभी सूत्रोंके आधार पर शङ्कर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्मको प्रदर्शित करते हुये, जगत् (प्रकृति) की स्वतन्त्रसत्ता से इन्कार ही नहीं

* देखो पाणिनिकृत अष्टाध्यायी ॥ ४। ३। ११० ॥

† पश्चिमी विद्वान् वेदान्त दर्शनके रचयिता बादरायणको पराशर पुत्र कृष्ण द्वैपायनसे भिन्न मानते हैं। यह उनका भ्रम मात्र है।

करते किन्तु उसे असत्य, काल्पनिक, माया का विजृम्भणामात्र और मिथ्या बतलाते हैं और कहते हैं कि रज्जु में सांपकी तरह, सीपमें चांदीके सदृश, सूर्य किरणमें जलकी भान्ति जगत् मिथ्या है उसको सत्य समझना भ्रम मात्र है। परन्तु इन्हीं सूत्रोंके आधार पर द्वैतवादी अपनी टीकाओंमें जगत्का उपादान कारण प्रकृति और निमित्त कारण ब्रह्मको बतलाते हुए प्रकृतिको नित्य सिद्ध करते हैं और इस प्रकार जगत् मिथ्या कल्पित और असत्य नहीं किन्तु सत्य है।

(२) इसी प्रकार प्रकृतिकी तरह जीवकी स्वतन्त्र सत्तासे भी अद्वैतवादी इन्कारी हैं। उनका कहना है कि "जीवो ब्रह्मैव नापरः"। जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। "तत्वमसि" "अयमात्मा ब्रह्म" 'अहम्ब्रह्मास्मि' इत्यादि उपनिषद्वाक्योंको अपने पक्षका पोषक बतलाते हैं। अनेक वेदान्त सूत्रोंके भाष्यमें इसी प्रकारके विचार शङ्करने प्रदर्शित किए हैं।

परन्तु द्वैतवादी जीवकी स्वतन्त्र सत्ता मानते और उसे न ब्रह्म और न ब्रह्मका अंश समझते हैं, और उपर्युक्त वाक्योंको वे भी अपने पक्षका पोषक समझते हैं। उनका कहना है कि "तत्त्व मसि" (उससे तू है) का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मकी सत्तासे ही जीव प्रकट होता है।* दूसरे वाक्य "अयात्माब्रह्म" (यह आत्मा

---

* "तत्त्वमसि" वाक्यके अनेक अर्थ किए जाते हैं "वह तू है" अथवा "तत्त्वम्" (तत्त्व) है इत्यादि "तत्त्वमसि" का अर्थ 'उससे तू है' यह भी हो सकता था और ऐसा होनेसे यह वाक्य अद्वैत परक न

ब्रह्म है) में आत्मा और ब्रह्म दोनों शब्द ब्रह्मके ही लिए प्रयुक्त हुए हैं। जिस प्रकार सूर्य्यको सङ्केत करके कोई कहे कि यह प्रकाश पुञ्ज सूर्य्य है इसी प्रकार आत्मासे इस वाक्यमें ब्रह्मका सङ्केत करके उसे ब्रह्म बतलाया गया है, क्योंकि आत्मा, जीव और ब्रह्म दोनोंके लिए प्रयुक्त होता है। तीसरे वाक्य "अहम् ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूं) को वे जीवं ही का वचन बतलाते हैं। जब जीव समाधिस्थ होकर ईश्वरके प्रेममें इतना लीन हो जाता है कि ध्येयके सिवा ध्याता और ध्यान दोनोंके विचार उससे जानेसे रहते हैं तब वह ब्रह्मके सिवा कहीं कुछ भी नहीं देखता, उसे प्रत्येक वस्तुमें ब्रह्म ही ब्रह्म दिखलाई देता है "जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है" उसी समय वह अपनेमें भी ब्रह्म देखता और अनायास उपर्युक्त तथा और भी इसी आशयके वाक्योंका जिनका उपनिषदोंमें सङ्केत है, उच्चारण करने लगता है। माध्वाचार्य्य, रामानुजाचार्य्य आदि विद्वानोंके वेदान्त भाष्यमें जगह २ द्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद परक अर्थ वेदान्त सूत्रोंका किया हुआ मिलता है।

(२) ब्रह्मका स्वरूप अद्वैत मतमें समस्त विशेषणोंसे रहित निर्विकल्प, निरुपाधि और निर्गुण बतलाया जाता है। वह वचन लक्षण और निर्देश से अतीत है, बुद्धिसे अगोचर है, अज्ञेय है,

---

रहता इसलिए उपनिषदमें जो बहुत नवीन उपनिषद् है इस प्रकार ·[illegible] गया है:—

अमेय है, और अचिन्त्य है। परन्तु द्वैतवाद में ब्रह्मको सविशेषण और सगुण भी कहा जाता है, अर्थात् वह अजर, अमर, अविनाशी, निराकारादि गुणों के न होनेसे निर्गुण और न्यायकारी दयालु, सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापकादि होने से सगुण भी है। द्वैतवादी कहते हैं कि ब्रह्मको केवल गुण और विशेषण रहित मानने से उसकी कोई हस्तीही बाकी नहीं रहती। दोनों पक्ष वेदान्तके सूत्रों परही निर्भर किये जाते हैं।

(४) 'ब्रह्म प्राप्ति का उपाय क्या है':—इस प्रश्नका उत्तर अद्वैतवादकी ओरसे यह दिया जाता हैकि जीव वास्तवमें ब्रह्मही है परन्तु माया (अविद्या अथवा उपाधि) ग्रस्त होनेसे वह अपने को ब्रह्मसे भिन्न समझने लगता है; बस इस अविद्याका दूर कर देनाही एक मात्र ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है। दूसरी ओर द्वैतवादी योगदर्शन प्रदर्शित अष्टाङ्गयोगको ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं और वेदान्तदर्शन और उपनिषदोंमें भी इसका जगह २ सङ्केत पाये जानेके दावेदार हैं।

(५) "ब्रह्म प्राप्तिके फल क्या हैं":—अद्वैतवादमें ब्रह्मके साथ परमसाम्यही मुक्तिका लक्षण है और ब्रह्मके साथ ऐक्य ही मुक्तिका स्वरूप है क्योंकि इस वादके अनुसार "ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति"। और इस प्रकार जीवके ब्रह्म हो जानेसे उसके (निषेध परक) गुण भी उसे प्राप्त होते हैं। परन्तु द्वैतवादमें प्रकृतिको सत्, जीवको सत्चित् और ब्रह्मको सच्चिदानन्द कहा गया है, अतः जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिसे आनन्दकी प्राप्ति होती है इस प्रकार

जीव बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मको प्राप्त करके उसके आनन्दादि गुणोंका उपभोग करता है परन्तु फिर भी वह जीव ही रहता है ब्रह्म नहीं हो जाता।

इस प्रकार वेदान्तके सूत्रोंसे दो प्रकारके सिद्धान्त निकाले हुए देख जानेसे, स्वाभाविक रीतिसे प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि सूत्रोंके रचयिता बादरायण (व्यास) मुनिका वास्तविक सिद्धान्त क्या था। वे जीवको ईश्वरसे भिन्न अथवा अभिन्न मानते थे। इस प्रश्नका उत्तर, विवादास्पद वेदान्त सूत्रोंको छोड कर, व्यास मुनिकृत अन्य ग्रन्थोंके आधार पर सुगमतासे दिया जासकता है। ऊपर कहा जा चुका है कि व्यास मुनिने योग दर्शनका भाष्य भी किया है। योग दर्शनके रचयिता पतञ्जलि मुनिका मत दिखलाते हुए प्रकट किया गया है कि योगदर्शनमें जीव और ईश्वर दोनोंको भिन्न २ माना गया है। उसी योगका भाष्य करते हुए प्रारम्भसे अन्त तक व्यास मुनि इसी सिद्धान्त (द्वैतवाद) का समर्थन करते हैं। यदि व्यास अद्वैत वादी होते तो योगके भाष्यमें भी वे उसी प्रकारकी खींचा तानी करते जैसी उन (वेदान्त) के सूत्रोंके भाष्यमें शङ्कराचार्य्यजीने की है। परन्तु उन्होंने योगके भाष्यमें योगके २६ द्रव्यों (२४ प्राकृतिक+१जीव+१ ईश्वर) के सिद्धान्तकी पुष्टिकी है और इस प्रकार प्रकृति, जीव और ईश्वर तीनोंकी स्वतन्त्र और नित्य सत्ता स्वीकारकी है। इस लिए यह स्पष्ट है कि वेदान्त दर्शनमें भी उनका सिद्धान्त द्वैत परक ही माना जा सकता है।

दूसरा परिच्छेद

[१] चारवाकका मत ।

जड़वादका आविष्कार चारवाकसे भी कदाचित् पहले हो चुका था। चारवाकका मत है कि जो २ स्वाभाविक गुण हैं उन २ से द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं, कोई जगत्का कर्त्ता (ईश्वर) नहीं है। जीवकी भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। देहकी उत्पत्तिके साथ वह भी उत्पन्न हो जाता है और देहके नाशके साथ ही उस (जीव) का भी नाश हो जाता है। न कोई स्वर्ग है न कोई नरक और न कोई परलोकमें जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रमकी क्रिया फलदायक है। इसलिये जब तक जीवे तब तक सुखसे जीवे (जो घरमें पदार्थ न हों तो) ऋण लेकर चैन करे। (वह ऋण देना न पड़ेगा क्योंकि) भस्मीभूत हुये देहका पुनरागमन (पुनर्जन्म) न होगा (फिर किससे कौन मांगेगा और कौन देगा) जो लोग कहते हैं कि मृत्यु समय जीव निकल कर परलोकको जाता है, यह मिथ्या है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्बके मोहसे बद्ध होकर पुनः घरमें क्यों नहीं आ जाता * ।

---

* अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितः ॥ १ ॥
न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ २ ॥

(२) गौतम बुद्ध

बौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतमकी शिक्षा आत्माके सम्बन्ध में यद्यपि स्पष्ट नहीं तथापि उनके जीवन चरित्रमें ऐसी घटनाओंका उल्लेख मिलता है जिससे प्रकट होता है कि जीवात्मा की सत्ता और उसका अमरत्व उन्हें स्वीकृत था, उन घटनाओंमें से कुछेक का उल्लेख यहां किया जाता है:—

[१] बुद्धके अभिसम्बोधनकी बात उठाते हुये उनके जीवन चरित्रमें वर्णित है कि सम्प्रज्ञात और सबीज समाधि की प्राप्ति द्वारा उन्होंने सद्वृत्तिका ग्रहण और असत्‌का त्याग किया, और निर्बीज समाधिमें स्थित गौतमको बोध प्राप्त हुआ जिससे वे "जाति स्मर" हो गये, और सहस्रों जन्मोंकी बात उन्हें स्मरण हुई कि मैं अमुक जन्ममें अमुक योनिमें पड़ा था, वहां मैंने अमुक कर्म किया जिससे फिर मैं अमुक योनिको प्राप्त हुआ इत्यादि" ।........"वे (बुद्ध) अपने मनमें कहने लगे कि संसारमें लोग उत्पन्न होते हैं, जीते हैं, मरते हैं फिर ऊंच नीच गतिको प्राप्त होते हैं' ...."अब वे [बुद्ध] इन दुखोंका निदान सोचने लगे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जरा मरण दुःखादि

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ ३ ॥
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः ।
कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेह समाकुलः ॥ ४ ॥

(चारवाक)

का कारण जन्म है......जन्मका कारण धर्म अधर्म पुण्य पाप है जिसे "भव" कहते हैं...."भवकी" उत्पत्ति उपादान अर्थात् कर्मसे होती है.......उपादानका हेतु तृष्णा है.......वेदना ही इस तृष्णाका कारण है.......वेदनाकी उत्पत्तिका हेतु उन्हें अन्वेषण करनेसे स्पर्श [बौद्ध दर्शनोंमें इन्द्रियोंके विषयको स्पर्श कहते हैं] ही प्रतीत हुआ......स्पर्शादिका कारण षडायतन अर्थात् स्पर्शादिके प्रधान आधार भूत श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन ही हैं, इस षडायतनका कारण विचार पूर्वक नामरूप फिर नामरूपका कारण विज्ञान, विज्ञानका कारण संस्कार और संस्कारका कारण अविद्या उन्होंने उत्तरोत्तर निर्धारित किया"। *

[२] काशीको प्रस्थान करते हुये "अजपाल" वृक्षके नीचे बैठकर सोचने लगे कि "मैंने अनेक जन्म तपश्चर्या करके इस अपूर्व विशुद्ध बोधिज्ञानको प्राप्त किया है † ।

[३] बुद्ध काशीसे उरूवेलाकी ओर चले और एक जंगल [कापास्यवन] में ठहरे । यहां ३० भद्रवर्गीय कुमार एक वेश्या को, जो उन्हें शराबके नशेमें छोड़ और उनका जो कुछ सामान हाथ लगा लेकर चलती बनी थी, ढूंढ़ते हुये बुद्धके पास गये, और उनसे पूछने लगे कि भगवन् आपने किसी स्त्रीको जाते

---

* नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रकाशित बौद्धका जीवन चरित्र पृष्ठ ९२, ९३ ।

† " " पृष्ट १०१

देखा है? उत्तरमें बुद्धने पूछा कि तुम स्त्रीको तो ढूंढ रहे हो "क्या तुमने कभी अपनी आत्माको भी ढूंढ़नेका प्रयत्न किया है...........तुम स्त्री जिज्ञासाको अच्छा समझते हो वा आत्म-जिज्ञासाको?"........उन्होंने उत्तर दिया कि आत्म जिज्ञासाको, इसपर गौतमने कहा कि "यदि आत्माकी जिज्ञासा करना चाहते हो तो आओ मैं तुम्हें बताऊंगा"।

"गौतमने उनसे दान और शीलकी महिमा वर्णन कर स्वर्गकी कथा कही फिर उन्होंने कामोंकी अनित्यताका वर्णन किया और मुक्तिकी प्रशंसा की फिर निष्काम कर्मका वर्णन करते हुये दुःखसमुदाय, निरोध और मार्गका उपदेश किया"*

[४] बुद्धने अपने भिक्षुओंको अपने ३७ मन्तव्योंका उपदेश करते हुये कहा कि "मैंने अपने आपको अपना शरण बनाया है अर्थात मैं अपनी आत्माके वास्तविक रूपमें स्थिर हो गया हूं" † यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणोंसे प्रतीत होता है कि बुद्धको आत्माकी सत्ता स्वीकृत थी और उसका अमरत्व भी। अन्यथा उनके अनेक जन्मोंकी सम्भावना किस प्रकार हो सकती थी? परन्तु बौद्धधर्मके पुस्तकोंके ‡ अवगाहनसे यह स्पष्ट हो जाता

* बुद्धका जीवन चरित्र पृष्ट १२१

† ,, २१९, २२०

‡ बौद्धोंका, जीवको सत्ताका ज्ञानधारा रूपमें होनेका विश्वास, ह्यूमकी ज्ञानधारा (Stream of consciousness) का पूर्वरूप था उसका उत्तररूप ह्यूमके विचारके रूपमें है।

है कि वे जीवको केवल ज्ञानधारा मानते थे और निर्वाण हो जाने पर उसे नाशवान मानते थे। अवश्य उनकी मृत्युके कुछ वर्ष बाद ही यह प्रश्न उठने पर कि तथागत (बुद्ध) का आत्मा अवशेष है या नष्ट हो गया, बौद्धोंमें एक फिर्का ऐसा हो गया कि जो यह मानने लगा कि बुद्धका आत्मा नष्ट नहीं हुआ किन्तु अवशिष्ट है दूसरे शब्दोंमें उस मतके लोगोंने आत्माकी सत्ता (अमरत्वके साथ) स्वीकार कर ली।

(३) जैनमत और आत्मा

सात तत्त्वोंमें से एक जीव* है और चेतनां लक्षण वाला है। जीव ज्ञानादिके भेदसे अनेक प्रकारका है यथा ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना।

निमाङ्कित पांच भाव जीवके † निज तत्त्व हैं:—

[१] औपशमिक—अर्थात् कर्मकी निज शक्तिका, कारण वशात् उदय न होना उपशम है। जिस प्रकार निर्मली [औषधि विशेष] से जलके मैलका उपशम होना।

[२] क्षायिक—जलसे पङ्क [मैलेपन] का अत्यन्ताभाव क्षय है।

[३] मिश्र—उपशम और क्षय दोनोंका होना मिश्र है।

[४] औदयिक—द्रव्यादि निमित्तसे कर्म फलका उदय।

---

* सर्वार्थ सिद्धि (तत्त्वार्थ वृत्ति) अध्याय १ सूत्र ४

† ,, ,, ,, २ सूत्र १

[५] पारिणामिक--द्रव्यका आत्मलाभ अर्थात् निज स्वरूपकी प्राप्ति जिससे हो वह परिणाम है, जैसे स्वर्णके पीतादि गुण, कङ्कण कुण्डलादि पर्य्याय हैं, इसी प्रकार परिणामको जानो।

तीसरा परिच्छेद

(१) गौड़पादाचार्य्य ।

माण्डूक्योपनिषद् पर जो कारिका लिखी है उसमें गौडपादजीने अपना मत प्रकट करनेके लिए उसके ४ विभाग किए हैं। पहलेमें, जिसका शीर्षक उन्होंने "आगमार्थाविष्करण" दिया है, उक्त उपनिषद्का भाव दिखलाया है।

दूसरे [वैतथ्य नामक] में जगत्के मिथ्या होनेका प्रकरण है अर्थात् समस्त दृश्य पदार्थ स्वप्नवत् मिथ्या हैं। हेतु उनका [स्वप्न दृष्टान्तके सिवा] यह है कि जो पहले नहीं था और न पीछे रहेगा वह जलके बुलबुलेके समान है उसकी वर्तमान सत्ता भी मिथ्या है।

तीसरा प्रकरण जीवके मिथ्या होनेका है। वे कहते हैं जैसे रज्जुका निश्चय हो जाने पर सर्पका भ्रम छूट जाता है उसी प्रकार परमात्माके जान लेने पर जीवात्मा होनेका भ्रम छूट जाता है। मनुष्यादि प्राणियोंमें यदि वास्तवमें जीव नहीं है तो कौन देखता, सुनता, करता, धरता है। इसका समाधान आचार्य्य इस प्रकार करते हैं कि ब्रह्मके दो भेद हैं, एक जन्म

लेकर संसारमें आनेवाला ब्रह्म, और दूसरा अजन्मा अर्थात् जन्म मरणसे रहित। उनका कथन है कि उत्पन्न होने वाला ब्रह्म न उत्पन्न होने वाले ब्रह्मकी उपासना करता है, होने वाले ब्रह्म ही की संज्ञा जीव है। और यह कि उत्पन्न होने वाला ब्रह्म निम्न श्रेणीका और अनुत्पन्न उच्च श्रेणीका है। जिस प्रकार घटाकाश पटाकाश आदि भेद कल्पित हैं वास्तवमें आकाश एक ही है, इसी प्रकार ब्रह्मके भेद भी कल्पित हैं।

चौथे प्रकरणका नाम "अलात शान्ति" है। इस विभागमें गौडपादजीने न्याय, सांख्य आदि दर्शनोंमें विरोध दिखला कर उनका खण्डन किया है और अपना सिद्धान्त यह दिखलाया है कि न किसी वस्तु या संसारकी उत्पत्ति होती है न प्रलय होती है न कोई बद्ध, न कोई दुखी, न दुखसे बचनेका कोई उपाय तथा न कोई मुक्त है न कोई मुक्तिका चाहने वाला और न कोई चाहता है। कर्म, धर्म सब व्यर्थ हैं। सबका अभाव समझ लेना ही परमार्थकी सिद्धि है। गौडपादके मतमें संसारमें जो कुछ मरना, जीना, हंसना, रोना आदि दिखलाई देता है वह सब इन्द्र जाली (बाजीगर) के तमाशेके सदृश है, इनकी वास्तविकता कुछ नहीं। गौडपादाचार्य्यके जगत् प्रसिद्ध शिष्य शङ्कराचार्य्यने उनके मतका खूब विस्तार किया था।

[२] शङ्कराचार्य्य का मत।

अद्वैतवादके पोषक श्रीशङ्कराचार्य्य जी जीवकी स्वतन्त्र सत्ता

नहीं मानते। उनका मत है कि "जीवोब्रह्मैवनापरः" अर्थात् जीव ब्रह्मसे पृथक् नहीं है किन्तु ब्रह्मका ही अंश है, जिस प्रकार अग्निसे चिनगारियां निकलती हैं उसी प्रकार ब्रह्मसे जीव निकला है।

(ब्रह्म) वाक्य और मनसे अतीत, विषय का विरोधी, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभावही जीवरूप में अवस्थित है, "तत्त्वमसि" "अयमात्मा ब्रह्म" "सोऽहम्" "अहंब्रह्मास्मि" अर्थात् "तू वह है" "यह आत्मा ब्रह्म है" "मैं वह हूं" "मैं ब्रह्म हूं" इत्यादि वाक्य उपनिषदोंके वाक्यों के, जो भिन्न२ प्रकरणों में प्रयुक्त हुये हैं, छोटे २ टुकड़े हैं। पूर्ण वाक्यों के साथ मिलकर ये वाक्य वे अर्थ देते हैं या नहीं, जिन अर्थोंमें शङ्कर अथवा उनके अनुयायियों ने समझा है, इस विषयमें मत भेद है। अद्वैतवादके विपक्षियोंका मत यह है कि ये वाक्य अपनी असली जगह पर प्रकरणके अनुकूल अद्वैतवादका प्रतिपादन नहीं करते, परन्तु शङ्करको यही अर्थ अभिमत हैं।

संसारमें हम जीवोंको सुखी देखते हैं दुःखी देखते हैं अनेक आपत्तियोंमें ग्रस्त पाते हैं, यदि जीव ब्रह्मांश और शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है तो फिर ये क्लेश क्यों? इसका उत्तर शङ्कराचार्य्य यह देते हैं कि शुद्ध, बुद्ध मुक्त होनेपर भी जीव, अविद्याके कारण देह आदि उपाधि के धर्मसे सङ्क्रामित होजाता है। सुख दुःख, काम क्रोध, रोग शोक यहसब देह और मनके धर्म हैं, जीवके नहीं; किन्तु जीव देहके संयोगके कारण अपने को दुखी सुखी रोगी

और शोकी समझता है, अनादि माया (अविद्या) के कारण सोया हुआ जीव जब जागता है तब वह जानता है कि वह स्वयं ही जन्महीन, निद्राहीन, स्वप्नहीन अद्वैत ब्रह्म है* ।

अच्छा तो वह (जीव) बन्धनका अनुभव क्यों करता है, गौडपादाचार्य्य के शब्दोंमें शङ्करका उत्तर यह है कि यह बन्धन, जीवकी कल्पना मात्र है वास्तविक बन्धन नहीं †

शङ्करके मतमें जीवके लिये (क्योंकि वह ब्रह्मका अंश है) मुक्ति साध्य वस्तु नहीं, किन्तु सिद्ध वस्तु है। जब तक अज्ञान रहता है जीव अपनेको मुक्त नहीं समझता, अज्ञान दूर होने पर वह अपनेको मुक्त समझने लगता है। इसी विषयको समझानेके लिये एक उदाहरण बालक और उसके गलेके हारसे सम्बन्धित ("कण्ठचामीकरवत्") देते हैं कि बालकने भ्रमसे अपने हार को खोया हुआ समझ लिया था और उसे ढूंढता फिरता था, परन्तु जब लोगोंने बतलाया कि हार तो तेरे गलेमें पड़ा है तब उसका भ्रम दूर हुआ। इसी प्रकार जीव भी अविद्याग्रस्त अपनेको बद्ध समझता है ज्ञान होजाने पर मुक्त समझने लगता है।

शङ्करको न केवल जीवकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकृत नहीं है किन्तु वह प्रकृति की सत्तासे भी इन्कारी है, इस विषय में कि

---

* अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥ (माण्डूक्य कारिका)

† न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

यह प्राकृतिक जगत् जो प्रति समय हमारे सम्मुख है और हमें स्पष्ट रीतिसे उसमें स्थित प्रत्येक वस्तु दिखलाई देती है, शङ्कर का कहना है कि यह जगत् मिथ्या है वास्तवमें इसकी कोई सत्ता नहीं है । इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये एक उदाहरण दिया जाता है कि जिस प्रकार रस्सीमें सांप और सीपमें चांदीका भ्रम होजाता है अथवा जिस तरह सूर्य्यकी किरणोंमें मरीचिका-का भ्रम होता है उसी तरह ब्रह्ममें जगत्का भ्रम होता है । यह जो कुछ दिखलाई देता है सूर्य्य हो या चन्द्रमा, पृथ्वी हो या अन्य नक्षत्र, पहाड हो या नदी मनुष्यके शरीर हों अथवा पशु पक्षियोंके, ये सब कुछ भ्रम ही भ्रम है । इनमें वास्तविकता कुछ नहीं है । इस सब भ्रमको दूर करने और एक मात्र ब्रह्मको प्राणी और अप्राणी सभीका, "अभिन्निमित्तोपादानकारण" माननेसे जीव ब्रह्म हो जाता है और फिर कोई क्लेश बाकी नहीं रहता ।

[३] श्रीरामानुजाचार्य्यका मत ।

श्री रामानुजाचार्य्य विशिष्टाद्वैतवादके पोषक हैं । वे ब्रह्मको "निखिल--हेय--प्रत्यनीक" (सब दोषोंसे रहित) और "कल्याण गुणगणाकर" (कल्याण गुणोंका आकर) मानते हैं । उनका मत है कि ब्रह्मही जगत्का उपादान, कर्ता और अन्तर्यामी रूपसे जीवोंका नियामक है * । रामानुजके मतमें ईश्वर,

* वासुदेवः परंब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः । भुवनानामुपादानं कर्त्ता जीवनियामकः ॥

जीव और जड ये तीन पदार्थ हैं। "द्रव्यं द्वेधा विभक्तं जड मजडमिति........तत्र जीवेश भेदात्" अर्थात् द्रव्य दो प्रकारका है, जड और अजड (चेतन)। अजड (चेतन) में भी दो भेद हैं, जीव और ईश्वर। इनका कार्य विभाग इस प्रकार है:—चित् [जीव] भोक्ता, अचित् [प्रकृति] भोग्य और ईश्वर नियामक * "पुरुष प्रकृति और परमेश्वर ब्रह्म हीके ये तीन भाव हैं" † प्रकृति और जीव स्वतन्त्र पदार्थ होने पर भी रामानुजके मतानुसार वे बिल्कुल ईश्वराधीन हैं इसीलिए वह उन्हें [जीव और प्रकृति दोनोंको) ब्रह्मका शरीर बतलाते हैं। ब्रह्मको जो "एकमेवाद्विती-यम्" उपनिषदोंमें कहा गया है रामानुजके मतानुसार इसका तात्पर्य यह है कि प्रलयकालमें जब प्रकृति और पुरुष [जीव] नाम रूपके भेदसे रहित होकर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं उस समय अव्याकृत अवस्थामें वह ब्रह्म "एकमेवाद्वितीयम्" है। इसी वादको स्पष्ट करनेके लिए रामानुज ब्रह्मकी दो अवस्थाएं बतलाते हैं, [१] कारणावस्था और [२] कार्य्यावस्था। प्रलय कालमें जब जीव और जड जगत् ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं जिस समय उस सूक्ष्म दशामें उनके नाम रूपका विभाग मिट जाता है वही ब्रह्मकी कारणावस्था है। और सृष्टिमें जिस समय वे

---

* ईश्वरः चिदचिच्चेति पदार्थत्रितयं हरिः। ईश्वरश्चित् इत्युक्तो जीवो दृश्यमचित् पुनरिति ॥

† "भोक्ता जीवः भोग्यमितरं सर्वप्रेरिता अन्तर्यामी परमेश्वर एतत् त्रिविधप्रोक्तं ब्रह्मैव इति"

चित् [जीव] और जड [प्रकृति] रूपमें विभक्त होकर व्यक्त स्थूल अवस्थामें होते हैं वही ब्रह्मकी कार्यावस्था है । जगत्का ब्रह्ममें लीन होजाना ही प्रलय कहलाता है । ब्रह्मको जीव और प्रकृति का कारण बतलाने पर भी रामानुजको जीव ब्रह्मकी अभिन्नता अभिमत नहीं है । उनका कहना है "देह और जीव जिस तरह एक नहीं हो सकते, जीव और ब्रह्म भी उसी तरह एक नहीं हो सकते * कारणावस्थामें जीव ब्रह्ममें लीन हो जाता है इससे रामानुज जीवको नष्ट हुआ नहीं समझते किन्तु उस [जीव] को नित्य बतलाते हैं । और उसे अणु [एक देशी] भी मानते हैं इसलिए उन्होंने जीवका बहुत संख्यामें होना भी स्वीकार किया है । जीवकी मुक्ति होती हैं और कर्म [अविद्या] और "भक्ति रूपापन्नध्यान" [विद्या] इन दोनोंके समुच्चयसे होती है । ब्रह्मोपासना मुक्तिका साधन है ।

[४] श्री माध्वाचार्य्यका मत ।
[जन्म संवत् १२५४ वि०]

इनका नाम श्री आनन्द तीर्थ था परन्तु प्रस्थानत्रयी [[१] उपनिषद्+[२] वेदान्त [३] गीता] के भाष्य में इनका नाम माध्वाचार्य्य दिया गया है । यह शुद्ध द्वैतवादी थे। इनका मत जो इनके उपर्युक्त भाष्योंसे पाया जाता है, यह है कि ईश्वर

* देखो वेदान्त दर्शन १ । १ । १ पर श्री भाष्य (सर्व दर्शन संग्रह)

और जीवको कुछ अंशोंमें एक और कुछ अंशोंमें भिन्न मानना परस्पर विरुद्ध और असम्बद्ध बात है। इसलिए दोनों [ईश्वर और जीव] को सदैव भिन्न मानना चाहिए। इनमें पूर्ण अथवा अपूर्ण रीतिसे भी एकता नहीं हो सकती। परिणाम यह है कि ईश्वर और जीव दोनों पृथक्, स्वतन्त्र और नित्य सत्ता रखते हैं।

[५] श्री वल्लभाचार्य्यका मत।

[जन्म सम्वत् १५२६ वि०]

जीव और ईश्वर सम्बन्धी इनका मत, द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत सबसे पृथक् है। इनका मत है कि मायारहित शुद्ध जीव और ईश्वर एक ही वस्तु है, दो नहीं। परन्तु फिर भी शङ्कराचार्य्य प्रचारित अद्वैतवाद, इनके मतमें ठीक नहीं है। जीवको वल्लभाचार्य्य अग्निकी चिनगारीके सदृश ईश्वरका अंश मानते हैं, और जगत्को मिथ्या नहीं किन्तु सत्य मानते हैं। यही इनका अन्तिम मत इस पन्थको अद्वैतवादसे पृथक् करता है। इनका सविस्तर मत गीता सम्बन्धी तत्त्वदीपिका आदिमें मिलता है।

[६] श्री निम्बार्काचार्य्य का मत।

[सम्वत् १२१९ वि०]

श्री निम्बार्काचार्य्यका मत भी वेदान्त और गीता पर आश्रित है और श्री केशवभट्टने गीताकी तत्त्वप्रकाशिका टीका लिखकर सिद्ध किया है कि श्री निम्बार्कका मत ही गीताका वास्तविक मत है। जीव, ईश्वर और जगत्के सम्बन्धमें इनका मत यह था

कि ये तीनों परस्पर भिन्न हैं परन्तु जीव और जगत् का व्यापार और अस्तित्व ईश्वरकी इच्छा पर निर्भर है और परमेश्वर हीमें जीव और जगत्के सूक्ष्म तत्त्व रहते हैं। यही इनके मतका सार इन [निम्बार्क] की की हुई वेदान्तकी टीकासे भी प्रकट होता है।

चौथा परिच्छेद ।

[वेद और प्राचीन ऋषियोंका मत]

भारतीय ऋषियोंकी शिक्षा, जिसका आधार साङ्गोपाङ्ग चार वेद (ऋक्, यजु, साम और अथर्व) हैं, इस प्रकार हैः—

ईश्वर, जीव और प्रकृति (जगत्का कारण) तीनों नित्य हैं *। इनमेंसे ईश्वर अपने आधीन जीव और प्रकृतिके द्वारा जगत् रचता है। नियत अवधि तक, जगत् विकास और ह्रासके नियमोंसे नियमित होकर, स्थित रहता तत्पश्चात् प्रलयको प्राप्त हो जाता है। प्रलयावस्था समाप्त होने पर पुनः जगत्की रचना होती और उपर्युक्त भान्ति नियत अवधिके बाद पुनः प्रलयको प्राप्त होता है। इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका क्रम भी दिन रातके सदृश, नित्य है और अनादिकालसे इसी प्रकार चला आ रहा है और इसी प्रकार भविष्यत्में अनन्त काल तक भीचला जाता रहेगा † जीवात्मा कर्म करनेमें स्वतन्त्र परन्तु फल भोगनेमें परतन्त्र है। कर्मकर्ता जीव है और फलदाता ईश्वर

* ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १६४, मन्त्र २०

† ,, १० ,, १९० ,, ३

है। जीवात्मा सकाम कर्म करते हुए आवागमनके चक्रमें रहता है। निष्काम कर्म द्वारा आवागमनके चक्रसे छूट कर नियत अवधि * के लिए मोक्षको प्राप्त होता है। अवधि समाप्त होने पर पुनः संसारमें आता और अमैथुनी सृष्टिमें उत्पन्न होकर फिर यथा कर्म और यथा ज्ञान भिन्न २ योनियोंको प्राप्त होता है †

योनियां स्थिर हैं। विकास द्वारा एक योनिसे दूसरी योनि उत्पन्न नहीं होती किन्तु पृथक् २ योनियोंके अन्तर्गत विकास और ह्रास सिद्धान्त लागू होते हैं। इस प्रकार ईश्वर और जीव दोनों अप्राकृतिक, जगत्के कारण और कार्य दोनों से पृथक् हैं, और स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। ईश्वर जगत्का निमित्त और प्रकृति जगत्का उपादान कारण है। जीवको जब तक प्राकृतिक शरीर नहीं दिया जाता उस समय तक किसी प्रकारका कोई कर्म नहीं कर सकता।

शरीरके तीन भेद

शरीर तीन हैं (१) कारण-शरीर (२) सूक्ष्म शरीर (३) और स्थूल-शरीर। इनमेंसे स्थूल शरीर पांच स्थूल भूतोंसे बनता है और वह यही हाथ पांव वाला दृश्य शरीर है। सूक्ष्म शरीर १७ द्रव्योंका समुदाय है वे १७ द्रव्य ये हैं:—५ प्राण+५ ज्ञानेन्द्रिय+५सूक्ष्म भूत (तन्मात्रा)+ मन+और बुद्धि। तीसरा कारण-शरीर प्रकृति रूप होनेसे सूक्ष्म

* मोक्षकी अवधि ८अरब ६४ क्रोड़ वर्ष अर्थात् एक बार सृष्टि और प्रलयकी स्थिति के योगको ३६००० में गुणा करनेसे प्राप्त हो सकती है।

† कठोपनिषद् ५। ७

शरीरसे भी सूक्ष्म होता है। इनको एक चित्र द्वारा, प्रदर्शित किया जाता है:—
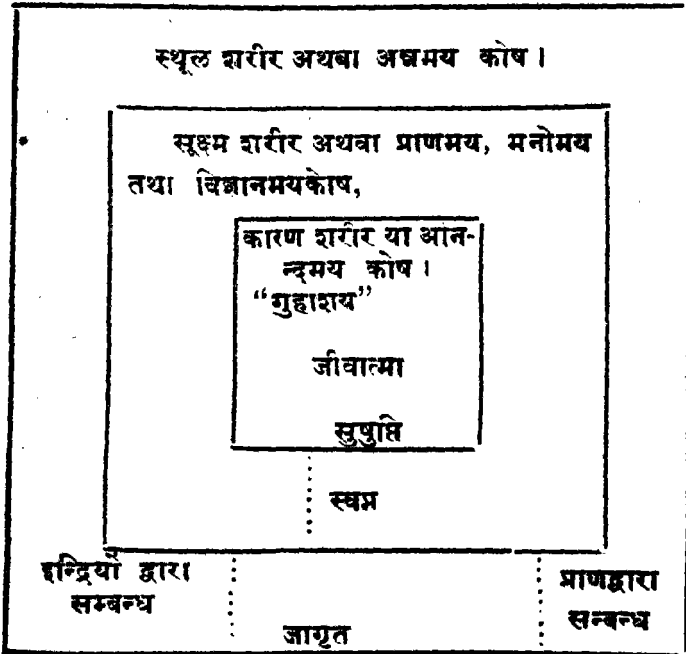
जीवात्मा शरीरके मध्य गुहाशय (हृदयाकाश) में रहता है और परिच्छिन्न (एक देशी) होते हुए भी समस्त शरीर पर अधिकार रखता है। मृत्यु होने पर केवल स्थूल शरीर नष्ट होता सूक्ष्म और कारण दोनों शरीर जीवके साथ, स्थूल शरीरसे निकल जाते हैं और जीवात्माके साथ बराबर उस समय तक बने रहते हैं जब तक वह मोक्षको नहीं प्राप्त होता।

अवस्था के तीन भेद

अवस्थायें तीन हैं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जीवात्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान और कर्म (प्रयत्न) हैं। जब जीव शारीरिक साधनों के द्वारा वाह्य जगत्में कार्य्य करता है तब वह वहिर्मुख वृत्ति वाला होता है और जब स्वयं अपने स्वरूप का चिन्तन करता है तब उसकी अन्तर्मुख वृत्ति होती है, वहिर्मुख वृत्ति होने पर जीव बुद्धि के माध्यम से मन को प्रेरित करता, मन इन्द्रियों को प्रेरित करता और तब इन्द्रियां सांसारिक विषयोंको ग्रहण करती हैं। इस प्रकार विषयों की ग्रहणावस्था का नाम जाग्रत् अवस्था है। परन्तु जब इस लड़ीकी एक लड़ टूट जाती है अर्थात् मन इन्द्रियों को प्रेरित न करके स्वयं सङ्कल्पविकल्पमय होता है तब उस अवस्था को स्वप्नावस्था कहते हैं; परन्तु जब एक लडी और भी टूट जाती है और मनका कार्य्य भी बन्द रहता है और स्थूल शरीरकी भान्ति मनके द्वारा सूक्ष्म शरीर भी निष्क्रिय रहता है तब उस अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। इस सबका तात्पर्य्य यह है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के सम्बन्ध टूटनेसे सुषुप्ति अवस्था प्राप्त होती है। एक नियम जो इन अवस्थाओंके विच्छेद होनेसे निकलता है वह यह है कि ज्यों २ ये सम्बन्ध अधिकता से टूटते जाते हैं प्राणी की सुखवृद्धि होती जाती है, अर्थात् जब मनुष्य जाग्रत् अवस्था में रहता हुआ सांसारिक धन्धों में व्यग्र रहता है उसके हृदयको बहुत थोड़ी मात्रा में शान्ति प्राप्त होती है परन्तु जब स्थूल शरीर का सम्बन्ध टूट जाता और प्राणी स्वप्नावस्था

में होता है तब शान्तिकी मात्रा कुछ बढ़ जाती है और पूरी मात्रामें शान्ति उस समय प्राप्त होती है जब सूक्ष्म और कारण शरीर का भी सम्बन्ध टूट जाता और मनुष्य सुषुप्ति (गाढ़निद्रा) में होता है।

मृत्यु क्या है और क्या वह दुःखप्रद है?

सम्बन्ध विच्छेदसे शान्ति प्राप्त होनेके नियम को लक्ष्य में रखते हुये प्राण द्वारा जो स्थूल शरीर के साथ जीवात्माका (सूक्ष्म शरीर द्वारा) सम्बन्ध है उसके विच्छेद से दुःख प्राप्त होगा यह कल्पना भी नहीं की जासकती। सूक्ष्म शरीरों का प्राण द्वारा स्थूल शरीर से जो सम्बन्ध है उसीको जीवन और इसी सम्बन्ध के विच्छेद का नाम मृत्यु है; फिर यह सम्बन्ध विच्छेद भयावना नहीं हो सकता इसी लिये मृत्युसे डरना अनुचित और वृथा है। मृत्यु मनुष्यको शान्ति देकर पुनः काम करनेके योग्य बना देती है। जिस प्रकार दिनके बाद रात्रि प्राणियों को, और सृष्टिके बाद प्रलय, परमाणुओं को आराम देनेके लिये आती हैं उसी प्रकार मृत्यु भी जीवन संग्राम की थकावट दूर करके आराम देनेके लिये आती है। फिर इन शरीरों का एक दूसरे प्रकारसे विभाग किया गया, और उन विभागोंका नाम कोश है, ये कोश पाँच हैं:—

पाँच कोश

(१) अन्नमय जो त्वचासे लेकर अस्थि पर्यन्त, (२) प्राणमय—जो पाँच प्राणोंका समुदाय है, (३) मनोमय—जिसमें मन और पाँच कर्मेन्द्रिय होते हैं (४) विज्ञानमय जो बुद्धि और पाँच ज्ञानेन्द्रियों का समुदाय है और (५) आनन्द

मय कोश जिसमें प्रेम, प्रसन्नता और सुख होते हैं। पहले कोश का आधार स्थूल शरीर और दूसरे से चौथे तकका आधार सूक्ष्म शरीर और पांचवें कोशका आधार कारणमय शरीर है। इन कोशों से प्राणी सभी प्रकारके अलौकिक और पारलौकिक व्यवहार करता है। जब जीवात्मा यम और नियमादि अष्टाङ्ग योग* का सेवन करता है तो सांसारिक बन्धनोंसे छूटकर मोक्ष रूप परमस्वतन्त्रता को लाभ कर लेता है†। यही मनुष्य जीवनका अन्तिम उद्देश्य, यही संसार यात्राकी अन्तिम मंजिल है।

* देखो पतञ्जलि मुनि का मत।

† इसी वेदोक्त शिक्षा का प्रचार श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया था और इसी शिक्षाका प्रचार उनका स्थानापन्न आर्य्य-समाज कर रहा है।

पुस्तकमें प्रयुक्त भाषाके अल्प प्रचलित शब्दोंकी अनुक्रमणिका अंगरेजी शब्द सहित।

अ

अक्षाग्र	Axle
अङ्कुरघटक	Stem cell
अङ्गारक	Carbon.
अचेतन अन्तःसंस्कार	Unconscious presentation.
अचेतनक्षोभ	Unconscious impulse.
अज्ञात स्मृतिवाद	Unconscious memory.
अनुसार रस	Albuminoid.
अदृश्यलोक	Hades.
अद्भुतशक्ति	Mysterious force.
अद्वैतवाद	New platonism.
अधिष्ठातृत्व	Guidance.
अन्तःकरण	Conscience.
अन्तःकरणवृत्ति	Mental activity.
अन्तः प्रवृत्तिवाद	Theory of Instinct.
अन्तः संस्कार या भावना	Presentatation or Idea.
अन्तः संस्कारोंकी शृंखला या भावयोजना	Concatenation of presentations or association of Ideas.
अन्तःसाक्ष्य [स्वान्तर्वृत्तिबोध]	Conscious perception.

अन्तर्दृष्टि	Internal pereption.
अन्तर्मुख गतिसे	Centripetally.
अन्तर्मुख चेतना	Subjective or ego.
अपौरुषेय जीवन	Superhuman. life
अभिसरण	Circu'ation.
अवशिष्ट व्यक्तिजीवनका मूल्य	Survival value.
अव्यक्त	Latent.
असुर	Devil.
अस्थिराकृतिवाले अणुजीवों की सी गति	Amoeboid movement.
अहङ्कार [व्यक्तित्व]	Individuality.
आकर्षक आकुञ्चन	Gravitative shrinkage
आकर्षण पार्थक्य	Gravitative separation.
आकाश	Ether.
आकुञ्चनगति	Phenomena of contraction.
आकुञ्चनशलि पेशीघटक	Contractile muscular cell.
आङ्गिक आवेगशीलता	Organic irritability.
आण्विकशक्ति	Molecular force.
आदर्शवाद या भाव प्राधान्यवाद	Idealism.
आत्मजगत्	Spiritual world.
आत्मरक्षा	Self preservation.
आत्मशक्ति	Soul Power.
आत्मस्वातन्त्र्य	Freedom.
आत्मिकाक्षेप	Psychlical motive.
आनुरूप्य सम्बन्ध	Sympathetic link.
आनुषाङ्गिकपरिवर्तन	Concomitant variation.

इ

इच्छा [राग]	Love.
इन्द्रियोंके क्षोभ वा सम्वेदना	Sensation.

उ

उत्कृष्ट चेतना	Subliminal consciousness.
उत्तर	Secondary.
उद्वेग	Emotion.
उन्नताणुजीव	Protists.
उपलब्धि	Perception.

ए

एक तरल पदार्थ	Cosmic fluid.

क

कण	Millimetre.
कम्पन	Vibration.
कललरस	Protoplasm.
कललरसके सुतड़ों और विन्दियोंके रूप	Form of protoplasmic-filaments and pigment spots.
कललाणु	Plastidules.
कीटवाद	Theory of Germ plasm.
कृति	Will.
कोष या घटक	Cell.
क्रियोत्पादक पेशीघटक	Motor muscular cell.
क्षुद्रजन्तु	Low animal.

ग

गतिवाहक सूत्र	Motor nerves.

गतिशक्ति	Energy.
गत्यात्मकपेशी तन्तु	Motor muscular fibre.
गुण	Attribute.
ग्रहणक्षम	Percepient.
ग्रहण सिद्धान्त	Natural selection.
घटक कोष	Cell.
घटकगत अन्तःसंस्कार	Cellular memory.
घटकगत स्मृति	Cellular presentation.
घटक जाल	Tissues.
घटकात्मा	Soul cell.
घ्राणसे मिलती जुलती एक रासायनिक प्रवृत्ति	A chemical sense = activity relating to smell.

च

चतुर्थ घटकात्मक करण	Quadricellular reflex organ,
चित्त	Mind.
चित्त संस्कार	Impression.
चिन्तन	Reflection.
चेतना	Consciousness.
चैतन्याणु	Monad.
चैन्याणुवाद	Monadology.

छ

छाया	Phantasm.

ज

जटिल चेतन अन्तःकरण	The intricate reflex mechanism.

जड़ाद्वैतवाद	Monism.
जलस्थलचारी जन्तु	Amphibia.
जीवन	Life.
जीवनोष्णता	Animal heat.
जीव द्रव्यं वाद	Mind-steeff theory.
जीवात्मा	Soul.
जीवित अग्नि	Vital heat.
ज्ञानतन्तु (सम्वेदना सूत्र)	Nerves.
ज्ञानधारा	Stream of consciousness.
ज्ञान नियम	Catagories. of understanding.

त

तन्तुगतस्मृति	Histonic memory.
तन्तुजालगत अन्तःसंस्कार	Histonic presentation.
तन्तु प्रकृति	Neurotic temperament.
तर्क	Reason.
त्यागवाद	Stoicism.

द

देव	Angel.
द्रव्य	Substance.
द्रव्य नियम	Law of Substance.
द्रव्यवैकृत्य धर्म	Metabolism.
द्विफल घटक	Gastrula.
द्वेष (निरक्ति)	Hatred.

ध

धवल द्रव्य	Grey matter.
ध्वनि	Sound.

न

निमित्त पुरुष	Automatist.
नियन्त्रण	Control.
नियामक बुद्धि	Judgement.
निरपेक्ष	Absolute.
निर्देशक शक्ति	Directing agency.
निहित या अव्यक्त गतिशक्ति	Cell soul or the potential energy latent in both.

प

परचित्तज्ञान	Telepathy.
परमात्मा	Super human volition.
पेशियां	Muscles.
पेशियोंकी गति	Muscular movement.
प्रकृति	Matter.
प्रकृति चेतनावाद	Hylozoism.
प्रकृति स्थितिनियम	Law of conservation of matter.
प्रतिक्रिया	Reflex, Reflective function or Reflex action.
प्रतिक्रियाका एक कण	Unicellular reflex organ.
प्रतिज्ञा	Thesis.
प्रति प्रतिज्ञा	Antithesis.
प्रतिवर्तक	Operator.
प्रसङ्गवाद	Occasionalism.
प्राग्जन्तुविज्ञान	Palaeontology.
प्राणि वर्गोत्पत्ति विद्या	Phylogeny.

प्राण विद्या	Biology.
प्रासङ्गिक	Occasional.

ब

बहिर्मुखगतिसे	Contrifugally.
बहिर्मुख चेतना	Objective or non-ego.
बहुविध	Multiform.
बाह्यकरण	Organ of sense.
बाह्यशून्यवाद	Idealism.
बीजकला	General layars.
बीजात्मा	Germ soul.
बुद्धि	Intellect.
बुद्धि स्वातन्त्र्य वाद	Rationalism.
बोध स्रोत	Stream of feeling.

भ

भाव	Emotion.
भूकम्पिक अधिगमन	Earthquake subsidence
भेदाभेद विचार	Comparison.
भ्रमण	Rotation.

म

मद्यसार	Alcohal.
मन या चित्त	Mind.
मध्यवर्ती घटक	Central cell.
मध्यस्थ मनोघटक	Intermediate presentative or psychic cell.
मध्योन्नत कांच	Lens.
मनोघटक या सम्वेदनाग्रन्थि-घटक	Soul cell or ganglionic cell

मनोभाव	Idea.
मनोरस	Psycoplasm.
मनोरस निर्मितसूत्र	Psycoplasmic fila-ment.
मनोविकार	Emotion.
मनोवृत्ति	Psychical activity.
मनोवैज्ञानिक तत्त्व	Psychic factor
मनोव्यापार	Psychic function.
मनोव्यापार केन्द्र	Central nervous organ.
मर्मस्थल	Sensitive Spot
मस्तिष्क	Brain.
मस्तिष्कका भूरा मज्जा क्षेत्र	Grey bed or cortex of the brain.
मस्तिष्ककी त्वचा	Cortex,
मस्तिष्क घटकगत चेतन अन्तःसंस्कार	Conscious presentation. in the cerebral cells.
मस्तिष्क रूपी प्रधान करण या सम्वेदना ग्रन्थि	Special central organ, the brain or ganglion.
मस्तिष्क व्यापार	Cerebral function.
मात्रा	Amount.
मानसिक यन्त्र	Psychic apparatus or psychic mechanism.
मूल	Primary.
मौलिक द्रव्य	Elements.

य

यान्त्रिकशक्ति	Mechanical force.

र

रहस्यपूर्ण सङ्गठन	Mystical Union.
राग (इच्छा)	Love.
रासायनिक प्रेमाकर्षण	Erotic chemical tropism.
,, स्नेहाकर्षण	Chemical effinity.
रूप परिणामवाद	Law of meta morphosis
रोईं या सुतहेवाले अणु जीवों शुक्राणुओंकी कुटिल गति	"Vibratory mation (ciliary movement) in infusoria, Spermatozoa ciliated epithelial cells"

ल

लचदार आकर्षण	Elastic strain.
लसीला पदार्थ	Slimy subrtance.
लोथड़ा	Lobe

व

वंशरक्षा	Preservation of species
वंशपरम्परा क्रम	Hèredity.
विचार	Thought.
विरक्ति (द्वेष)	Hatred.
विवेक	Discernment.
विशेष रूपकी सम्वेदना और गति	Peculiar form of Sensation and movement.
वृत्ति	Mood.
व्यक्त	Known.
व्यक्ति	Individual.
व्यवच्छेदक	Anatomist.

व्यवसायात्मिका बुद्धि या व्यावहारिकी बुद्धि	Practical Reason.
व्यापक	Abstraction.

श

शक्तिव्यापार	Energy traffic.
शक्तिस्थिति नियम	Law of conservation of energy.
शरीरके अवयव	Morphological features.
शारीरिक वैकृत्य धर्म	Metabolism.
शीतोष्ण परिमाण	Temperature.
शुद्धबुद्धि	Pure Reason.
शुद्ध बुद्धिकी विवेचना	Criticism of pure reason.

स

सजीव द्रव्य	Living matter or organized matter.
समर्थाविशेष	Survival of the fittest.
सफेदी	Albumen.
समवाय	Inhesion.
समान	Uniform.
समायोग	Adjustment.
सरीसृप	Reptilia.
सर्वजीवत्वाद	Theory of Animism.
सहज बुद्धि	Instinct.
सहान्वेषक	Codisioveror.
सामान्य	Genus.
सूक्ष्मकला चातुर्य	Artistic power.
सूक्ष्मशरीर	Miniature

सूत्रग्रन्थिघटक	Ganglionic cells or Psychic cells.
सोपाधिक अमरत्व	Condilional immortality.
सौन्दर्य विवेक, सौदर्य विवेचन शक्ति	Aesthetic faculty.
सङ्कल्प	Will.
सङ्कल्पके आदेश	Commands of the will.
सङ्कलात्मक घटक	Will cell or psychic cell.
सङ्गृहीत विचार या सूक्ष्मविचार	Abstract Ideas.
सन्देशतन्तु स्रोत	Stream of Nerve message.
सम्पर्क	Composition.
संयोग	Synthesis.
सम्वेदना या सम्वेदन	Sensation.
सम्वेदनाग्रन्थि	Ganglion.
सम्वेदना ग्राही घटक	Sensitive nerves.
सम्वेदना विधानोंका समाहार	Centralisation or integration of the nervous system.
सम्वेदना विशेष और गति विशेष	Peculiar form of sensation and movement.
सम्वेदनासूत्र या ज्ञानतन्तु	Nerves.
सम्वेदनासूत्र ग्रन्थिगत अचेतन अन्तःसंस्कार	Unconscious presentation in the ganglionic calls.
सम्वेदना सूत्रजाल	Nervous system.
संशयवाद	Scepticism.

स्तन्यजन्तु	Mammals.
स्थितिसामञ्जस्य	Law of adaptation.
स्मृति	Memory.
स्वतः प्रवृत्त गति	(i) Faculty of spontaneous movement. (ii) Active vital movement.
स्वभाव	Habit.
स्वमताभिमान	Dogmatism.
स्वयं चलद् यन्त्रोंके लेख	Automatic writing.
स्वयं प्रस्ताव	Auto-suggestion.
स्वान्तर्वृत्ति बोध या अन्तः साक्ष्य	Conscious perception.
स्वीकृत तत्त्व	Data.